अनुक्रमणिका

'इंद्रायस्वाहा' इसका अर्थ क्या करेंगे?

पं० न्यायतीर्थ वंशीधरजी अपने जून १९२१ के जैनसिद्धांतके 'शासनदेवतापूजा' इसशीर्षकके लेखमें कहते हैं कि- 'इंद्रायस्वाहा' का क्या करेंगे? और फिर जुलाई १९२१ के 'जैनसिद्धान्त' पृ. ३५ में "शासनदेव-चर्चा." इस शीर्षकके लेखमें लिखते हैं कि- "महापुराणके ४० वे पर्वमें जो मंत्र हैं, उसका एक उदाहरण "इंद्राय स्वाहा" यह देखिये. स्वाहाका अर्थ अर्पण है, इंद्रायका अर्थ 'इंद्रकेलिये' ऐसा है. इसमें कोई हजार बार सिर पटके तो भी इस मंत्रसे इंद्रको आहुति देनेका जो अर्थ होता है वह बदल नहीं सकता. तोभी इसे इंद्रका पूजन न कहकर सिद्धार्चन बताया है. देखो—

"एतैःसिद्धार्चनं कुर्यात्" ॥ श्लोक ७८, पर्व ४० ॥

इसका क्या कारण है कि मंत्रोंसे इंद्रादिको आहुति दी और आगे सारांश यह बताया कि इन सर्व मंत्रोद्वारा सिद्धका अर्चन करे इस सबका तात्पर्य देखते समय यह और विचार करके कि उक्त सात प्रकारके मंत्रोंके अतिरिक्त ऊपर दूसरा कोई सिद्ध पुजाका उल्लेख नहीं किया है किंतु इन्ही मंत्रोंसे जो कुछकार्य हुआ उसे सिद्धार्चन कहा है." इत्यादि.

अब देखिए कि पहले तो इन सुरेंद्रमंत्रोंमें कहीं भी "इन्द्राय-स्वाहा" ऐसा अलग मंत्रही नहीं है. तो फिर पंडितजीनें किस आधारसे लिखाहै सो मालूम नहीं पडता. दूसरे इन मंत्रोंके अन्तिम "एतैः सिद्धार्चनं कुर्यात्" इस श्लोकसे तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि— इन मंत्रोंसे सिद्धकी पुजाकरनी चाहिये. इन मंत्रोंमें जे नाम हैं वे केवल अर्हंत सिद्धकेही है स्वर्गादि इंद्रोंके नहीं हैं.

देखिये, सुरेंद्रमंत्रमें—परंपरेंद्राय स्वाहा, अहमिंद्राय स्वाहा इत्या-

दि नामोच्चार कियाहै सो श्रीजिनसेनाचार्यने अपने महापुराण पर्व २५ में [सहस्रनाममें] अन्य देवोंके ही नाम भगवान्‌जिनेंद्रको सार्थक रूपसे दिये हैं. श्रीमानतुंगाचार्यने अपने भक्तामर स्तोत्रके— "बुद्ध-स्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्त्वं शंकरोऽसिभुवनत्रय शंकरत्वात्." इत्यादि. इस श्लोकमें बुद्ध, शंकर, धाता, पुरुषोत्तम ये अन्य देवोंके नाम भगवान आदीश्वरको सार्थक रूपसे कहे हैं. वैसे ही उन सुरेंद्रादि मंत्रोंमें सौधर्मादिकोंके जो नाम दिये हैं वे भगवान्‌जिनेंद्र और सिद्धको सार्थक रूपसे ही दिये गये हैं ऐसा ज्ञात होता है.

पं० कल्लप्पा भरमप्पा निटवेने भी अपने मराठी सार्थ महापुराण पर्व ४० में निस्तारक और सुरेंद्रमंत्रोंका अर्थ मराठीमें दिया है उससे भी ज्ञात होता है कि वे अर्हन्त और सिद्धके ही नामोच्चार सार्थक रूपसे किये हैं.

उदाहरणके लिये सुरेंद्रमंत्र यहां दिखाते हैं—पर्व ४० श्लो. ४८-५५

१ सत्यजाताय स्वाहा— अर्थ— ज्याचें जन्म सफल झालें आहे त्यास आहुति अर्पण करतों.

२ अर्हज्जाताय स्वाहा—अर्थ— अर्हंत होण्यास योग्य आहे जन्म ज्याचें त्यास अर्पण करतों.

३ दिव्यजाताय स्वाहा— अर्थ— ज्याचा जन्म दिव्य आहे त्यास अर्पण करतों.

४ दिव्यार्चिजाताय स्वाहा— अर्थ— दिव्य प्रकाशरूप ज्याचा जन्म आहे त्यास अर्पण करतों.

५ नेमिनाथाय स्वाहा— अर्थ— धर्मचक्राच्या धारांचा स्वामी जो नेमिनाथ त्यास अर्पण करतों.

६ " सौधर्माय स्वाहा—अर्थ—उत्तम धर्मस्वरूप असा जो त्यास अर्पण करितों."

७ कल्पाधिपतये स्वाहा— अर्थ— कल्पांच्या अधिपतीस अर्पण करितों.

८ " अनुचराय स्वाहा- अर्थ- परंपारूप ज्ञान ज्यास आहे, त्यास अर्पण करितों. "

९ " परंपरेंद्राय स्वाहा-अर्थ-परंपरा इंदन क्रिया ज्यास आहे त्यास अर्पण करितों. "

१० " अहमिंद्राय स्वाहा-अर्थ- मी परमैश्वर्यरूप ज्ञान क्रिया-युक्त आहे, असा निश्चय ज्यास झाला आहे त्या अहमिंद्रास अर्पण करितों."

११ " परमार्हताय स्वाहा-अर्थ-परम अर्हतास अर्पण करतों."

१२ अनुपमाय स्वाहा-अर्थ- ज्याला उपमा नाहीं त्यास अर्पण करतों.

१३ सम्यग्दृष्टे २ कल्पपते २ दिव्यमूर्ते २ वज्रनामन् २ स्वाहा अर्थ-हे सम्यग्दृष्टे हे सम्यग्दृष्टे, हे कल्पपते हे कल्पपते, हे दिव्यमूर्ते, हे दिव्यमूर्ते, हे वज्रनामन् हे वज्रनामन् (कर्म-पर्वतास चूर करणारा) तुला मी आहुति अर्पण करतों.

१४ सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु । अपमृत्यु विनाशनं भवतु । समाधिमरणं भवतु । सुरेंद्र मंत्राः ॥ अर्थ-सेवेचें फळ सहा परमस्थानांची प्राप्ति मला होवो; अपमृत्यु विनाश होवो;

इस मुजब सुरेंद्रमंत्र और उनका अर्थ है.—

और भी महापुराणमेंके निस्तारक मंत्रोंमेंसे कुछ मंत्र—(महापुराण मराठी सार्थ) श्लोक ३२-३७ में के—

" षट्कर्मणे स्वाहा-षट्कर्मांचा उपदेश ज्यानें केला आहे त्यास मी अर्पण करितों. "

" ग्रामयतये स्वाहा-ग्रामयति नामक जिनेंद्रास अर्पण करितों"

" अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा- अनादिश्रुत पठित आहे कर्म ज्याचें त्यास मी अर्पण करितों. "

श्रावकाय स्वाहा— निजगुणांचा स्रावकरणाऱ्या शुद्धात्म्यास अर्पण करितों. "

"देवब्राम्हणाय स्वाहा— देवब्राह्मण नांवाच्या जिनेंद्रास अर्पण करितों."

"सुब्राह्मणाय स्वाहा—उत्तम ब्राह्मणस्वरूप जो त्याला अर्पण करितों."

"अनुपमाय स्वाहा-निरुपम अशा शुद्धात्म्यास अर्पण करितों"

"सम्यग्दृष्टे २ निधिपते २ वैश्रवण २ स्वाहा ॥ म्हणजे हे सम्यग्दृष्टे, हे सम्यग्दृष्टे, हे निधिपते, हे निधिपते, हे वैश्रवणा, हे वैश्रवणा (जिनेंद्रा) मी अर्पण करितों."

इसमें 'वैश्रवण' नाम कुवेरका प्रसिद्ध है तोभी उसका अर्थ जिनेंद्र ऐसाही किया है. वज्रनामन् यह नाम भी इंद्रका हैं तोभी उसका अर्थ कर्मपर्वतोंको तोडनेवाला ऐसा किया है. इससे रागीद्वेषीयोंका पूजन हटाकर वीतराग भगवानकाही पुजन करनेका अभिप्राय बताया है. कारण रागीद्वेषीदेव तो दुनियांमें बहोत हैं अपनेको तो रागद्वेष हटाना है उसही वास्ते जैनधर्ममें वीतरागदेव, निर्ग्रंथ गुरु, और दयामयी धर्मकी उपासना बताकर दिगंबर धर्मको पुष्ट किया है.

मराठी सार्थ महापुराण पर्व २५

युगादि पुरुषो ब्रम्हा पञ्चब्रह्ममयः शिवः ॥
परःपरतरःसूक्ष्मः परमेष्टी सनातनः ॥ १०५ ॥

'ब्रम्हा'—"केवलज्ञानादि गुण ज्याचे ठिकाणीं वृद्धीला पावतात असा. ४९"

'शिवः'—"सर्वदा परमानंदांत निजणारा (गढून राहणारा) किंवा अज्ञानाचा नाश होऊन ज्याला मुक्तिस्थान प्राप्त झालें आहे असा. ५१"

"सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः ॥
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥ ७८ ॥"

"'सदाशिवः'—सर्वदा ज्याचें कल्याण आहे असा. ८६"

"शङ्करः शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायणः ॥"
अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः ॥ १९९॥११ ॥'
'शंकरः'—भक्तांनां सुख उत्पन्न करणारा. ८८"

ये सब अर्थ पंडित कल्लापानें महापुराणकी प्राचीन हस्त लिखित प्रतिपरसे और टिप्पणी परसे दिये हैं. जैसें 'त्रिम्बेश्वरादयो' इसका अर्थ टिप्पणीमें 'तीर्थंकरादयः' ऐसा कल्लापानें लिखा है वैसा ही अर्थ श्रीयुत दीपचंद परवार कटनीवाले आदिपुराणकी टिप्पणीपरसें 'तीर्थंकरादयः' ऐसा देते हैं. और आप्पाशास्त्री 'जिनेश्वरादयः' ऐसा देते हैं.

पं० फतेलालजी अपने सार्थ विवाहपद्धतीमें कहते हैं कि—

श्रीजिनसेन वचनान्यव गाह्य जैने ।
संघे विवाहविधिरुत्तमरीतिभाजाम् ॥
उद्दिश्यते सकलमंत्रगणैः प्रवृत्ति ।
सानातनीं जनकृतामपि संविभाव्य ॥२॥

अर्थः—अबैं भगवज्जिनसेन नामक आचार्यके वचन महापुराणमें हैं तिनकै अवगाहन करि जैनीनिका संघके विषें उत्तम रीतनिं धारन करनेवारे जे हैं तिन प्रति सकल मंत्रगण सहित विवाहकी विधि जो है ताहि । अर सनातनकी प्रवृत्ति जो है ताहि । अर वर्तमान देश कालमें मनुष्यनिकी प्रवृत्ति जो है ताहि भी संभावनाकरि उपदेश करिये है ॥२॥

और पृ. ४५ में सुरेंद्रमंत्रोंका अर्थ इस मुजब उन्होंने लिखा है—

अथ सुरेंद्रमंत्राः ॥

सत्यजाताय स्वाहा— सफल है जन्मजाको ताकै अर्थ अर्पण करता हूं ॥ १ ॥

अर्हज्जाताय स्वाहा— पूज्य है जन्मजाको ताकै अर्थ अर्पण करता हूं ॥ २ ॥

दिव्यजाताय स्वाहा— दिव्य है जन्मजाको ताकै अर्थ अर्पण करता हूं ॥ ३ ॥

दिव्यार्चिजाताय स्वाहा— दिव्यप्रकाशरूप है जन्म जाको ताकें अर्थ अर्पण करता हूं ॥ ४ ॥

नेमिनाथाय स्वाहा— धर्मचक्रकी धाराका स्वामी जो है ताकें अर्थ अर्पण करता हूं ॥ ५ ॥

सौधर्माय स्वाहा— सुंदर धर्मको भावस्वरूप जो है ताकें अर्थ अर्पण करता हूं ॥ ६ ॥

कल्पाधिपतये स्वाहा— कल्प जो ताको अधिपति जो है ताकें अर्थ अर्पण करता हूं ॥ ७ ॥

अनुचराय स्वाहा—चर धातु गमन अर्थमें है अर गमन अर्थमें है ते ज्ञान अर्थमें भी है ऐसा आगमका हुकम है यातैं परंपरारूप है ज्ञान जाको ऐसा अनुचरकै अर्थ अर्पण करता हूं ॥ ८ ॥

परंपरेंद्राय स्वाहा— परंपरा इंदन क्रिया युक्त ऐसो परंपरेंद्र जो है ताकै अर्थ अर्पण करता हूं ॥ ९ ॥

अहमिंद्राय स्वाहा— मैं परम ऐश्वर्यरूप ज्ञान क्रिया युक्त हूं। ऐसो निजस्वरूपका है निश्चय जाकै ऐसा अहमिंद्रकै अर्थ अर्पण करता हूं ॥ १० ॥

परमार्हताय स्वाहा— परम अर्हंत जो है ताकै अर्थ अर्पण करता हूं ॥ १२ ॥

सम्यग्दृष्टे कल्पपते दिव्यमूर्ते वज्रनामाय स्वाहा—सम्यग्दृष्टि कल्पपाते दिव्यमूर्ति कर्मरूप पर्वतके चूर्ण करने तैं वज्रनामा जो है ताकै अर्थ अर्पण करता हूं ॥ १३ ॥ ऐसैं त्रयोदश आहुति देय काम्यमंत्र पढै कि—॥ मंत्र ॥ सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु ॥ अर्थ— सेवाफल षट्-परमस्थान हो ॥

अपमृत्यु विनाशं भवतु— अपमृत्युका विनाश हो ॥

समाधिमरणं भवतु—समाधिमरण हो ऐसैं पढि एक आहुति देवै ॥

॥ इति सुरेंद्रमंत्राः ॥

ऐसेहि पं० फत्तेलालजीने उस जैनविवाहपद्धति पृ॰ ४१ में काम्यमंत्रोंमेंका " अग्नीन्द्रायस्वाहा " इसका अर्थ श्रीजिनेंद्रके तरफ लगाया है सो देखिये.—

सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्यानिर्वाण पूजार्ह अग्नीन्द्राय स्वाहा ॥

अर्थ—सम्यक्दृष्टी निकटभव्य निर्वाण पूजाके योग्य अग्नीन्द्र नामक अरहंत जो है ताके अर्थ स्वाहा कहिये अर्पण करताहूं ॥ ३१ ॥

प्रश्न—अग्नीन्द्रनाम जिनेंद्रको कैसैं कहौ हौ.

उत्तर—" वन्हिमूर्तिरधर्मधक् " ऐसा पाठ सहस्रनाम में है. ताका अर्थ ऐसा है कि– अधर्मकूं दहन करने तें तू वान्हिमूर्ति है ऐसे तो अग्नि-नाम जिनेन्द्रको है । अर जैसें जिननाम अव्रतसम्यग्दृष्टीतैं लगाय के-वली पर्यंतनिका है । अर जिनके जे इंद्र ते जिनेंद्र हैं । तैसेंही अग्नि-नामतौ अव्रतसम्यग्दृष्टीतें लगाय केवली पर्यंतनिका है अर अग्नीके जे इन्द्र ते अग्नीन्द्र हैं ऐसें अग्नीन्द्रनाम जिनेन्द्रको कह्यो है अथवा सम्यग्-दृष्टी निकटभव्य निर्वाणकल्याण संबंधी पूजा करनेकूं योग्य है । अग्नीन्द्र जाकै ताके अर्थ अर्पण करताहूं ऐसें इकतीस आहूति देय काम्यमंत्र पढैं॥

ये जो सुरेंद्रमंत्रोंका और काम्यमंत्रोंका अर्थ पं० कल्लप्पा निट-वेने और पं० फत्तेलालजीने किया है सो महापुराणकी टिप्पणीपरसे किया ऐसा लगता है सो विना सिरपटके किया है. यदि सिर पटकके किया होता तो वैसा वे लिख देते. सिर पटकनेसे अर्थ नहीं निकलता पं० बनसीधरजी सिर पटककर अर्थ करना चाहते हैं सो कैसा हो सकेगा? सिर पटकनेसे तो सिर फूट जायगा अर्थ नहीं सूझेगा.

सहस्रनाम पूजाविधानमें– ब्रह्मा, शंकर, शिव, सदाशिव इत्यादि नामोंकी निरुक्तियां देकर पूजन किया है. सो नमूनेकेलिये नीचे उदाहरण देते हैं-

ब्रम्हाणं भुवनाराध्यं संसारार्णवपातकम् ॥ ॐ ब्रम्हणे जलं निर्वपामि स्वाहा इत्यादि.

गर्भावतरणे यस्य सुखीभूतं जगच्छिवम् ॥ ॐ शिवाय जलं निर्वपामि स्वाहा इत्यादि.

शंकरं सर्वभव्येभ्यः सुखदं सुखिनांवरम् ॥ ॐ ह्रीं अर्हं शंकराय जलं निर्वपामि स्वाहा इत्यादि.

सदाशिवं सदाश्रेष्ठवदतां पुंगवं भृशम् ॥ ॐ ह्रीं सदाशिवाय जलं निर्वपामि स्वाहा इत्यादि.

विष्टरश्रवसं लोकप्रचेतज्ञानभास्वरम् ॥ ॐ विष्टरश्रवसे जलं निर्वपामि स्वाहा इत्यादि.

प्राणिनामुच्चतां सिद्धं धातारं विश्ववर्तिनाम् ॥ ॐ धात्रे जलं निर्वपामि स्वाहा इत्यादि.

संपत्संतानसंयुक्तं पुराणपुरुषोत्तमम् ॥ ॐ पुराणपुरुषोत्तमाय जलं निर्वपामि स्वाहा इत्यादि.

केवलज्ञानसूर्येण दृष्टं बुद्धं चराचरम् ॥ ॐ बुद्धाय जलं निर्वपामि स्वाहा इत्यादि.

अब यहांपर ॐ ह्रीं ब्रह्मणे जलं निर्वपामि; ओम् शिवाय जलं निर्वपामि; ओम् शंकराय जलं निर्वपामि; इत्यादि मंत्र दिये हैं उसका अर्थ पंडित बनसीधरजी क्या करेंगे? और पं. आशाधरके जिनसहस्रनाममें भगवान अरिहंतको 'इंद्र' कहा है देखो.—

"ईशोऽधिपतिरीशान इन 'इंद्रो' ऽधिपोऽधिभूः ॥
महेश्वरो महेशानो महेशः परमेशिता ॥ ६२ ॥

इस सहस्रनामका भी विधान होगा उसमें 'इंद्र' शब्दकी निरुक्ति देकर ॐह्रीं इंद्राय जलं निर्वपामि ऐसा कहा होगा उसका अर्थ पंडितजी क्या करेंगे? उसका जो अर्थ होगा वही अर्थ "इंद्राय स्वाहा" इत्यादि सुरेंद्रमंत्रोंके अर्थ पंडितजीको करने पडेंगे. यदि पंडितजी कहेंगे कि, केवल 'स्वाहा' करके आहुतिमंत्र अरिहंत भगवानको दिये जाते नहीं हैं. अरिहंतको तो 'निर्वपामि' कहेना पडता है. लेकिन आहुति

मंत्रोंमेंभी नमिनाथाय स्वाहा; अर्हज्जाताय स्वाहा; परमार्हताय स्वाहा; इत्यादि अर्हत्परमेष्ठीको आहुति दिई गई है. सो इसमें कोई तफावत नहीं हैं. कोईभी प्रकारसे वीतरागस्वरूपी अर्थ लेकर पूजन, अर्चन, आराधना, उपासना करनेका श्रीजिनसेनस्वामीका अभिप्राय है. सरागीका व्यवहारिकनाम पूजनआराधनमें दियाहो तोभी उसका अर्थ वीतरागस्वरूपी बनाकर उस वीतरागस्वरूपकाही पूजन दिगंबर कहलानेवालेको करना उचित होगा. यदि सरागी याने रागीद्वेषीयोंके पूजनका प्रतिपादन करेंगे तो वीतरागधर्म, दिगंबराम्नाय, निर्ग्रंथ लिंगका जो पक्ष है सो छोडना पडेगा. वेद शब्दका अर्थ द्वादशांगवाणी, चारित्र शब्दका अर्थ हिंसादि दोषोंका त्याग, देवता शब्दका अर्थ विश्वेश्वरादयः माने अरिहंतादयः, जिनेश्वरादयः, तीर्थंकरादयः ऐसा प्राचीन टिप्पणीकार देते हैं सोही अर्थ गणग्रहक्रियामें 'अस्मत्समय देवताः' इस शब्दका लेना पडेगा. मैं मिथ्यादेवताको अपने घरमेंसे निकाल देता हूं ऐसा गणग्रहक्रियामें जो कहा है सो यहां मिथ्यादेवताका अर्थ बृहद्द्रव्यसंग्रहटीकाकारने शासनदेवता क्षेत्रपालादिक किया है सो ही लेना युक्त होगा. सबब कि 'समयोचिता देवताः' शब्दके पीछे 'शांताः' यह विशेषण लगाया है. जैसा कि 'विश्वेश्वरादयो' शब्दको विशेषण 'शांतिहेतवः' ऐसा दिया है. सो यदि विश्वेश्वरादयो शब्दका अर्थ 'जिनेश्वरादयो' 'अर्हतादयो' ऐसा होता है तो वैसे ही विशेषणयुक्त देवता. शब्दका अर्थ वैसा ही करना पडेगा 'शांताः' विशेषण रागीद्वेषी शासनदेवताको लगता नहीं है. वीतरागस्वरूपकोहि लगता है. देखिये—

जिनसेनाचार्यने महापुराण पर्व २५, श्लोक १३९ में लिखा है कि—" निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः " इसमेंसे 'शान्तः' शब्दका अर्थ पं० कल्लप्पा निटवे इस मुजब लिखते हैं—" शान्तः,—ज्याच्या अंतःकरणाचा कोंणताही क्षोभ होत नाहीं असा." इसपरसे जहां 'शान्त' ऐसा शब्द आता है वहां ऐसाही अर्थ करना चाहिये.

फिर भी विचार करने लायक एक बात गणग्रहक्रियामें ऐसी है कि, गणग्रहक्रियाके पहिले अवतार क्रिया, वृत्तलाभ क्रिया और स्थानलाभक्रिया ऐसी तीन क्रिया होकर चोथी गणग्रहक्रिया होती है. पहली अवतार क्रियामें आप्तका स्वरूप बताकर आप्त, गुरु, आगमका श्रद्धान कराया है. वहां उसको सम्यग्दर्शन होजाता है फिर दूसरी वृत्तलाभ क्रियामें अणुव्रतोंका ग्रहण कराया जाता है. यहां वह नैष्ठिक श्रावक बनता है. फिर तीसरी स्थानलाभ क्रियामें उसको श्रावककी पूर्ण तया दीक्षा दी जाती है. इस मुजब यह नैष्ठिक व्रतीश्रावक पांचवे गुणस्थानका पक्का बनजाता है. इस अवस्थामें शासनदेवताको वंदनातक करनेको पं. आशाधरने इसको मना किया है और शासनदेवताको पं० आशाधरने कुदेव बताया है. "श्रावकेण कुदेवाः रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च न वंद्याः" इत्यादि. तो फिर उससे ऊंचली गणग्रह क्रियामें उसको शासनदेवताकी पूजा करनेका विधान श्रीजिनसेनाचार्य आदिपुराणमें कैसा लिखेंगे ?

यदि गणग्रहक्रियामें शासनदेवताका पूजन सिद्ध नहीं हुवा, सुरेंद्र मंत्रोंपरसे सिद्ध नहीं हुवा और 'विश्वेश्वरादयो' इस श्लोकपरसे भी सिद्ध नहीं हुवा तो श्रीजिनसेनाचार्यके आदिपुराणमें शासनदेवताका पूजन बतानेके पंडितजीके प्रमाण सब खतम होगये.

श्रीमान् मान्यवर पं. पन्नालालजी गोधा अपने पत्रमें लिखते हैं—

"जिनसेनस्वामीने कहीं भी शासनदेवोंको पूज्य नहीं लिखा है. जो पीठिकाके मंत्र हैं उनमें इंद्र आदिके नामसे आहुती है वे चार प्रकारके देवोंके इन्द्र नहीं, किंतु अर्हंत सिद्धकेही नाम हैं और सिद्धकीही पूजन बताई है और उस क्रियाहीका नाम सिद्धार्चन है.

किंतु इसही तरहसे अनेक विपर्यय अर्थ करने लग गये हैं यह कालका महात्म है !

सं० १९७८ पौषवदी ७ मु. शेगरह (कोटा)."

पं० बनसीधरजी इन मंत्रोंका अर्थ करनेमें हजार बार सिर पटक-नेका जो प्रतिज्ञापूर्वक आव्हानन करते हैं उससे उनके ज्ञानमदका और भाषासमितिका प्रदर्शन होता है. जैसे " मुनि क्या शस्त्र मारते हैं" ? इत्यादि केई नमुने उनके लेखमें प्रसिद्ध हो चुके हैं.

' विश्वेश्वर्यादयो ' ऐसा पाठ प्राचीन प्रतियोंमें नहीं है 'विश्वे-श्वरादयो ' ऐसा पाठ प्राचीन प्रतियोंमें है और उसका अर्थ उसी प्राचीन प्रतियोंके टिप्पणीपरसे ' जिनेश्वरादयः ' ' तीर्थंकरादयः ' ' अर्हंतादयः ' ऐसा मिलनेपरभी पं० बनसीधरजी ' विश्वेश्वर्यादयो ' ऐसाही पाठ होना चाहिये ऐसा दुराग्रह पकड बैठे हैं. उसका कारण क्या होगा सो मालुम नहीं पडता. कोईभी सूरतसे व्यंतरादिकोंका आराधन बढ़ जाय और धनपुत्रादि ऐश्वर्यके लालचसे छांछूंका रिवाज बढकर देवसेवा करनेके बहानेसे निर्माल्यकी कमाई बढना चाहिये ऐसा तो नहीं है?

पं. आशाधर अपने जिनसहस्रनाममें इस मुजब लिखते हैं.

अधिदेवो महादेवो देवस्त्रिभुवनेश्वरः ॥
विश्वेशो विश्वभूतेशो विश्वेड् विश्वेश्वरोऽधिराट् ॥ ६२ ॥

इस श्लोकमें जो ' विश्वेश्वरः ' शब्द है इसका अर्थ क्या करेंगे ?

' विश्वेश्वरादयो ' इसमें ' विश्वेश्वर ' और ' आदयः ' ऐसे मुख्यतः दो शब्द हैं. विश्वेश्वरादयः इसका अर्थ- ' तीर्थंकरादयः ' ' अर्हंतादयः ' ऐसा टिप्पणीपरसे हो चुका तोभी इसमेंके ' आदयः ' शब्द से तो शासनदेवता लेनी चाहिये ऐसा बताकर उसके समर्थनमें श्रीयुत आप्पाशास्त्री उदगांवकरके हस्ताक्षरका एक पत्र जानेवरी १९२२ के जैनसिद्धांतमें प्रकाशित करते हैं. उस पत्रमें श्रीयुत आप्पाशास्त्रीने ' विश्वेश्वरादयो ' ऐसाही पाठ दिया है. और ' पुराणस्थ टिप्पणं ' ऐसा नीचे लिखकर ' विश्वेश्वरादयो ' इस शब्दका अर्थ ' जिनेश्वरा-दयः ' ऐसा दिया है. और फिर नीचे ' अन्वयार्थः ' ऐसा लिखकर " शांतिहेतवः विश्वेश्वरादयः जिनेश्वरादयोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-

साधवः । अत्रादिशब्देन जिनशासनदेवता अपि शांतिहेतवः " ऐसा वाक्य दिया है. सो इसमें ' पुराणस्थ टिप्पणं ' करके जो 'जिनेश्वरादयो ' शब्दका ' अर्थ जिनेश्वरादयः ' ऐसा दिया है सो तो मूळ ग्रंथके प्रतिके टिप्पणीपरसे है. जिनेश्वर शब्दका अर्थ अर्हत् ऐसा देकर आदयः शब्दसे–सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ऐसा दे चुके हैं. आदयः शब्दका अर्थ पं० आशाधरजीनेभी अनगारधर्मामृत पत्र १६५ में अर्हतादयोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधवः–सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय साधु ऐसा दिया है. और पं० मेधावीने धर्मसंग्रह–श्रावकाचारमें श्लोक १४५ ' यथार्हतादयः पंच' इस श्लोकमें वैसाहि दिया है. न्यायाचार्य माणिकचंदजी वैसाही देते हैं. इस परसे सिद्ध होता है कि जिनेश्वरादयः ' तीर्थकरादयः ' अर्हतादयः इन शब्दोंमें ' आदयः ' शब्दसे सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधू येही अर्थ निकलता है. ' शासनदेवता ' ऐसा अर्थ निकलताही नहीं. आदयः यह शब्द बहुवचनांत है उसमें अकेले शासनदेवताकाही समावेश होता नहीं; लेकिन सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधू ऐसे अनेकोंका समावेश होता है. इसमें सिर पटकनेकी पंडितजीको बिलकुल जरूरत नहीं है. श्लोकमें आदयः शब्द एकही है उसका अर्थ चार परमेष्ठी ऐसा आप्पाशास्त्री कर चुके हैं. और दूसरा आदि शब्द श्लोकमें है हीं नहीं; तो फिर किस आदि शब्दसे शासनदेवता ऐसा अर्थ निकालेंगे सो मालूम नहीं होता.

पं० बनसीधरजीके माफक श्री० आप्पाशास्त्रीकोभी शासनदेवताकी बडी भक्ति है. उसीसे उनको आदिशब्दमें शासनदेवता घुसादेनी पडी. लेकिन एक वखत आदि शब्दमें चार परमेष्ठियोंको दाखल करलियेबाद फिर उसही आदि शब्दमें शासनदेवता घुसा देनेकी जगा नहीं है ऐसा पं० आशाधर और पं० मेधावीके ग्रंथोंके अर्थपरसे स्पष्ट जाहीर होता है, यह बात पं० बनसीधरजीकेभी जाननेमें आई होगी. लेकिन कोईभी सूरतसे आदिपुराणमें शासनदेवोंका पूजन सिद्ध करनेको कोईभी बतानेवाला मिलजाय तो उनको इष्टही लगता

है. और इसही अभिलाषासे उन्होंने आप्पाशास्त्रीकी पीठ ठोकी है. परंतु आप्पाशास्त्रीने आदिपुराणमें 'विश्वेश्वर्यादयो' ऐसा पाठ नहीं है. 'विश्वेश्वरादयो' ऐसाही पाठ है ऐसा दो बखत प्रसिद्ध करदिया' और टिप्पणीपरसे उस 'विश्वेश्वरादयो' का अर्थ 'जिनेश्वरादयो' ऐसा भी चारसौ वरसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतिपरसे बतादिया, तोभी पंडितजी उस पाठको मानते नहीं गलत बतावे हैं, और कहते हैं कि-"जो इसपर विचार करना चाहते हैं उन्हे चाहिये कि आदिपुराण आदि ग्रंथों-कों वे अक्षरशः प्रमाण मानते हैं क्या ? सो प्रथम जाहिर करें."

विश्वेश्वर्यादयो ऐसा पाठ हुवा तोभी विश्वेश्वरी कोई शासनदेवता न होकर तीर्थंकरकी माताका नाम है 'विश्वेश्वरी जगन्माता महादेवी महासती ॥ पूज्या सुमंगला चेतिधत्तेरूढिंजिनांबिका ॥२२६॥ कुला-द्रिनिलयादेव्यः श्रीर्न्हीधीधृतिकीर्तयः॥ समंलक्ष्म्या पठेताश्च संमता जिनमातृकाः॥ २२७॥' यहांपर पं० बंसीधरजीने विश्वेश्वरी नाम जिनमाताका होनेपरभी उसको श्रीन्ही आदि शासनदेवता बनादी है. (देखो जैनसिद्धांत जून १९२१ पत्र ३६)

इन पीठिका मंत्रोंके आखिरमें जो श्लोक दिया है कि,-"एतैः सिद्धार्चनं कुर्यात्" इस एक वाक्यसेही सिद्ध होता है कि इन मंत्रोंसे सिद्धोंका पूजन करना चाहिये. जहां 'जिसका विवाह उसकाही गीत' जहां सिद्धोंका पूजन बताया वहां शासनदेवोंका कहांसे आयगा ? इतना स्पष्ट वाक्य है वहां शासनदेवोंका पुजन बताना सो कोई भी सूरतसे शासनदेवोंका पूजन महापुराणमेंसे मिलजायतो अपनी शासनदेवोंके तरफ जो तीव्र भक्ति है उसको पुष्टी मिलेगी यही पंडितजीका अभि-प्राय दीखता है. इंद्र, रुद्र, अहमिंद्र, शंकर, सदाशिव, महादेव, उमापति, पशुपति, ब्रह्मा, विष्णु, कृष्ण, बुद्ध इत्यादि रागीद्वेषी देवताओंके नाम अरिहंत भगवानको दिये हैं, और उन शब्दोंके अर्थ वीतरागरूप किये हैं इसका कारण यही है कि, उपासना फगत वीतराग

स्वरूपकी हि होनी चाहिये. उपासनाके बारेमें कहींपरभी सरागीका नाम आगया तोभी उसका अर्थ वीतरागतातरफ लेकर वीतरागस्वरूपकीहि उपासना बढानी चाहिये. सरागताकी उपासना बढनी नहीं देनी. इसी हेतुसे आचार्योंने ' विश्वेश्वरादयो ' शब्दका अर्थ टिप्पणीमें ' जिनेश्वरादयः ' ' अरिहंतादयः ' ' तीर्थंकरादयः ' ऐसा लिखा है वैसेही हेतुसे सहस्रनाममें पं० आशाधरने अरिहंतको इंद्र, विष्णु, कृष्ण और रुद्रभी कहा है. जिनसेनाचार्यने शंकर, सदाशिव कहा है. मानतुंगस्वामीने बुद्ध, ब्रह्मा, शंकर कहा है. इससे आचार्योंका अभिप्राय वीतरागता तरफ खेंचनेका था. लेकिन पं० बनसीधरजी उनको सरागीतरफ खेंचनेका प्रयत्न कर रहे हैं.

इस श्लोकमें ' शांतिहेतवः ' ऐसा एक विशेषण शब्द ' विश्वेश्वरादयो ' शब्दको दिया है सो इस विशेषण शब्दसे शांति करनेवाले शासनदेवता होने चाहिये ऐसा कदाचित मानकर आदि शब्दमें शासनदेवताका समावेश किया ऐसा उनके लेखपरसे दीखता है. बहोतसे लोकोंकी ऐसी समझ है कि, जिनेश्वर अर्हंतभगवान तो निर्ग्रंथ दिगंबर वीतराग स्वरूपी हैं वे फक्त मोक्षका उपदेश देनेवाले हैं. वे शांति करनेवाले नहीं हैं. शांति करनेवाले तो शासनदेवताही हैं. सो जिनको विघ्नोंकी शांति करानी हो उन्होंने शासनदेवताओंकाही आराधन करना चाहिये. लेकिन ऐसा नहीं है. अर्हंत भगवानके स्तवन, वंदना, पूजनसे सब शांति हो जाती है ऐसे प्रमाण जिनवाणीमें भरे पडे हैं. पं. मेधावी अपने धर्मसंग्रह श्रावकाचारमें लिखते हैं—पत्र २१५.

शांतां स्थिरासनां वीक्ष्य प्रतिमां मोक्षदेशिनीम् ॥
जंतोर्यः प्रशमो भावः सच पुण्याय जायते ॥ २९ ॥

अर्थात्— शांत (वीतरागस्वरूप), निश्चल विराजमान तथा मोक्षके स्वरूपको बतानेवाली जिनप्रतिमाको देखकर जीवोंका जो शांत परिणाम होता है वही परिणाम तो पुण्य संपादनका कारण है.

औरभी अर्हंत पूजनके अंतमें लिखा है—

तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु ॥

संपूजकानां प्रतिपालकानां। यतींद्र सामान्य तपोधनानां॥

देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः। करोतु शांतिं भगवान् जिनेंद्रः

कुर्वंतु जगतः शांतिं वृषभाद्या जिनेश्वराः॥

अर्थः-तीर्थंकर भगवान हमे वह शांति करते रहैं. जिनेंद्र भगवान ये सम्यक् पूजा करनेवालेको, आचार्यको, सामान्यतपस्वियोंको, देशको, राष्ट्रको और राजाको शांति करनेवाले हों. ऋषभादि जिनेश्वर जगतकूं शांति करनेवाले हो.

आप्तस्य वपुषः शान्ताऽनुध्यतेऽन्तरदोषता॥

धूमाभावात्कुतो वन्हिर्महंतः कोटरे तरोः॥ २१॥

अर्थात्—देवताओंके बाहिर शरीरमात्रसे यह बात जानी जा-सकती है कि ये देवता शान्तस्वरूप हैं या नहीं?

भावार्थ-जो देवता बाहिर शस्त्रादि रहित होंगे वे स्वयं शान्त स्वरूप होंगे. शस्त्र, अलंकार, वस्त्रादिकोंकी उनकेलिये आवश्यक्ताही क्या है? येतो जिन लोगोंको किसीसें भय होता है अथवा जिनका संसारके साथ संबंध है उन्हीके पास देखे जाते हैं. परमात्मामें तो इनका अंश मात्रभी संभव नहीं है. क्यों कि उनका स्वरूप कृत्यकृत्य कहा जाता है। यह बात ठीकभी है कि जब धूमका अभाव है तो वृक्षके कोटरमें अग्निकाभी संभव नहीं होता।

पं० मेधावीकृत-धर्मसंग्रह श्रावकाचार पृ. ६८

लेखक-पं० उदयलालजी.

शांतिके करनेवाले भगवान वीतरागही है ऐसा जगह जगह लिखा है.

ततो बुद्धिमती सा च मंजाता दुर्बला सती॥

जिनालयं प्रविश्योच्चैः पापस्य विलयप्रदम्॥ १४॥

जिनेंद्रप्रतिमाग्रे च कार्यसिद्धिविधायिनी॥

आत्मनिन्दां करोति स्म भक्तिभारेण माण्डिता ॥ १५ ॥
श्रीजिनेंद्र जगद्वंद्य स्वर्गमोक्षपदायक ॥
अहं दीनकुलोत्पन्ना कस्य दोषोऽत्र दीयते ॥ १६ ॥
त्वमेव शरणं तात दुःखदावाग्निवारिद ॥
किमन्यैर्बहुभिर्देवैः कामक्रोधादिदूषितैः ॥ १७ ॥
(सार्थ आराधनाकथाकोष भाग २ रा पृ० २३३)

अर्थात—" इस कष्ट और चिंतासे मनही मन घुलकर वह जब जिनमंदिर दर्शन करने जाती तब सब सिद्धियोंके देनेवाले भगवानके सामने खडे हो अपने पूर्वकर्मोकी निंदा करती और प्रार्थना करती कि—हे संसारपूज्य, हे स्वर्गमोक्षके सुख देनेवाले, हे दुःखरूपी दावानलके बुझानेवाले मेघ, और हे दयासागर, मैं एक छोटे कुलमें पैदा हुई हूं, इसीलिये मुझे ये सब कष्ट हो रहे हैं। पर नाथ, इसमें दोष किसीका नहीं। मेरे पूरब जनमके पापोंका उदय है। प्रभो, जो हो, पर मुझे विश्वास है कि जीवोंको चाहे कितनेही कष्ट क्यों न सता रहे हों, पर जो आपको हृदयसे चाहता है-आपका सच्चा सेवक है, उसके सब कष्ट बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। और इसलिये—हे नाथ, कामी, क्रोधी, मानी, मायावी देवोंको छोडकर मैंने आपकी शरणली है। आप मेरा कष्ट दूर करेंगेही. "

(पं. उदयलालजीकृत सार्थ आराधना कथा० भाग २ रा पृ. ८६।८७)

इन उपर्युक्त प्रमाणोंसे स्पष्ट होता है कि— विघ्नोंकी शांति अर्हंत भगवानके पूजनसे होती है. तो फिर विघ्नोंकी शांति करनेकेवास्ते रागीद्वेषी ऐसे शासनदेवोंका आराधन, पूजन उपासना कर अपने परिणामोंमें रागद्वेष क्यों वृद्धि करना चाहिये ?

पंडितजी कहते हैं कि— जो गृहस्थ शासनदेवता जो अर्हंतके परिकर हैं इस परिकर सहित अर्हंतको पुजता नहीं वह पूजनके फलसे वंचित रह जाता है. इससे अर्हंत भगवानका महत्व शासनदेवके ऊपर

अवलंबित बताते हैं. परंतु श्रीसमंतभद्राचार्य कहते हैं " देवागमनभो-यानचामरादिविभूतयः ॥ मायाविष्वपि दृश्यंते नातस्त्वमसि नो महान् ॥ १ ॥ अर्थ-हे भगवान आपके पास देवोंका आगमन, आपका अंतरिक्ष गमन, और आपकी छत्र चामर इत्यादि जो विभूति है सो मायावीके विखेंभी देखनेमें आती है सो इससे आपका महत्त्व हम नहीं मानते हैं. आपका महत्त्व तो आप अठरा दोष रहित होनेसे और अनंतचतुष्टयादि गुणोंसे ही माना जाता है. यदि बाह्य विभूति सजावटों ऊपर भगवानकी भक्ति अवलंबित हो तो दिगंबरियोंसेही श्वेतांबर लोक भगवानको मुकुट कुंडल कंकण हारादिकी बहोत सजावट करते हैं उनकी भक्ति दिगंबरियोंसे अधिक होनी चाहिये. शासन देवोंकी सजावट गृहस्थीको मूर्तस्वरूपमें बतानी चाहिये ऐसा पंडितजी कहते हैं परंतु मूर्तस्वरूपमें जैसे साधर्मियोंको एकत्रित किये हुये देखनेमें आते हैं वैसे शासनदेव मूर्तस्वरूपमें नजर नहिं आते हैं. उन्होंने जो भगवानकी सेवा किई है उसका उल्लेखही यहांपर हो सकता है. जैसा पंडितजीने बताया है कि " अहा, धन्य है भगवानका प्रभाव कि जिनकी वीतरागताको अणिमादि ऋद्धिधारी देवभी अपनी ऋद्धिको तुच्छ समझते हुए पूजते हैं. " ऐसे वाक्य गृहस्थ उच्चारते हैं वैसे मुनीभी उच्चारते हैं. ऋद्धिधारी देवोंने भगवानकी पूजा किई उसवास्ते हम उन देवोंकी पूजा करनी चाहिये यह कहांका न्याय ?

अकृत्रिमचैत्यालयोंकी वंदनाके बारेमें एक श्लोक है उसमें— " वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान् ॥ " ऐसा कहा है उसका अर्थ मेरठके पं० बनवारीलालजी और सहारनपुरके पं० बनारसीदासजी और कलकत्ताके पं० अजितकुमारशास्त्री व ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी ऐसा करते हैं कि-भवनवासी, व्यंतरवासी, ज्योतिषवासी और कल्पवासी देवोंके विमानोंमें जे अकृत्रिम चैत्यालयें हैं उनको मैं वंदना

करता हूं. परंतु पं० बनसिधरजी अपने जुलाई १९२१ के जैनसिद्धांत पृ० ४१ में लिखते हैं कि–ऐसा अर्थ होता नहीं, भवनवासी, व्यंतर-वासी, ज्योतिषवासी और कल्पवासी देवताओंकोही वंदना करनी चाहिये.

उभयपक्षकारोंने अपने अपने पक्षके समर्थनार्थ व्याकरण न्याय दिखाये हैं पंडितलोग उनका विचार करेंगेही. लेकिन साधारण बुद्धीमान इतना कहसकेंगे कि–– इस वंदनामें अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वंदना यदि नहीं है फगत चतुर्णिकाय देवोंकी ही वंदना है तो फिर उन चतुर्णिकाय देवोंमेंसे ज्योतिषवासीदेव हररोज अपने दृग्गोचर होते हैं सूर्य दिनभर दीखताहै और रात्रीमें चंद्र, मंगल, बुध, शनि, शुक्र दीखते हैं तो उनकोभी वंदना करनी चाहिये और अर्घ्य देना चाहिये जैसे अन्यमति ब्राह्मणलोग सूर्यको नमस्कार करके अर्घ्य देते हैं वैसेही पंडितजीने करना चाहिये. लेकिन् पंडितजी वैसे करतेहुये देखनेमें आते नहीं.

ऐसे कोईभी जैन सूर्यको वंदना करता नहीं, कदाचित् कोई सूर्यको वंदना करने लगा, या अर्घ्य देने लगा तो उसको मिथ्यादृष्टि कहते हैं. और शास्त्रभी ऐसाही कहता है तो फिर हमारे पंडितजी सूर्यकी प्रत्यक्ष वंदना कैसी करेंगे ?

यदि सूर्य चंद्रके विमानोंको कदाचित् वंदना किई तो भी वह करनेवाला ऐसी सबब कहेगा कि—मैंने सूर्यको वंदना किई नहीं किंतु फकत सूर्यके विमानमेंके अकृत्रिम चैत्यालयको किई है. लेकिन् हमारे पंडितजीका कहना वैसा नहीं है. वे कहते हैं कि–अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वंदना तो अलग है लेकिन अब मै सूर्यचंद्रादिकोंको वंदना करता हुं।

सूर्यके विमानमेंके अकृत्रिमचैत्यालयकी आनंद राजा हररोज पूजा करताथा उसको देखकर औरप्रजाजन सूर्यकी पूजा करने लगे ऐसी कथा पार्श्वनाथपुराणमें है उस विषयमें श्रीसकलकीर्ति आचार्य लिखते हैं.—

तद्विलोक्य जनाः सर्वे तत्प्रामाण्यात्स्वयं च तत् ॥
स्तोतुमारेभिरे भक्त्या पुण्याय रविमंडलं ॥ ८० ॥
अहो लोकाः प्रवर्तंते नृपाचारेण भूतले ॥
सद्विचारं न जानंति कार्याकार्य-शुभाशुभं ॥ ८१ ॥
तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन् बभूवार्कोपसेवनं ॥
मिथ्याकरं च मूढानां विवेकविकलात्मनां ॥ ८२ ॥

अर्थ-राजाका वह पूजन देखकर प्रजाजनभी राजाका अनुकरण करनेके हेतुसे सूर्यमंडलकी भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे. देखो,-राजाके देखादेखीसे पृथ्वीपर लोकप्रवृत्ति चलती है. विचार करते नहीं, शुभाशुभ कार्यको जानते नहीं. तबसे इस दुनयामें सूर्यकी पूजा करनेकी प्रथा शुरू हुई. मूर्ख और विवेकहीन लोकोंने यह मिथ्याप्रवृत्ति चलाई है.

यहांपर श्रीसकलकीर्तिआचार्य तो सूर्यके पूजन वंदनाको मिथ्या प्रवृत्ति बताते हैं और पंडित बनसीधरजी सूर्यचंद्रादिक चातुर्णिकाय देवोंकी वंदना करना और अष्टद्रव्योंसे पूजा करना धर्म बताते हैं. इससे रागीद्वेषियोंका पूजन आराधन बढाने तरफ उनका अभिप्राय प्रगट दीखता है. इस अभिप्रायसेही उनको 'इंद्राय स्वाहा' इसका अर्थ वीतराग इंद्रको छोडकर सरागी इंद्रको आहुति देने तरफ झुक गया है.

सोलापूर.
ता. ६।३।२२ ईसवी

आपका विनीत.
शंकर पंढरीनाथ रणदिवे.

इंद्रायस्वाहाके अर्थपर विचार.

एप्रिल १९२२ के जैनबोधकमें 'इंद्रायस्वाहा का अर्थ' इस शीर्षक लेखमें श्रीयुत रावजी सखाराम दोशी लिखते हैं कि—"इंद्रायस्वाहा" इसका अर्थ क्या करेंगे ? ऐसा पूर्वपक्ष उठाकर रा. रा. शंकर पंढरीनाथ रणदिवेनें एक पत्रिका निकाली है" इत्यादि लिखाहै. सो पूर्वपक्ष मेरा है ऐसा जो श्री. रावजी सखारामनें और पं. वासुदेव शास्त्रीने भी (वैशाख शुद्ध ५ वीरसं. २४४८ खं. हितेच्छु में) लिखा है सो गलत है. मेरा लेख पं० वनसीधरजीके 'इंद्रायस्वाहाका अर्थ क्या करेंगे ?' इस पूर्वपक्षके लेखपर उत्तर है सो मेरा लेख पूर्वपक्ष नहीं होता उत्तरपक्ष होसकता है.

फिर नीचे लिखते हैं "रा. शंकरजी आगमप्रमाणता यह चीज क्या मानते हैं ? यह एक वखत प्रकाशित करेंगे तो ठीक होगा." इसका उत्तर ऐसा है कि—आगमप्रमाणता जितनी आप मानते हैं उतनीहि मैं मानता हूं कोई ग्रंथके कोई वाक्य आप भी तो मानते नहीं हो. आदिपुराण का वाक्य 'विश्वेश्वरादयो' ऐसा केई हस्त लिखित ग्रंथोंमें मिला, पं. वनसीधरजीके श्रद्धेय आपाशास्त्रीने भी दो वखत प्रसिद्ध कर दिया, तोभी उसको आप और पं. वनसीधरजी और पं. जिनदास मानते नहीं हैं. तथा अर्हत भगवानका विसर्जन होता ही नहीं है, वह शासनदेवताओंका होता है ऐसे आप अपने जानेवारी १९२२ के जैनबोधकमें लिखते हैं. क्या यह आपका मत आगमप्रमाण है ? पं. कल्लापा निटवेने किया हुवा और पं. फत्तेलालजीने किया हुवा सुरेंद्र मंत्रोंका अर्थ आप मानते नहीं. शासनदेवताको बृहद्द्रव्यसंग्रह टीकाकार '**मिथ्यादेवता**' कहते हैं और पं. आशाधर '**कुदेव**' कहते हैं उसको आप मानते नहीं हैं. पं. तोडरमलजी और पं. सदासुखजी शासनदेवताको पूजनेमें मिथ्यात्व होता है ऐसा लिखते हैं उसको आप मानते

नहीं. सोमदेवसूरीका वाक्य ' वधूवित्तस्त्रियैमुक्त्वा० ' माने ब्रह्मचर्याणुव्रती भी रंडी रख सकता है ऐसा वाक्य और उसका समर्थन करनेवाला पं. आशाधरका वाक्य जिसका अर्थ पं. कल्लापाने न देनेका सवव अज्ञ लोक इसका विपरीत उपयोग करेंगे, इस भयसे नहीं दिया लिखा हैं. उसही हेतूके अनुसार मैंने भी—ऐसे पुस्तक कोमल अंतःकरणके बालकोंके वाचनेमें आनेसे उनके विचार रंडीवाजी तरफ झुक जायंगे ऐसा लिखाथा. मेरा हेतू और पं० कल्लाप्पाका हेतू एकही है. देखिये वे अपने पत्रमें इस मुजब कहते हैं किं—

" वाहुवलिडोंगर, का. व. १४, १८४३
मु० कुम्भोज.

आपलीं सर्व पत्रें विनचूक नेमकी पोहोंचलीं आहेत आळसामुळें उत्तरें दिलीं नाहींत माफी असावी. शास्त्रार्थ विचारण्यांत आला; उत्तर देणें भाग पडलें.

सागारधर्मामृतातील अ० ४, श्लो० ५२, पृ० ३०६ " यस्तु " इत्यादि टीकेचें भाषांतर समग्र लिहिण्याचें मुद्दाम टाळलें होतें. कारण— अज्ञलोक विपरीत ग्रहण करितील. "

आपने लिखा है कि,— " क्या आप पं. आशाधरजी और श्री. सोमदेवसूरिसे पं. कल्लाप्पा भरमाप्पा निटवे और पं. फत्तेलालजी और पं. पन्नालाल गोधाजी इनके किये हुये अर्थको ज्यादा प्रमाणता देते हो ? इस प्रश्नका उत्तर पं० शंकरजीको देना चाहिये. " इत्यादि. ऐसा धमकीका हुकूम पं. वनसीधरजीके—हजारवार सिर पटकनेके आव्हानन साफिक ही मालुम होता है. परंतु विचार कीजिये सुरेंद्रमंत्रोंके अर्थ पं. आशाधरजीने और श्री. सोमदेवसूरीने फलाने दिये ऐसा मैंने लिखा नहीं है और आपके लेखमें भी उनके दियें हुये अर्थ नहीं है. तो फिर उनके अर्थका और पं. कल्लाप्पा, पं. फत्तेलाल और पं. गोधाजीके अर्थों-

का मुकाबला उनसे कैसा होसकता है? सो आपका प्रश्नही उत्तर मांगने माफक नहीं है. जैसे–एक विद्यार्थीको किसीने प्रश्न किया कि एक रुपियेके पचीस आम मिलते हैं तो दस शेर जुवारीकी कीमत क्या? भाव तो बताते हैं आमका, और कीमत पूछते हैं जुवारीकी! वह बिचारा क्या जबाव देगा? घबडा जायगा. इसी माफक यह आपका प्रश्न है. इसका उत्तर हो ही नहीं सकता.

अब आपका सात पत्रके लेखका सारांश यह है कि, सज्जाति, सद्गृहीत्व, पारिव्राज्य, सुरेंद्रता, साम्राज्य, परमार्हत्य, परमनिर्वाण. ऐसे सात परमस्थानोंकी प्राप्ति होनेकेलिये उनको आहूति देना चाहिये, उनको पूजना चाहिये. यहांपर प्रश्न है कि,–इनकूं आहूति न दें न पूजें और फगत अर्हत और सिद्धकीहि पूजा करैं तो ये सप्त परमस्थान प्राप्त होंगे या नहीं? इस प्रश्नका उत्तर अर्हतकी पूजा करनेसे मिलते हैं ऐसा आपकेही लेखमें मिलता है. देखिये—

पत्र ३२३ में आपने लिखा है कि,– "यह सात तीनों लोकमें श्रेष्ठ स्थान माने जाते हैं. जीवोंकी अर्हत देवकी वाणीरूप अमृतके आस्वादन करनेसे अर्थात जिनवाणीका अभ्यास करनेसे प्राप्त होते हैं. येही सात कर्त्रन्वय क्रियायें हैं." इसमें जिनवाणीका अभ्यास करनेसे सप्त परमस्थान प्राप्त होते हैं ऐसा लिखा है. फिर पत्र ३२४ में आपने लिखा है कि,— "यह जो सात परमस्थान कहे गये हैं वे अर्हतकी सेवा करनेवाले सम्यग्दृष्टिको प्राप्त होते हैं."

रत्नकरंडका श्लोक "देवेंद्रचक्रमहिमा०" का आपने दिया है सो भी इसी अर्थकी पुष्टि करता है. खुद आपने इस श्लोकका अभिप्राय दिया है सोही बताता है कि–"इस श्लोकपरसे जिनभक्ति करनेवालेको चार परमस्थान प्राप्त होते हैं ऐसा भी आशय निकलता है." सुरेंद्रकी भक्ति करनेसे सुरेंद्रका पद मिलता है ऐसा इस श्लोकका भाव नहीं यह बात आपके ही प्रमाणसे सिद्ध हो चुकी.

फिर पत्र ३२४ में आप लिखते हैं– " ये स्थान अर्हतकी सेवा करनेवाले सम्यग्दृष्टीकोही मिलते हैं. " ऐसे तीन वखत आप कबूल करचुके हैं तो फिर बाकी क्या रहा ?

अब सुरेंद्रके पदकी प्राप्ति होनेके वास्ते सुरेंद्रको आहुति देनेकी जरूरत है या अर्हतके पूजासे सुरेंद्रपद मिलता है ? इस विषयमें पं० आशाधर लिखते हैं सो देखिये—

" यथाशक्ति यजेतार्हद्देवं नित्यमहादिभिः
संकल्पतोपि तं यष्टा भेकवत्स्वर्महीयते ॥ २४ ॥ "

सागा० अ० २

भावार्थः—यदि जिनपूजेका फगत संकल्प करनेसेही स्वर्गके इंद्रका पद मंडूक तिर्यंचको प्राप्त हुवा तो फिर जो मनुष्य मन, वचन कायसे अर्हंत भगवानकी पूजा करेगा तो उसको सुरेंद्रका पद मिलना क्या बडी बात है ? अर्थात् सुरेंद्रका पद मिलानेको सुरेंद्रकी पूजा करनेकी जरूरत नहीं है. अर्हतके पूजनसे वह पद सहजही मिलता है. जैसे–मामलेदारका हुद्दा मिलानेकेवास्ते मामलेदारको अर्जी देनेसे वह हुद्दा नहीं मिलता है. उनसे श्रेष्ठ अधिकारी जो रेव्हिन्युकमिशनर हैं उनके तरफ अर्जी करनी पडती है, आप तो सुरेंद्रपद मिलनेको सुरेंद्रकी पूजा करो कहते हैं सो वर प्राप्तीकेलिये रागीद्वेषीकी उपासना करनेका ही उपदेश हुवा. तो फिर यह भी देवमूढता हुई.

शब्दोंके अर्थ दो दो चार चार होते रहते हैं जहां जो अर्थ इष्ट लगता है वहां वह अर्थ लिया जाता है. आपनेही " सत्यजाताय स्वाहा " और " अर्हज्जाताय स्वाहा " व " नेमिनाथाय स्वाहा " इत्यादि मंत्रोंके दो दो अर्थ दिये हैं. सो आशीर्वादमें–जो सुरेंद्रका अर्थ किया वही अर्थ आहुतीके वखत करनेकी जरूरत नहीं है अपनेको सुरेंद्रपदसे मतलब है. यदि सुरेंद्रपद वीतराग अर्हतकी पूजा करनेसे मिलता है तो फिर सरागी सुरेंद्रकी पूजा करके देवमूढताके दोषमें क्यों फसना ?

सुरेंद्र शब्दका अर्थ स्वर्गमेंका इंद्र भी होता है और भगवान अरिहंत भी होता है. आशीर्वादके समय सुरेंद्रका अर्थ—स्वर्गस्थ इंद्र लेना और आहुतिके वखत भगवान अरिहंत लेना. सैंधवका अर्थ लोण भी होता है और घोडा भी होता है. भोजनके समय सैंधवका अर्थ लोण किया जाता है और सवारीके समय सैंधवका अर्थ घोडा किया जाता है.

'अज' शब्दका अर्थ वकरा भी होता है और तीन वरसका पुराना धान ऐसा भी होता है. अव वेदके मंत्रोंमें अजाहुति देनेको लिखा है. उसका अर्थ वकरा ऐसा वसुराजाने किया उस हिंसाके पापसे वह जमीनमें दट गया. वेदमतानुयायी लोक उस अज शब्दका अर्थ वकरा करके यज्ञमें पशुहत्या करते हैं. आर्यसमाजी लोक वेदको मानते हैं और उस मंत्रका अर्थ—यज्ञमें पशु होमना नहीं ऐसा करते हैं. 'अहिंसा परमोधर्मः' यह श्रुतिवाक्य है. इस श्रुतिवाक्यका रक्षण अज शब्दका अर्थ तीन वरसका धान ऐसा करनेसेही होसकता है. वकरा अर्थ करनेसे अहिंसा धर्मका पालन होता नहीं. उस ही मुजव यदि अपन दिगंवर जैन हैं तो अपनेको तो वीतराग निर्ग्रंथकीहि उपासना करनी चाहिये. रागीद्वेषी अथवा सरागी ऐसे इंद्र, सुरेंद्र, अहमिंद्र, चक्रवर्ती इत्यादिकी उपासना वर्ज करनी चाहिये. और इस अभिप्रायको पकड करही मंत्रोंके अथवा शब्दोंके अर्थ करना चाहिये. यदि रागीद्वेषीको आहुति देनेका अथवा उपासना करनेका अर्थ करोगे तो देवमूढता वढ जायगी. यदि कहोगे कि, तीर्थंकरोंके पंचकल्याणिक समय शासनदेवताओंने जो सेवा वजाई है उसके वदलेमें उनको आहुति देनी चाहिये. तो इसका उत्तर यह है कि जिस वखत तीर्थंकरके कल्याणिक समय शासनदेवता प्रत्यक्ष आयेथे उस वखत उनको किसीने आहुति दिई नहीं. तीर्थंकरके पिताने दिई नहीं, माताने दिई नहीं, अयोध्या, वनारस, हस्तनापूर इत्यादि शहरमेंके कोई भी नगरवासीने दिई नहीं. तो फिर हम आहुति क्यों दें? हम उनका अनुकरण करें या

उनके विरुद्ध चलें ? प्रतिष्ठापाठमें और पूजापाठमें जो आहुति देना अथवा पूजा करना लिखा है सो पाक्षिकके वास्ते है, दर्शनिकके वास्ते नहीं है. पाक्षिक श्रावक और दर्शनिक श्रावकमें बडा फेर है. और वह फेर शासनदेवताके पूजन बारेमें मुख्यतासे है ऐसा पं. आशाधरके " आपदाकुलितोऽपि दर्शनिकस्तान्निवृत्त्यर्थं शासनदेवतादीन् कदाचिदपि न भजते । पाक्षिकस्तु भजत्यपीत्येवमर्थमेकग्रहणं । " इस वाक्यसे मालुम होता है. (सागा. अ. ३, श्लो. ७, सं. टीका.)

फिर भी विचार करनेकी बात है कि,—सुरेंद्रपद प्राप्त करलेनेके वास्ते आचार्योंने क्या क्या उपाय बताये हैं जिसके तरफ भी ध्यान देना चाहिये. सुरेंद्रपद प्राप्त होनेकेलिये देवायूके आस्रव संगृहीत करना चाहिये. श्रीमान उमास्वामीने देवायूके आस्रवोंके कारण " सरागसंयम संयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य" यह सूत्र और "सम्यक्त्वंच" यह सूत्र ऐसे दो सूत्र बताये हैं. इन सूत्रोंका विस्तारपूर्वक खुलासा श्री अमृतचंद्र आचार्यने श्री तत्वार्थसारमें दिया है सो इस मुजब है—

" अकामनिर्जरा बालतपो मंदकषायता ॥
सुधर्मश्रवणं दानं तथायतनसेवनं ॥ ४२ ॥
सरागसंयमश्चैव सम्यक्त्वं देशसंयमः ॥
इति देवायुषो ह्येते भवत्यास्रवहेतवः ॥ ४३ ॥

अर्थः—अकामनिर्जरा, बालतप, मंदकषाय, सत्यार्थ धर्मश्रवण, दान, देव, गुरु, धर्मरूपी आयतनसेवन, सरागसंयम धारन करना, सम्यक्त्व धारन करना, देशसंयम पालन करना ये सब देवायूके आस्रवके कारण हैं.

इसमें सुरेंद्रपद मिलनेके वास्ते सुरेंद्रको आहुति देना अथवा उसकी पूजा करना ऐसा बताया नहीं है. किंतु अर्हंत देव, निर्ग्रंथ गुरु और दयामयी धर्म ये जो धर्मके आयतन हैं उनकी सेवा करनेसे सुरेंद्रपद मिलता है ऐसा बताया है. तो फिर सुरेंद्रपद मिलानेको सुरेंद्रको आहुति देना और चक्रवर्तिका पद मिलानेको चक्रवर्तीकी खुपामत करना

व्यर्थ है. जैसे—मामलेदारका हुद्दा मामलेदारको अर्जी करनेसे नहीं मिलता. मामलेदारके श्रेष्ठ अधिकारी जो रेव्हिन्युकमिशनर है उनको अर्जी देनेसे, और अर्जदारकी लायकी उस जगेको होगी, तो मिलता है. आपतो सुरेंद्रपद मिलनेको—सुरेंद्रकी पूजा करो उसको आहुति द्यो ऐसा कहते हैं. सो परभार्मीकेलिये रागीद्वेषीकी उपासना करनेकाही उपदेश हुवा. यह भी तो देवमूढताही हुई.

' अग्नींद्रायस्वाहा ' का अर्थ भी इस तरह होताहै-

पं० आशाधरने अपने जिनसहस्रनाममें—" अमलाभोऽप्युद्धरोऽग्निस्संयमश्च शिवस्तथा " श्लो० ८६ ॥ इस श्लोकार्धमें जिनभगवानको " अग्नि " ऐसा नाम दिया है तो फिर जिनेंद्रको " अग्नींद्र " यह नाम देनेसे कौनसी बाधा आयगी ? वैसेहि भगवानको आसन्नभव्य, निर्वाणपूजार्ह और सम्यग्दृष्टि ये विशेषण लगाये तो भी बिगडता नहीं. देखो आपके श्रद्धेय पं० आशाधरने अपने जिनसहस्रनाममें— " तीर्थकृत्तीर्थसृट् तीर्थकरस्तीर्थंकरः सुदृक् " श्लो० ४७ ॥ ऐसा कहा है इसमें जो " सुदृक् " शब्द है वह सम्यग्दृष्टि वाचक है. इस शब्दकी निरुक्ति श्रुतसागरने— " शोभना दृक् क्षायिकं सम्यक्त्वं यस्य स सुदृक् " ऐसी किहि है तो फिर—" अर्हतको रत्नत्रयपूर्ण कह सकेंगे न की केवल सम्यग्दृष्टि " यह आपका कहना किस प्रमाणसे सिद्ध होता है ? वैसेहि आसन्नभव्य और निर्वाणपूजार्ह ये दो विशेषण भी भगवानको अयोग्य कैसे ठहरेंगे ? इसपरसे यह मालुम होता है कि— पं० फत्तेलालजीने अपने विवाह पद्धतीमें " अग्नींद्रायस्वाहा " का अर्थ जो किया है वह योग्य है ऐसा विचार करनेसे ज्ञात होता है.

और आगे चलकर ' परमार्हताय स्वाहा ' इस बारेमें आपका यह कहना है कि—इसमें मूल शब्द अर्हत् है उसकी चतुर्थी अर्हते ऐसी होगी; यहां आर्हत शब्द है इसवास्ते इसका अर्थ अर्हतके तरफ नहीं लगेगा.

लेकिन इस शब्दके व्याकरण संबंधमें पं० न्यायाचार्य माणिकचंद्रजीको मैने पूछा था उनोंने अपने वैशाख वदी ११ सं. ७९ के पत्रमें– "अर्हतां समुदायः आर्हतम् तस्मै आर्हताय हो सक्ता है। अर्हतोंका समुदाय यह अर्थ होता है।" ऐसा कहा है. सो इससे ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता हैं कि– "परमार्हताय स्वाहा" इसका अर्थ अर्हतके तरफ लगानेसे आपने अपने उस लेखमें कहे मुजब व्याकरण दृष्टीसे भी यहां कुछ दोष लगता नहीं यह सिद्ध होता है.

पं० आशाधरके अनगारधर्मामृत पृ० ५७६ में जो– "कुदेवा रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च।" ऐसा कहा है इस वारेमें पं० वासुदेव नेमिनाथ वारामतिवाले खं. हितेच्छुमें (वै. सु. ५ वीर सं. २४४८) कहते हैं कि–" शासनदेवताको कुदेव कहनेका अर्थ वस्तुतः सिद्ध होता हो यह वात नहीं है।"

और इसही प्रकार श्री० रावजी सखारामजीने अपने जून १९२२ जैनबोधकके अग्रलेखमें अपना मत प्रगट किया है.

किंतु यहांके चतुरबाई श्राविकाविद्यालयमें जैनसमाजसेवक मंडलके मार्फत ता. २७ जून १९२० को शेठ हीराचंद नेमचंद और पं. वंशीधर उदयराज इनके जो प्रश्नोत्तर हुये वे प्रथमश्रावण वीर सं. २४४६ के जैनमित्रमें मैने प्रसिद्ध किये हैं उसमेंसे १८ वे प्रश्नोत्तर इस प्रकार है– " १८ प्रश्न–आशाधरके अनगारधर्मामृतमें शासनदेवताओंको कुदेव ऐसा कहा है। इससे बृहद्द्रव्यसंग्रहकी टीकासे उनको सम्यग्दर्शन नहीं होना चाहिये इस संबंधमें आपका कहना क्या है?"

" १८ उत्तर– कुदेवताओंको सम्यग्दर्शन नहीं होता ऐसा अर्थ नहीं है। कुदेव माने वीतरागसे उलट।

इसमें पं. वंशीधरजीने शासनदेवताको कुदेव कहना कबूल किया है. इस अनगारधर्मामृतके संपादक– न्यायतीर्थ पं. वंशीधरजी है और संशोधक– पं. मनोहरलालजी शास्त्री है।

दुसरे—अनगारधर्मामृतमें इस बाबतके श्लोकमें **पितरौ, गुरू राजापि, कुलिंगिनः, कुदेवाः** ऐसे कहाहै और आशाधरने अपने स्वोपज्ञ टीकामें इन शब्दोंका खुलासा किया है सो इस प्रकार—"माताच पिताच **पितरौ** । गुरुश्च गुरुश्च **गुरू** । दीक्षागुरुः शिक्षागुरुः । **राजापि** किंपुनरमात्यादिरित्यपिशब्दार्थः । **कुलिंगिन** स्तापसादयः पार्श्वस्थादयश्च । **कुदेवा** रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च ।"

यदि इसमें पं० वासुदेवशास्त्री शासनदेवताको कुदेव ऐसा न कहकर केवल रुद्रादिककोही कुदेव कहेंगे तो टीकाकारने जो इसकेही तापसादिके साथ पार्श्वस्थको (जैन भ्रष्ट साधुको) भी कुलिंगी कहाहै यहभी नहीं मानना पडेगा.

इससे स्पष्ट सिद्ध होताहै कि पं० वासुदेवजीका—शासनदेवताको कुदेव कहना वस्तुतः सिद्ध होता नहीं यह कहना फिजूल है.

जैनबोधकके जून १९२२ के अंकमें लिखाहै कि, पार्श्वस्थ सम्यग्दृष्टी होनेसे कुलिंगीके भेदमें नहीं आता; वैसेही शासनदेवता कुदेवके भेदमें नहीं आतेहैं सो अब पार्श्वस्थ कैसे होते है सो देखिए. भगवति आराधनामें और मूलाचार ग्रंथमें पार्श्वस्थका वर्णन दिया है. सो नीचे मुजब है—

केई गहिदा इंदिय चोरेहिं कसायसावदेहिं वा ॥
पंथं छंडिय णिज्जंति साधुसत्थस्स पासम्मि ॥९७॥

अर्थः–कितनेक मुनि इंद्रियरूप चोरनिकरि तथा कषाय रूप दुष्ट तिर्यंचनिकरि ग्रहण किये हुये रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गकूं त्याग करिके अर बाह्य भेषकरि साधुसारिखा रहे हैं—जगतकूं साधु दीखे हैं अर साधु नहीं भेष मात्र है. तातै इनकूं साधुसंघके पार्श्ववर्तीपणातैं पार्श्वस्थ कहिये हैं ॥ भगवती आराधना पत्र ३९७

अब मूलाचार सटीक–पृ० ४४९, अधिकार ७, गाथा ९६–९७

पासत्थोय कुसीलो संसत्तोसण्ण मिगचरित्तोय ॥
दंसणणाणचरित्ते अणिउत्ता मंद संवेगा ॥९६॥

टीकाः—" एते पंच पार्श्वस्था दर्शनज्ञानचारित्रेषु अनियुक्ताः"

दंसणणाण चरित्ते तवविणएणिच्चकाल पासत्था ॥
एदेअवंदणिज्जा छिद्दप्पेही गुणधराण ॥९७॥

टीकाः— " दर्शनज्ञानचारित्रतपोविनयेभ्यो नित्यकालं पार्श्वस्था दूरीभूताः "

इन गाथाका पं० मनोहरलालशास्त्री पाढम निवासीने हिंदी भाषामें अर्थ लिखाहै सो इस मुजब—

अर्थ—संयमीके निकट रहनेवाला, क्रोधादिसे मलीन, लोभसे राजादिकी सेवा करनेवाला, जिनवचनको नहीं जाननेवाला तप और शास्त्रज्ञानसे रहित जिनसूत्रमें दोष देनेवाला ये पांच पार्श्वस्थ आदि साधु दर्शनज्ञानचारित्रमें युक्त नहीं हैं और धर्मादिमें हर्ष रहित हैं इस- लिये वन्दने योग्य नहीं है। ५९३

अर्थ—दर्शन ज्ञान चारित्र तप विनयोंसे सदाकाल दूर रहनेवाले और गुणी संयमीयोंके सदा दोषोंके देखनेवाले पार्श्वस्थ आदि हैं इस लिये नमस्कार करने योग्य नहीं हैं॥ ५९४ ॥

ऐसेही भावप्राभृतमें भव्यसेन मुनीके कथनमें इनका भ्रष्टाचार देखकर एक क्षुल्लकने उनको उद्देशकर कहाहै कि—" ततस्तं मिथ्या-दृष्टिं द्रव्यलिंगिनं ज्ञात्वा भव्यसेनस्याभव्यसेनोऽयमिति नामान्तरं चकार।"

इस वाक्यमें—द्रव्यलिंगीको मिथ्यादृष्टि कहाहै. द्रव्यलिंगी और कुलिंगी एकही अर्थके शब्द है. 'कुलिंगिनस्तापसादयः पार्श्वस्था-दयश्च' ऐसा वाक्य अनगारधर्मामृतके टीकामें है. इसका अर्थ करनेमें जैनबोधकके संपादक जून १९२२ के अंकमें लिखते हैं कि कुलिंगी तापसादिक तो मिथ्यादृष्टि हैं और पार्श्वस्थादिक सम्यग्दृष्टि हैं. किंतु टीकाकारने ऐसा कुछ भेद लिखा नहीं है. पार्श्वस्थादिक सम्यग्दृष्टि होनेके लिये जैनबोधकमें प्रमाण कुछ दिया नहींहैं. भगवतिआराधनामें और मूलाचारमें पार्श्वस्थकूं रत्नत्रय रहित माने दर्शनज्ञानचारित्ररहित

ऐसा बताया है. तो फिर पार्श्वस्थकूं सम्यग्दृष्टि कैसा कहसकते हैं? यदि पार्श्वस्थ दर्शनज्ञानचारित्र रहित है ऐसा सिद्ध हुवा तो फिर उनको कुलिंगीहि कहना पडेगा. और यदि उनकों कुलिंगीके भेदमें पं० आशाधरजीने लिया है तो फिर उसमेंसे उसकूं कैसा निकाल सकतेहैं? यदि कुलिंगीके दो भेद पं० आशाधरने करके उसमें एक तापसादि और दूसरा पार्श्वस्थादि बतादिया तो वैसाही कुदेवाः शब्दके दो भेद 'रुद्रादयः' और 'शासनदेवतादयः' ऐसे जो पं. आशाधरजीने किये हैं उसमेंभी कोई शंका रहती नहीं. जैनबोधकके संपादक शासनदेवतादयः इस शब्दकूं 'कुदेवाः' इस शब्दके भेदमेंसे निकालना चाहते हैं; और उसका सबब ऐसा बताते हैं कि पं० आशाधरको मूल श्लोकमें शासनदेवतादयः यह शब्द अलग देनेको जगा नहीं थी जिससे उनोंने टीकामें दिया है. और यदि शासनदेवताकूं कुदेव कहना होता तो वे 'रुद्रशासनदेवतादयश्च' ऐसा शब्द एकही वखत आदि शब्द देकर कह देते थे.

यह संपादकका तर्क ऊपरका कुलिंगिनः शब्दके भेदमें पार्श्वस्थादयः यह अलग शब्द दिया है सो देखनेसे उड जाता है. उनको शासनदेवतादयः यह शब्द श्लोकमें डालनेकूं जगा नहीं थी यह कहना भी व्यर्थ है सबब कि श्लोक अनुष्टुपही डालना चाहिये ऐसा कुछ ग्रंथकारने गुत्ता लिया नहीं था. अनुष्टुपके जगे शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा आदि अधिक अक्षरोंका श्लोक दे सकते थे. कदाचित अनुष्टुपही देनेकी इच्छा हो तोभी एक अधिक श्लोक अनुष्टुपका दे सकते थे. यदि श्लोकमें न देकर टीकामें ही देना उनको उचित लगा हो तोभी टीकामें पहलेही 'शासनदेवतादयः' ऐसा देकर फिर 'पित्रादयः' इत्यादि शब्द देसकते थे. परंतु वैसा न करके 'पितरौ' शब्दके दो भेद, 'गुरू' शब्दके दो भेद, 'राजाऽपि' शब्दके दो भेद, 'कुलिंगिनः' शब्दके दो भेद ऐसे श्लोकमेंके सभी शब्दके दो दो भेद टीकामें करते

आये उसी मुजब ' कुदेवाः ' शब्दके भी दो भेद ' रुद्रादयः शासन-देवतादयश्च ' ऐसे करदिये. इस मुजब कुदेवके भेदमेंही शासनदेवता-दिकोंको उनोंने जो रखा है सो ऊपरके वाक्योंके अनुसार ही है. इस सटीक अनगारधर्मामृतका संपादन न्या. पं. वंसीधरजीने किया है. और संशोधन पं. मनोहरलाल शास्त्रीने किया है सो मूळ श्लोकमेके शब्द पितरौ, गुरू, राजापि, कुलिंगिनः, कुदेवाः ये शब्द वडे टाईपमें देकर उनके भेद माताच पिताच । गुरुश्च गुरुश्च । दीक्षागुरुः शिक्षागुरुः । किंपुनः अमात्यादि । तापसादयः पार्श्वस्थादयश्च । रुद्रादयः शासनदेव-तादयश्च । ये शब्द छोटे टाईपमें दिये हैं.इससे स्पष्ट होता है कि, मूळ श्लोकमेके शब्दोंकेही ये भेद है. फिर भी वाक्यपूर्तताकी निशाणी खडी रेषा जो किई है सो तापसादयः पार्श्वस्थादयश्च इनके आगे और रुद्रा-दयः शासनदेवतादयश्च इन शब्दोंके आगे किई है.इससे तो अधिक स्पष्ट होता है कि, कुलिंगिनः शब्दके दो भेद और कुदेवाः शब्दके दो भेद किये है. यदि उनके दिलमें पार्श्वस्थादयः यह शब्द कुलिंगिनः के भेदमें और शासनदेवतादयः यह शब्द कुदेवाः शब्दके भेदमें नहीं होना चाहिये ऐसा रहता था तो तापसादयः के आखिरमें और रुद्रादयः के आखिरमें वाक्यपूर्तिकी खडी रेषा देदेते थे. परंतु उन्होने ऐसा यदि नहीं किया है तो पार्श्वस्थादयश्च यह शब्द कुलिंगिनः के भेदमें, और शासनदेवतादयश्च यह शब्द कुदेवाः के भेदमें ही समझना चाहिये ऐसा निश्चय होता है.

बृहद्द्रव्यसंग्रहटीकामें क्षेत्रपाल चंडिकाको मिथ्यादेवता कहाहै उसको संपादक जैनबोधक लिखते हैं कि, वे क्षेत्रपाल चंडिका शासनदे-वता नहीं है कोई अलग है. परंतु जब उस टीकामें रावण, कौरव, कंस इनोंने विद्या साध्य किई जिसका संबंध इन ही क्षेत्रपाल चांडिकाको लगाया है, और रावण, कौरव, कंस ये सब यदि जैनधर्मी थे तो उन्होने जो विद्या साध्य करनेके वास्ते देवताओंका आराधन किया सो जिनशा-

सनदेवता ही होनी चाहिये. अन्यमती देवताका आराधन वहां संभवता नहीं. देखो टिकाकारके वाक्य इस मुजब हैं-

"रागद्वेषोपहतार्तरौद्रपरिणतक्षेत्रपालचण्डिकादिमिथ्यादेवानां यदाराधनं करोति जीवस्तद्देवतामूढत्वं भण्यते । नच ते देवाः किमपि फलं प्रयच्छन्ति । कथमितिचेत्? रावणेन रामस्वामिलक्ष्मीधर विनाशार्थं बहुरूपिणीविद्यासाधिता, कौरवैस्तु पाण्डवनिर्मूलनार्थंकात्यायनीविद्यासाधिता, कंसेन च नारायणविनाशार्थं बह्वोपि विद्याः समाराधितास्ताभिः कृतं न किमपि रामस्वामिपाण्डवनारायणानाम् । तैस्तु यद्यपि मिथ्यादेवतानानुकूलितास्तथापि निर्मलसम्यक्त्वोपार्जितेन पूर्वकृतपुण्येन सर्वं निर्विघ्नं जातमिति ।"

अर्थात्—"जो राग तथा द्वेषसे युक्त और आर्त्त तथा रौद्रध्यानरूप परिणामोंके धारक क्षेत्रपाल चण्डिकाआदि मिथ्यादृष्टी देवोंका आराधन करता है उसको देवमूढ कहते हैं । और ये क्षेत्रपाल, चंडिका आदि देव कुछभी फल नहीं देते हैं । फल कैसे नहीं देते हैं? यदि ऐसा पूछोतो उत्तर यह है कि- रावणने श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीके विनाशके लिये बहुरूपिणी विद्या सिद्धकी, और कौरवोंने पांडवोंका मूलसे नाश करनेके अर्थ कात्यायनी विद्या सिद्ध कीथी, तथा कंसने श्रीकृष्ण नारायणके नाशके लिये बहुतसी विद्याओंकी आराधना कीथी । परंतु उन विद्याओंने श्रीरामचंद्रजी, पाण्डव और श्रीकृष्णनारायणका कुछभी अनिष्ट नहीं किया । और रामचंद्रजी आदिने इन मिथ्यादृष्टि देवोंको अनुकूल नहीं किया, अर्थात् नहीं आराधे तोभी निर्मल सम्यग्दर्शनसे उपार्जित जो पूर्वभवका पुण्यहै उससे उनके सब विघ्न दूर होगये. ।"

जैनमित्रके उसही अंकमें बृहद्द्रव्यसंग्रहके टीकामें क्षेत्रपालादि शासनदेवताको मिथ्यादृष्टि कहाहै उसबारेमें जो प्रश्नोत्तर हुये हैं वे इस प्रकार-"१७ प्रश्न—शासनदेवताओंको बृहद्द्रव्यसंग्रहमें मिथ्यादृष्टि कहा है वह आपने बांचा है क्या?"

" १७ उत्तर—' **मिथ्यादेवानाम्** ' इसका मिथ्यादृष्टी ऐसा अर्थ होता नहीं, वीतरागसे उलट ऐसा होता है । " .

यहांभी क्षेत्रपालादि शासनदेवताको टीकाकारने ' मिथ्यादेव ' ऐसा जो विशेषण दिया है वह पं. न्या. वनसीधरजीने कवूल किया है. और इस संस्कृत टीकाके हिंदीअनुवादक पं. जवाहरलालजी शास्त्री जयपुरवाले हैं; उन्होंने टीकामें " मिथ्यादेवानाम् " इसका अर्थ— " मिथ्यादृष्टी देवोंका " ऐसा किया है.

तथा आपने वैशाख सुदी ५ के " खंडेलवालहितेच्छु " में पांच विद्वानोंके अभिप्राय प्रसिद्ध किये हैं उसमेंसे पं० ए. शांतराजय्या-शास्त्री ह्मैसूरवाले अपने अभिप्रायमें कहते हैं कि—" सुरेंद्रमंत्रमें सत्य-जाताय स्वाहा, अर्हज्जातायस्वाहा, इत्यादि जितने मंत्र हैं वे सव सुरेंद्र (देवोंकास्वामी) वाचक मंत्र है । अतः पं० कल्लप्पा निटवेका—**ने-मिनाथायस्वाहा**—नेमिनाथ भगवानके लिये समर्पण; **परमार्ह-तायस्वाहा**—परमअर्हतके लिये समर्पण यह अर्थ विलकुल गलत है." व " सारांश यह है कि सुरेंद्रमंत्रांतर्गत जितनें मंत्र हैं वे सव देव-राज वाचकही है. " लेकिन् पं. लालारामजीने भी अपने हिंदीसार्थ महापुराणमें **नेमिनाथायस्वाहाका** अर्थ— " धर्मरूपचक्रकी धूरीके स्वामी ऐसे **जिनराज**के लिये मैं समर्पण करताहूं. " (महा-पुराणसार्थ हिंदी पर्व ४०। पृ० १४३२) ऐसा लिखाहै. वे उस अ-पने महापुराणके अर्थ वावत खंडेलवालके उसही अंकमें कहते हैं कि— " मैंने जो आदिपुराणका अर्थ लिखाहै वह संस्कृत टीका, संस्कृत टिप्पणी, पुरानी हिंदी टीका और कल्लप्पाजीकी मराठी टीकापरसे लि-खाहै संस्कृत टिप्पणीपर मेरा पूरा भरोसा था सो जानना. " तो फिर पं० लालारामजीने— **नेमिनाथाय स्वाहा**का अर्थ जो **जिनराज**के तरफ किया वह उनकी क्या गलती है ? यदि गलती है तो पं. लाला-रामजीने उस अपने अभिप्रायमें वह अपनी गलती कवूल क्यों नहीं

किई ? और यदि पं० लालारामजीने लिखाहुवा 'नेमिनाथायस्वाहा' का यह अर्थ अपने विश्वासनीय संस्कृत टिप्पणीके आधारसे लिखाहै तो आप उस अर्थको अमान्य करनेका कारण आपके प्रतिकूल है ऐसा मालूम होताहै. और पं. दौलतरामजीने अपने पुरानी हिंदी टीका (महापुराण) में सुरेंद्र मंत्रमेंसे—" सत्यजाताय स्वाहा " " अर्हज्जाताय स्वाहा " और " नेमिनाथाय स्वाहा " इन वाक्योंका अर्थ केवल अर्हतके तरफही किया है. देखो हस्त लिखित प्रत पृ. ४३२

श्रीमान् पंडित पन्नालाल गोधाजी अपने पत्रोंमें लिखते हैं—

लि० इंदोरसे पन्नालाल गोधाका धर्मस्नेह उभयत्र शम् कार्ड आपका आया। पंडित माणिकचंदजीने आपके लेखकी प्रशंसाकी है पर सुरेंद्रमंत्रोंपर अपना मत प्रगट नहीं किया सो ऐसाही वैशाख सुदी ५ वीरसं० २४४८ के " खण्डेलवाल जैनहितेच्छु " में उनोंने शासनदेव पूजाको सिद्धसा मान गृहस्थको करना प्रतिष्टापाठके आधारपर सिद्ध किया है और गृहविरक्त उदासीन श्रावकको निषेधभी लिखाहै. और रावजी सखारामके लेखकी प्रशंसाभी की है. सो दुतरफा पीठ ठोकना सरीखी है। हितेच्छुने अनुकूल लेख छापे प्रतिकूल नहीं छापे. सो यह भी स्वाभाविक बात है. परंतु आप प्रयत्न करते रहिये अखीरपर सत्य ही की विजय होयगी

पं० लालारामजीने अपने सार्थ हिंदी महापुराणके सुरेंद्रमंत्रोंमें " नेमिनाथाय स्वाहा " का अर्थ २२ वे तीर्थंकरके तरफ लगाया है और उन्होंने संस्कृत टिप्पणीके आधारसे अपनी महापुराणकी वचनिका बनाई है. सो इससे पं. लोकनाथजी और शांतराजय्या शास्त्री हौसूरके—" स्वाहा " और 'नमः' का भेदरूप लेखका खण्डन होता है. क्योंकि उक्त मंत्रमें 'नमः' शब्द नहीं है और २२ वे भगवानको 'स्वाहा' शब्दकर आहुति दी है. सं. १९७९ ज्ये. कृ १.

श्री सोलापुर शुभस्थान श्रीमान् पंडित शंकरजी पंढरीनाथ रणदिवे योग्य.

इंदोर तुकोगंजसे पन्नानाल गोधाका श्रीधर्मस्नेह वाचना उभयत्र शम् पत्र आपका आया.

तथा जो पं० माणिकचंदजीने लिखा है उसका उत्तर मेरी बुद्धि अनुसार यह है कि अपने अभिप्रायमें वे कहते हैं कि- "विशेप शास्त्र देखनेपर निर्णय करूंगा. सभी मैंने क्रियाकांडके शास्त्र नहीं देखे है" इस वास्ते उनकी सम्मति उनके लिखनेसे ही पूरी मान्य नहीं होती.

दूसरे उन्होंनें प्रतिष्ठापाठोंका प्रमाण दिया है सो एक तो यह है कि–यह चर्चा प्रतिष्ठापाठके विपयमें नहीं चलरही किंतु नित्यपूजनके विषयमें है. प्रतिष्ठामें कदाचित् कोई कमश्रद्धानी विघ्ननिवारणके वास्ते बुलावे तो बात अलग है किंतु नित्यपूजनमें कोई विघ्नोंकी शंका नहीं.

फिर वह लिखते हैं कि– "गृहविरत उदासीनश्रावकको उक्त कृतियां आवश्यक नहीं प्रतीत होती." सो यह भी उनोंका लिखना ठीक नहीं है. क्यौं कि मिथ्यात्वकी अपेक्षा उदासीनश्रावक ये क्रियायें नहीं करें तो क्या साधारणगृहस्थ मिथ्यात्व क्रियाको करसकता है? कदापि नहीं. और जो यह कहा जाय कि उदासीन श्रावक आरंभका त्यागी ये क्रियांये नहीं करैं सो भी ठीक नहीं. क्यौं कि जो आरंभका त्यागी होगा वह तो प्रतिष्ठाही नहीं करेगा न करावेगा. फिर एक शासनदेवकोही पूजनेका निषेध क्यौं ?

और भी उनोंने लिखा है कि– शास्त्रोंमें तथा महापुराणमें भी शासनदेवोंकी पूजाका विधान है. सो कौनसे प्रामाणिक शास्त्रमें विधान है उसका प्रमाण देना चाहिये. इसही तरहसे आदिपुराणमें भी जिस विषयमें विवाद चल रहाहै उसके अतिरिक्त आदिपुराणमें स्पष्टतासे शासनदेवोंका पूजन कहां लिखा है? उसका भी प्रमाण देना था.

अर्थात् जो संवत् १००० एकहजारसे पहलेके शास्त्र दिगम्बराचार्योंकर बने हैं उनमें कदाचित् भी ऐसी बातें मैं जानताहूं कि कभीभी नहीं लिखी होगी यह निश्चय जानना चाहिये.

पं० लोकनाथजी मूडबिद्रीवालोंने जो हेतु इंद्रायस्वाहामें दिया है उनका खण्डन तो पूर्व पं० बनारसीदास आदिके लेखोंसे होही गया है और जो प्रतिष्ठापाठोंका प्रमाण दिया उसके विषयमें मैं ऊपर लिखही चुका. तीसरे उन्होंने लिखाहै कि–देवशास्त्रगुरुके समर्पणमें तो स्वाहाके साथमें नमः शब्द होता है और इंद्रादि देवोंके साथमें केवल स्वाहा शब्दकाही प्रयोग होताहै. सो यह हेतु उनोंका ठीक नहीं है. अर्थात् अर्हंतादिकोंके समर्पणमें भी बहुतसी जगह स्वाहा शब्दका प्रयोग है और कोई कोई स्थानमें अन्य देवोंके साथमें 'नमः' शब्दकाभी प्रयोग है इस वास्ते उनका हेतु प्रमाण नहीं है.

त्रेपन क्रियाके मंत्रोंमें प्रतिपक्षी कहते हैं कि–परमेष्टी वाचक मंत्रोंमें तो "नमः स्वाहा" लगाया जाता है और अन्य देवादिकके मंत्रोंमें केवल "स्वाहा" शब्दका प्रयोग होताहै. "नमः" शब्दका नहीं होता. जिसका उत्तर यह है कि– वह कहीं कहीं होता है सर्वथा नहीं किंतु कहीं कहीं इसके विपरीत भी होता है अर्थात अन्यदेवादि वाचक मंत्रोंमें 'नमः' और परमेष्टीवाचकोंमें केवल "स्वाहा" होता है सोही दिखाते हैं.

आदिपुराणमें सात प्रकारके मंत्र कहे हैं उन सातोंमेंही दो दो मंत्र देखिये पीठिकामंत्रमें–सत्यजातायनमः ॥१॥ अर्हज्जातायनमः॥२॥ जातिमंत्र– सत्यजन्मशरणं प्रपद्यामि ॥१॥ अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्यामि ॥२॥ निस्तारकमंत्र—सत्यजातायस्वाहा ॥१॥ अर्हज्जातायस्वाहा ॥२॥ ऋषिमंत्र–सत्यजाताय नमः ॥१॥ अर्हज्जातायनमः ॥२॥ परमराजमंत्र–सत्यजातायस्वाहा ॥१॥ अर्हज्जातायस्वाह ॥२॥ सुरेंद्रमंत्र–सत्यजाताय–स्वाहा ॥१॥ अर्हज्जातायस्वाहा ॥२॥ परमेष्टी मंत्र ॥७॥—सत्यजाता-

यनमः ॥१॥ अर्हज्जातायनमः ॥२॥ इस प्रकार सत्यजात और अर्हज्जात ये दो मंत्रोंमें सातोंही जातके मंत्रोंमें कहीं ' नमः ' कहीं खाली ' स्वाहा ' का प्रयोग है और मंत्र वेके वेही; इस वास्ते उनका हेतु व्यभिचारी है.

तथा दूसरे पत्रमें औरभी बहुतसे मंत्र हैं उनमें कोई कोईमें ' नमः ' शब्द है कोई कोईमें नहीं है किंतु अन्यदेवोंके मंत्रोमेंभी नमः शब्द है सो देखलीजो। तथा परमराजमंत्रमें " नेमिनाथाय स्वाहा " और " नेमिविजय स्वाहा " तथा सुरेंद्रमंत्रमेंभी " नेमिनाथाय स्वाहा " है सो जब वे ' इंद्र ' शब्दमें तो खास देवोंके इंद्रका अर्थ करते हैं जो कि इंद्र शब्द जिनभगवानके नामपर (जिनेंद्र) प्रसिद्ध है और नेमिनाथ तो सिवाय नेमिनाथ भगवानके और किसीका ऐसा प्रसिद्ध है नहीं सो इस नेमिनाथ तीर्थंकरको छोडकर वे अन्य अर्थ क्यों करते हैं? क्या अपने मतलब आवे तव तो इधर ढुलकजाय? सो यह उनका पक्षपात है आप प्रयत्न अच्छा कर रहे हैं मै धन्यवाद आपको देताहौं आप प्रयत्नमें लगे रहिये कभीना कभी सत्यकी विजय होगी.

तथा आशाधर प्रतिष्ठापाठमें अध्याय दूसरा तीर्थोदक दानविधानमें—

ॐ ऱ्हीं अर्हं श्रीपरमब्रह्मणे अनंतानंतज्ञान शक्तये इदं जलं गंधमक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं फलं पुष्पांजलिंच निर्वपामीति स्वाहा॥

तथा ॐ ऱ्हीं श्री प्रभृति देवताभ्य इदं जलं गंधमक्षतान् पुष्पाणि चरुं दीपं धूपं फलं पुष्पांजलिंच निर्वपामीति स्वाहा ॥

इसी तरह गंगादि देवी ॥ सीताविद्धमहाह्रद देव ॥ सीतोदा मागधादितीर्थदेवी ॥ संख्यातीतसमुद्र देव ॥ लोकाभिमततीर्थ देव ॥

इसमें अर्हतको और अन्यदेवादिकोंको एकही मंत्रसे केवल स्वाहा शब्दसे पूजे है और अर्हतके लिये यहां ' नमः ' शब्दका प्रयोग नहीं किया है.

तथा सकलीकरण विधान में—पंचपरमेष्ठीवाचक मंत्रोंमें ' नमः '

शब्द नहीं है केवल ' स्वाहा ' है. । तैसेही जिनसहस्र नाम विधान-मेंभी-" ॐ ब्रह्मणे जलं निर्वपामि स्वाहा, ॐ न्हीं शिवाय जलं निर्वपामि स्वाहा ॐ न्हीं जिनाय जलंनिर्वपामि स्वाहा " इत्यादि कहाहैं.

इस तरह आशाधर कृत सारे प्रतिष्ठापाठमें कोई दो चारको छोडकर संपूर्ण मंत्र पंचपरमेष्ठीवाचक तथा देवदेवीवाचक सवोंमें ' स्वाहा ' एक सारिखे बराबरीसे करे है हीनाधिकता बिलकुल नहीं जिन वाक्योंसे परमेष्ठीयोंका आराधन उनी वाक्योंसे सब देवी देवोंका आराधन किया है.

अब ' नमः ' शब्दकाभी देवदेवियोंमें कियाहै सो देखिये सरस्वति प्रतिष्ठामें-ॐ वाग्वादिन्यैनमः ॥ भगवत्यैनमः ॥ सरस्वत्यैनमः ॥ श्रुतदेव्यैनमः ॥ इत्यादि.

इसही समान अन्यदेवियोंको देखिये. ॐ नन्दायैनमः ॥ स्तंभिन्यै नमः ॥ इत्यादि ॥

फिर ॐ रोहिण्यै नमः तथा मयूरवाहिन्यै इत्यादि परमेष्ठी और देवदेवी सवोंका बराबर पदसे (विनयसे) आराधन कियाहै. तथा औरभी कर्णपिशाचिनी आदि मंत्रोंमें ' नमः ' शब्द है. देखिये-श्रीँ न्हीँ क्लीँ कर्णपिशाचिनि नमः (प्रतिष्ठा सारोद्धार)

इसही भान्त वसुनंदि प्रतिष्ठापाठमें-ॐणमो अरहंताणं स्वाहा ॥ ॐ अर्हत्सिद्धसयोगकेवालिभ्यः स्वाहा ॥ ॐ नंद्यावर्तवलयाय स्वाहा ॥ सकली करणार्थं ॥ ॐ णमो अर्हंताणं आदि पश्चात्णमो आगासगामिणं ॥ णमो विज्जाहराणं इत्यादि अन्य देवीयोंमें ' नमः ' शब्द परमेष्ठियोंके साथमें बराबरसे दिया है इससे कहीं तो परमेष्टियोंको ' नमः ' शब्द न होकर केवल ' स्वाहा ' शब्दसे आराधन किया है सो ऐसेभी मंत्र बहुत है. तथा ' नमः ' शब्दसे कहीं कहीं अन्य देवोंका भी आराधन किया है इससे सिद्ध हुवा कि जो हेतु परमेष्ठी और अन्यदेवोंकी पूजामें दिया जाता है कि परमेष्ठीको ' नमः ' और अन्य देवोंको केवल ' स्वाहा '

होता है ' नमः ' नहीं होता सो पं० लोकनाथजी, पं० ए. शांतराजय्या म्हैसूरवाले, श्री० रावजी सखारामजी इनका वह हेतु असत्य ठहरा.

तथा पं० वासुदेव नेमिनाथजी बारामतिवालेने पं० आशाधरजी बावत आपपर आक्षेप किया है उसका उत्तर इतनाही है कि—अन्यमति हिंदुमुसलमान जो यज्ञादि तथा मसाजिद आदिमें जीवघात करके धर्म मानते हैं उन्हीको उन्हीके शास्त्र कुरानसे दिखायाजाय कि–हिंसा निषेध है. तो क्या उनके शास्त्र जैनियोंको सर्वही प्रमाण हो सक्ता है ?

पं० आशाधरने—पाक्षिकको सप्तव्यसनमें वेश्या व परस्त्रीका त्याग कराया और प्रथम प्रतिमामें सातव्यसनके अतिचारोंमें वेश्याका आवागमन भी छुडाया और दूसरी प्रतिमामें वेश्या सेवनको अतीचारमें कहा और वह अतीचार पहली प्रतिमा व पाक्षिकमें लगाना सिद्ध किया सो संथापन और निषेध एकस्थान दोनों विरोधरूप; और इसही तरहसे शासनदेवोंको अपने मनमें भी न लावें और फिर प्रतिष्टापाठादिमें पूज्य बतावें जो दूसरी प्रतिमावालाभी मुख्यतासे पूजनप्रतिष्ठा करता है. यह पूर्वापर विरुद्ध वचन होते सो प्रामाणिक कैसे हो सक्ता है ? परंतु आपसारिखे जो प्रमाण मानते हैं जिससे आपकोही समझानेको आशाधरका प्रमाण दिया है.

और भी वे अपने लेखमें लिखते हैं कि–शं. पं० आधुनिक पंडितके वाक्य जो अपने मतकी पुष्टीके होते है सो तो ले लेते हैं और विरुद्धोंको नहीं लेते. इत्यादि.

सो यह तो शास्त्रोंकी आज्ञाही है कि–जो पूर्वाचार्योंके अनुसार वाक्य हो वह चाहे जिसके हो निःशंक ग्रहण करना. किंतु जो विरुद्ध होवे चाहे बडेभारी पंडितकेभी वचन होतो त्याज्य है। दूसरे प्रसिद्धभी है कि—आचार्य, पण्डित तथा वर्तमान के उपदेशक आदि ख्रिश्चियनोंके मुसलमानोंके कुराण, इंजिल आदि पुस्तकोंके तथा व्याख्यानोंके वाक्योंसे जैनधर्मके तत्वोंको पुष्ट करते हैं. तो क्या उनको ख्रिश्चियनधर्म

या मुसिलामीन धर्मके श्रद्धानी कहे जाते हैं ? कदापि नहीं. तैसेही आपने पं. कल्लपा, पं० फत्तेलालजी, पं. आशाधर आदिके वाक्य प्रमाणमें दिये वे उतनेही प्रमाण हैं; जो जैनऋषिवाक्योंके अनुकूल हैं. ।

अतएव आशाधरका प्रमाण देनेको आपके ऊपर आक्षेप किया है सो उलटा है. जैसे जिस बातको वादी माने और वह प्रतिवादीके पक्षको पुष्ट करती होवे तो प्रतिवादीको योग्य है कि– अन्य पुरावा न देकर उसीका पुरावा देवें, तो इकवाली डिगरी हो जाती है. इसही तरहसे जो आशाधर खुद शासनदेवोंको माननेवालाही निषेध करे तब इसके सिवाय जबरदस्त और दूसरा पुरावा क्या हो सकताहै ? ।

और पं० शान्तराजय्याजीने आपको खं० हितेच्छुमें जो सीख दीहै वह सीख उनीहीको लेना चाहिये । वेही अन्यथा अर्थ कररहे हैं. " अर्हज्जाताय " " परमार्हताय " " नेमिनाथाय " का अर्थ पं० कल्लप्पा भरमप्पाने अर्हन्त और नेमिनाथ भगवानको अर्पण; ऐसा जो किया है उसके बाबत वे लिखते हैं कि– यह अर्थ गलत कियाहै. सो यही उनका पक्षपात है आप जो ' इंद्रायस्वाहा ' का अर्थ तो इंद्रोंके लिये माने, और अर्हतका अर्थ अर्हतकेलिये न माने ? कितनी बडी-भारी पक्षपात है? इंद्रनाम तो भगवानका प्रसिद्धही है. परंतु अर्हत् नाम किसी इंद्रका प्रसिद्ध नहीं है.

तथा आशाधरने सागारधर्मामृतके दर्शनप्रतिमाके अधिकारमें स्पष्ट लिखाहै कि–प्रथम प्रतिमाधारी शासनदेवको मनमेंभी न लगावें. तब बताइये प्रथम प्रतिमासे भी उंचा दरजेका दुसरी प्रतिमाधारीही के पूजन प्रतिष्टाकी मुख्यता है तो वह कैसे शासनदेवको पूजे ?

सं० १९७९ ज्ये० कृ. ५

श्रीमान् पं० धर्मभूषण ब्रह्मचारीजी शीतलप्रसादजी, संपादक 'जैनमित्र' अपने ज्येष्ठ वदी २ वीरसं. २४४८ (ता० १८ मे १९२२) के साप्तान्हिक पत्रमें मेरे लेखपर अपने नोटमें अपना अभिप्राय इस मुजब प्रगट करते हैं—

" नोट—सिद्धार्चनमें व अर्हत पूजनमें व स्तोत्रोंमें बहुधा विद्वान् कवि अन्यमतियोंके मानेहुए देवोंके नाम लेकर स्तुति करते हैं जिससे उनका प्रयोजन यही दिखानेका होताहै कि सच्चा आप्तपना अर्हत व सिद्धमें है—**जो स्वरूप अरहंतका है उसमें तो उन शब्दोंका यथार्थ अर्थ लगसक्ताहै परंतु जिस स्वरूपको अजैन मानते हैं उनमें ठीक भाव नहींआता**—इसी बातको दिखाते हुये भी पूज्यपाद स्वामीने समाधिशतकमें यह श्लोक कहा है—

जयंति यस्यावदतोऽपि भारतिविभूतयः तीर्थकृतोऽप्यनीहतुः ॥
शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे । जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः ॥२॥

इसमें शिव, ब्रह्मा, सुगत, विष्णुका नाम आनेपरभी उनके कार्यक्रमके आनंदरूप, धर्ममार्ग विधाता, सर्वज्ञ, ज्ञानापेक्षया सर्वव्यापी करने होंगे। यदि कोई इनके अर्थ अजैनोंके मानेहुए शिव, ब्रह्मा, विष्णु व बुद्ध करने लगे तो सर्वथा असंगतहै। **कविगण अपनी चतुराईसे मनसे आकर्षित करनेवाले शब्द रखकर ठीकठीक भाव दर्शातेहैं।** सिद्धचक्रपूजाविधान संस्कृतमें कई नामोंमें अजैनका नाम आया है परंतु वे सर्वनाम सिद्धभगवानकेही वाचक हैं।

संपादक—'जैनसिद्धांत'को उचितहै कि, सिद्धान्त की आम्रायके अनुसार यथार्थ अर्थ जैनजनताको बतावें। कुछकाकुछ अर्थ करके जनताको भ्रममें न डालें। संपादक."

पं० अजितकुमारजी शास्त्रीने अपाढ वदी ५ वीर सं० २४४८ के खंडेल० जैनहितेच्छुमें लिखाहै कि—" हमको केवल इतना कहना है कि आधुनिक पूजन पुस्तकोंमें जो कृत्याकृत्रिमादि श्लोक है उसका अर्थ

वही है जो कि पं० वनसीधरजीने कियाथा. यह यदि आप न जान-सकें तो किसी संस्कृतज्ञ अजैन विद्वानकोही दिखा लीजिए. "

चैत्यभक्तीके " कृत्याकृत्रिम. " इस श्लोकके–" वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् कल्पामरान् सर्वगान् " इस चरणके बारेमें पं. ब्रह्म. शीतलप्रसादजी, पं. वनवारीलालजी और पं. वनारसीदासजी आदि संस्कृतज्ञ जैनविद्वानोंने जो कहा है उसको आप मानते नहीं तो फिर अजैन विद्वानोंने कहाहुवा आपको कैसा श्रद्धेय होगा ? हां यदी उनका कहना आपके प्रतिकूल न हो तब न ? और कदाचित् अनुकूल न हो तो उनका कहना आप मान्य करेंगे क्या ? नहीं. या ऊपर कहे हुवे ये जैनविद्वान् क्या संस्कृतज्ञ नहीं हैं ? तो फिर इससे ऐसा सिद्ध होता है कि–जिसका कहना अपने अनुकूल हो वह आप श्रद्धेय मानोगे; चाहे वह विद्वान् जैन हो या अजैन ! अस्तु फिर भी इस विषयमें और एक जैनविद्वानका मत देताहूं लेकिन् वह मानना या न मानना आपके मर्जी ऊपर है. मैंने इसबारेमें पं० न्यायाचार्य माणिकचंद्रजीको पुछाथा उनोंने अपने चैत्र सुदी ५ सं० १९७९ के पत्रमें लिखा है कि–" कृत्याकृत्रिम " श्लोकका अर्थ तत्रस्थचैत्यालय है. पूर्वापर संदर्भ और मत्वर्थीय अच् प्रत्यय करनेसे तथा विरुद्ध सामानाधिकरण्य दोष न होजाय अतः चैत्यालय अर्थही उपयुक्त है । " **गंगायांघोषः** " का अर्थ लक्षणावृत्तिसे गंगातीरही किया जाता है । "**दुष्कर्मणांशान्तये** " के समभिव्याहारसे नवदेवताही लिये जा सक्ते हैं । सामानाधिकरण्य-न्यायसे मत्वर्थीय प्रत्यय होता है । " **भावनव्यंतरान्** " का अर्थ—भावनस्थ व्यंतरस्थ हो जाता है । "

भवदीय,

माणिकचंद मोरेना. (गवालियर.)

और भी पं. अजितकुमार शास्त्रीजी कहते हैं कि-" अनुचर " शब्दका अर्थ **दास नोकर** है. व 'ग्रामपति' शब्दका अर्थ साफ तौरसे गांवका स्वामी 'राजा' है." इसपर हमारा कहना यह है कि-

सुरेंद्रमंत्रमें- 'अनुचर' शब्दसे इंद्रको आहुतियां देते समयही उनके दासको ही देनी होगी. और निस्तारक मंत्रमें- 'ग्रामपति' जो राजा, या चौधरी पटेल. तथा 'निधिपति' 'वैश्रवण' इन शब्दोंसे कुबेर इनकोही गृहस्थाचार्यके साथ साथ आहुति देनी पडेगी. व ऋषि-मंत्रमेंभी- 'भूपति' 'नगरपति' इन शब्दोंसे राजा; और 'कालश्र-मण' इस नामसे कालश्रमण **यक्ष**कोहि (जो कि पं. लालारामजीने अपने महापुराणमें कहा है.) सर्व संगपरित्यागी परममुनिराजके साथ ही आहुति देनी पडेगी. इसपर विचार करना चाहिये कि- इन विषम पदवीके धारकोंकोही उन सुरेंद्र और निस्तारक मंत्रोंसे आहुतियां देना यह कितना विसंगत दीखता है!

और भी यहां विचार करनेकी मुख्य बात यह है कि-इन सप्तपर-मस्थान मंत्रोंमेंसे प्रत्येक परमस्थानमंत्रके अन्तिम इस सेवाफलका मोबदला इस मुबज मांगा है कि—

सेवाफलं- षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु॥

इस प्रकार प्रार्थना करनेवाला गृहस्थ इन- इंद्र, इंद्रकादास, गृहस्थाचार्य, राजा या पटेल, कुबेर, **यक्ष** और चक्रवर्ती इन सबको आहुतियां देकर अंतमें याचना करता हैं कि- इस सेवा फलसे मोकूं षट्परमस्थानोंकी प्राप्ति होवें. अपमृत्यु न होवें और समाधिमरण भी साधे.

इसपर ऐसी शंका होती है कि- इन षट्परमस्थानोंमें-**परमार्ह-न्त्य, परमनिर्वाण** ये भी सर्वोत्कृष्ट दर्जेके स्थान हैं तो इनकी प्राप्ति इंद्र, गृहस्थाचार्य, कुबेर, दास, यक्ष, राजा, चक्री इनको आहुतियां देकर

याचना करनेसे कैसी होगी ? और अपमृत्यु भी नहीं टलेगा, तथा समाधिमरण भी नहीं साधेगा.

वास्तविक इन सबकी प्राप्ति सिद्ध भगवान् या सत्यार्थ देवगुरुशास्त्र या नवदेवता इनकी भक्ति पूजन (आहुतियां) करनेसेही होगी. कारण- "**स्वयं प्रमादैर्निपतन्भवांबुधौ कथं स भक्तानपितारयिष्यति ॥**" इस नीतिके अनुसार जिसके पास जिस वस्तुकी याचना करनी है वहां वह दाता वह वस्तु देनेकी योग्यता रखता है या नहीं (अधिकारी या अनधिकारी)इसका भी पहले विचार करनाही चाहिये.

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि- जिस समय आहुति देना होता है उस समय उन मंत्रोंका अर्थ अर्हतसिद्धके तरफ लगानाही योग्य है. और जहां आशीर्वाद दिया गया है वहां इंद्र, चक्री, अर्हत आदि अर्थ करना बराबर है. कारण यहां आर्शीवाद है और वहां पुजा करना है.

उदाहरणार्थ- जो कि पं० लालारामजीने भी अपने सार्थमहापुराणमें सुरेंद्रमंत्रमेंसे-"**नेमिनाथाय स्वाहा**" और निस्तारक मंत्रमेंसे- "**स्नातकाय स्वाहा**" व "**अनुपमाय स्वाहा**" इन मंत्रोंका अर्थ आहुति देते समय अर्हतके तरफही लगाया है.

यहांपर हम यह भी सूचित करते हैं कि-इंद्रादि ऐश्वर्यके इच्छासे भगवंतकी भक्ति करना (आहुति देना) यह भी ठीक नहीं है जिससे **निःकांक्षितांग** न पाला जानेसे सम्यक्त्वमें दूषण लगता है इसही हेतुसे इन सुरेंद्रादि स्थानोंकी प्राप्ति शुद्धसम्यक्त्वसेही याचे विना **स्वयं** हो सक्ती है, अन्य उपायसे नहीं होगी. ऐसे श्रीवीरनंदि सैद्धान्तिक अपने आचारसारमेंसे सम्यक्त्वके निःकांक्षितांगकथनमें इस तरह फर्माते हैं देखिये—

देवेंद्रादिश्रियो यस्मिन्सत्यायांति स्वयं सताम् ॥
सम्यक्त्वेऽनुपमे तस्मिन् किं तया परचिंतया ॥५६॥

और इसमें कोई ऐसी भी शंका उठावें कि- इन मंत्रोंके अन्तमें-

षट्परमस्थान प्राप्त होवें, अपमृत्यु नाश होवें और समाधिमरण भी साधें; ऐसा कहा गया है. तो फिर इस प्रकार भगवानके सेवाफलकी इच्छा रखना यह भी ठीक नहीं; यह तो निदान कहा जावेगा.

इसका उत्तर यह हैं कि- यह भक्ति रागपूर्वक है निदान नहीं है. क्यौंकि, संसारके कारणीभूत इच्छाको निदान कहते हैं. यहां संसारके कारणका अभाव है. जिसको पारमार्थिक फलेच्छा कहते हैं. जैसे- " वंदे तद्गुणलब्धये " इसका विशेष स्पष्टीकरण मूलाचारमें इस प्रकार किया है—

टीका— एवं विशिष्टास्ते जिनवरेंद्रा मह्यमारोग्यं जातिमरणाभावं बोधिलाभं च जिनसूत्रश्रद्धानं दीक्षाभिमुखीकरणं वा समाधिं च मरण-काले सम्यक्परिणामं ददतु प्रयच्छन्तु, किं पुनरिदं निदानं न भवति न भवत्येव कस्माद्विभाषात्रविकल्पोत्रकर्तव्यो यस्मादिति ॥ ६९ ॥ तेषां-जिनवरादीनामभिमुखतया भक्त्या चार्था वांच्छितेष्ट सिद्धयः सिद्ध्यंति हस्तग्राह्या भवंति यस्मात्तस्माद्भक्तीरागपूर्वकमेदद्रुच्यते न हि निदानं संसारकारणाभावादिति ॥ ७५ ॥ (मूलाचार सटीक पृ० ४३४)

इसका अर्थ पं० मनोहरलाल शास्त्रीने ऐसा दिया है- " अर्थ- ऐसे पूर्वोक्त विशेषणोंसहित जिनेंद्र देव मुझे जन्ममरणरूप रोगसे रहि-तकरें तथा भेद ज्ञानकी प्राप्ति और समाधि मरण दें। क्या यह निदान है यहां विकल्पसें समझना ॥ ५६६ ॥ अर्थ- उन जिनवरोंके सन्मुख होनेसे तथा उनकी भक्तीसे वांछित कार्य सिद्ध होते है इसलिये यह भक्ति रागपूर्वक है निदान नहीं है क्यौंकि संसारके कारणको निदान कहते हैं यहां संसारके कारणका अभाव है ॥ ॥५७२ ॥ "

शब्दोंके अनेक अर्थ होसकते हैं. जैसा अज शब्दका अर्थ बकरा भी होता है और पुराना धान भी होता है. सैंधव शब्दका अर्थ घोडा भी होता है और लूण भी होता है. जैसा जहां प्रकरण होगा वैसा वहां अर्थ लेना चाहिये यह बात पंडित पन्नालालजी सोनी आदि सभी

पंडितलोक मान्य करते हैं. अब विचारनेकी बात है कि आदिपुराणमें सुरेंद्रमंत्र आदि जो पीठिकामंत्र हैं सो भरतचक्रीनें श्रावकोंको बताये हैं. यदि ये शासनदेवके पूजन अथवा आदरसत्कारके वास्ते कहेनेका उनका इरादा होता तो आप भरतचक्री आदिभगवानके समवसरणमें गये वहां उनको शासनदेवताका मिलाप प्रत्यक्ष हुवा था, लेकिन उन्होंने उनका पूजन, आहुति अथवा आदरसत्कार क्यों नहीं किया ? समवसरणमेंके मानस्तंभोंका, धर्मचक्रका, ध्वजाओंका और केवली भगवानका पूजन भरतचक्रीने किया ऐसा लिखा है. परंतु शासनदेवता प्रत्यक्ष मिलनेपर भी उनका पूजन,आहुति,सत्कार अर्घ्यदेना कुछ किया नहीं. इतनाही नहीं किंतु इससे उलट– भरतचक्री समवसरणमें आते समय द्वारपालशासनदेवताओंने उनका बडे आदर सत्कारसे भीतर प्रवेश कराया ऐसाहि प्रमाण मिलता है देखो—

> ततो दौवारिकैर्देवैः संभ्राम्यद्भिः प्रवेशितः ॥
> श्रीमंडपस्य वैदग्धीं सोऽपश्यत्स्वर्गजित्वरीम् ॥ १८ ॥
>
> (महापुराण पर्व. ॥ २४ ॥)

इसपरसे अनुमान होता है कि, भरतचक्री शासनदेवताका पूजन, आहुति, आदरसत्कार अथवा अर्घ्यदेना यह कहेंगे नहीं. इतना सिद्ध हुवा तो फिर सुरेंद्रमंत्रोंका अर्थ शासनदेवोंके पूजनपर न लगाकर अर्हंतसिद्ध आदिपरमेष्ठीके पूजनपर लगानाही प्रकरणसंगत होगा.

सोलापूर,
ता. ११।७।१९२२.

आपका नम्र,
शंकर पंढरीनाथ रणदिवे.

उलटा चौर साहकौं डंडै !!

पाठकवृंद, शुद्ध जैनधर्ममें वीतरागदशाही पूज्य है यह वाल गोपाल सर्वही जानते मानते हैं जिनके थोडाभी ज्ञान है. ओर नाम मात्रका जैनी है वहभी यह कहैगा कि सरागी पूज्य कदापि नहीं. वस यही कारण है कि अर्हतदेव और इन्हींका कहा हुवा शास्त्र तथा निर्ग्रंथ गुरु एही पूज्य है. इनके सिवाय जो रागादि दोषयुक्त चाहे कोही देवहो, गुरुहो, शास्त्रहो, कोईभीहो अपूज्य है. जो पुजे सो मिथ्यादृष्टि यह प्रसिद्ध है. इनको मोक्षमार्ग प्रकरणमें और कोई मान्य नहीं हैं. जो नवदेव कहे है. कि पंच परमेष्टी जिनवानी, जिनप्रतिमा, जिनधर्म, जिनभवन ये नवदेव शास्त्रोंमें कहे वे सव देवशास्त्रगुरु ए तीनही है. तथा पंचपरमेष्टी सोलह कारण दशलक्षण रत्नत्रय व जिनवानी ए नव कहे. सो एभी उन तीनसे भिन्न नहीं है. परंतु वर्तमानके कतिपय पंडितगण इन देवशास्त्रगुरुकी पूजासे स्यात् अपना कल्याण होना नहीं समज इन तीनके सिवाय चार प्रकारके इन्द्रादिक व यक्षादिकी पूजाको मुख्य करते हैं. ओर अपनी न्यायव्याकरणादिकी पंडिताईके जोरसे जिनवानीके शब्दोंके अर्थको अनर्थरूप करके जैनसमाजमें मिथ्यात्वको दृढ कराकर डुबते हुए प्राणियोंके गलेमें पत्थर बांधते हैं कि कदाचित कोई डुवतार उछलता हो सोभी उछलने नहीं पावे. इस वास्ते जो कल्याणके इच्छक होवे उनोको अच्छी तरहसे दृढ रहना चाहिए; ऐसे पंडितोंके जालसे सदैव सावधान रहना चाहिए. क्योंकि संसारमें जितने मतमतांतर पाखंड प्रगट हुए हैं वह वडेवडे विद्वान मिथ्याश्रद्धानियोंनेही चलाए हैं. विचारे ऐसे वैसे विद्वानकी सामर्थ्य नहीं. पहले जमानेमें एक हजार वर्षके पीछे भट्टारकोंने दिगम्बरधर्ममें मिथ्यात्वकी प्रवरती करीथी. पीछे तेरा पंथियोंने मिथ्यात्वको घटायाथा. किंतु अव आधुनिक कतिपय विद्वानोंने

फिर बीडा उठाया है. क्योंकि नामवरी यातो कोईभी श्रेष्ट कार्य करनेसे होवे या बुरे कामसे होती है. सो श्रेष्ट काम तो वडाही मुश्कील है. क्योंकि उसमेतो इंद्रिया ओर कपायोंको जीतना पडता है. मिथ्याश्रद्धान व अन्याय अभक्षको छोडना पडता हैं. देवपुजादि पटकर्म करने पडते हैं. व नैष्ठिकश्रावक होकर प्रतिमाओंको धारण करना पडता हैं; व मुनिव्रत करना पडता है; क्योंकि जिनवानीके अभ्यासका मुख्य फळ यही है. सो तो पंडितजन वर्तमानमें विपयकपायोंके लंपाटियोंसे होता नहीं. तो अब क्या करैं ? जिनवानीका अभ्यास किया है तो कुछ इस विद्याका वल दिखाकर अपना नाम प्रसिद्ध करें. ऐसा विचार कर अपने विद्या वलकर शास्त्रोंके अर्थोंको पलटने लग गए. जैसे महावीर स्वामीका मासिका वेटा मस्सकपूरने मुसलमानी धर्म चलाकर उलटी प्रवरती कराई तथा आदिब्रह्माका पोता मारीचने अनेक पाखंड चलाए. तैसेही ए मिथ्यामत जो वीस तेरासे पृथक यातो ३३ तेतिस पंथ अथवा सात माआदि पंथ या ओर कोईसा नामधारकै पंथ प्रगट करना चाहते हैं. क्योंकि भट्टारकोंमेंतो ए मिलने नहीं चाहते; वाकी सर्व क्रिया वीस पंथीयोंकी जिसको अशुद्धाम्नायसेभी कहते हैं सो प्रगट करके कोई न्यारा पंथ प्रगट करेंगे. इसीही वास्ते धर्मेच्छु पुरुपको चेतानेके अर्थ मैं उन पंडितोंके विरुद्ध ओर सत्य जैनदिव्यधर्मकी सत्ता भव्य जीवोंके हृदय में वनीरहे इसवास्ते लेख लिखताहूं. मेरे उन पंडितोंसे जाती कोई द्वेष भाव नहीं है.

एक लेख मैंने जैनमित्रमें प्रकाशित करनेको भेजाथा वालिस्टरी पंडिताईके नामका, वह चार पांच महीनातक जै. मि. में प्रकाशित नहीं हुवा. जिससे मैंने फिर लेख लिखना वंद कर दियाथा. अब वह लेख जै. मि. अं. २८ में प्रगट किया. उसपर क्रुद्ध होकर पंडित अजितकुमारशास्त्रीजीने मेरे ऊपर अनेक असत् आक्षेपोंकी भरमारकरके इंद्रादिक सरागी देवोंकी पूजाको पुष्ट करते मेरे लेखको खंडित करनेकी

चेष्टा की है. परंतु सत्य सत्यही है ओर झूठ झूठही है; एक झूठ बोली जाय उसके पुष्ट करनेको सैंकडो झूठे बोली जाती है. परंतु जो चतुर पुरुष होते हैं वे थोडेमें ही जाचकर लेते हैं. इसही तरहसे जो निष्पक्षी पुरुष होंगें वे स्वयं उनके लेखोंकी सत्यासत्यको जान जायगे. इसही तरह दूसरा लेख जैनहितेच्छूके संपादकजीनेभी लिखा है. वह तो विलकूलही उनके स्ववचन बाधकहै. जैसे मेरी मा ओर वांझ, विलकूल असंबंद्ध बात है.

मै इन दोनों लेखोंपर उत्तर लिखकर उन पंडितोंसे द्वेप नहीं बढाता हूं. किंतु अन्य सज्जनधर्मात्मा भ्रममें नहीं पडे इसवास्ते उन लेखोंकी कुछ असत्यता प्रगट करता हूं. इसवास्ते वे पंडित तथा ओरभी उनोंके अभिप्रायधारी उनके मित्र मेरेपर क्रुद्ध न हो; जो कदाचित होवेभी तो वे मुझे चाहे जो बुरी भली कहले; किंतु धर्मविरुद्ध वचनोंका अविरुद्ध बताते अनर्थ प्रगट नहीं करें; यही प्रार्थनाहै. इनके प्रगट करनेमें न तो आपका मान वढ सकता है ओर नहीं करनेसे ना घटसकता है. जो आपने उच्च दरजेकी विद्या पढी है तो अन्यजीवोंकी वीतरागविज्ञानताकी वुद्धि करावैं तथा अपने वीतरागविज्ञानता वढावैं. विद्याका मदकर यद्वातद्वा वचन कहकर स्वपरका बुरा नहीं करैं यही नम्र प्रार्थना है.

अब कुछ थोडासा उन लेखोंपर विचार पाठकोंको करनेके लिए लिखताहूं. पं. अजितकुमार शास्त्रीजी लिखते हैं कि–शासनदेवोंकी पूजा आदिपुराण, अकलंकप्रतिष्ठापाठ, नेमिचंद्रप्रतिष्ठापाठ, वसुनंदिप्रतिष्ठापाठ ब्रह्मसूरी त्रिवरणाचार, सोमसेनत्रिवरणाचार, भावसंग्रह आदि उच्चकोटिके आर्षग्रंथोंमें स्पष्टतोरसे वतलाईगई है. क्या इन्होंने शासनदेवोंकी पूजा कपोल कल्पनाकी है? जो पंडितोंको असत्य वक्ता कहै! वे शब्द श्री जिनसेनाचार्य, अकलंकदेव, वसुनंदि, नेमिचंद्र, ब्रह्मसूरि आदि ऋषियोंको परंपरासे पोहोंचजायगे इत्यादि. इसका उत्तर इतनाही है कि जो

दिगंबराचार्योंके वचन होंगे वह पूर्वापर विरोध लिए कदापि नही होवेंगे ओर न कदापि उन्होंने सरागी देवोंका धर्मपद्धतिमें पूज्य माना है. यहां पूजा शब्द से सत्कारही मात्र ग्रहण नहीं करना, नहीं तो मिथ्यादृष्टी चांडाळतक पूज्य हो जायगे. यहां तो जो अष्टद्रव्यसे देवशास्त्र गुरुकी पूजा होती है उसका ग्रहण है. सो ऐसी पूजा वीतरागीसिवाय सरागी देवोंकी सच्चे दिगंबराचार्य कहते नहीं. क्योंकि प्रथम तो वह निषेध करे ओर पिछे विधी करे ऐसे पूर्वापरविरोधी वचन दिगंबराचार्योंके कदापि नहीं होते.

जो त्रिवर्णाचारादि ग्रंथोंके देखनेकी पंडितजीने मुझे शिक्षा दी है सो वे ग्रंथ तो क्या औरभी बहुतसे ग्रंथ थोडे बहुत अपनी बुद्धि अनुसार मैने देखेही हैं. तथा कोई २ ग्रंथ ऐसेभी देखे हैं जो पंडितजीने देखे तो क्या किंतु आपने नामभी नहीं सुना होगा. इन ग्रंथोंमें जो शासनदेवपुजा पंडितजीने बताई ओर मैने शासनदेवपूजा जैनधर्ममें जो कहे उसको असत्यवक्ता ओर मिथ्यादृष्टि आदि कहा उसके विषयमें आपने लिखा कि–ये निंद्यवचन श्रीजिनसेनाचार्य अकलंकादिकोंको पोहोंचते हैं. सो महाशयजी जो जिनसेन अकलंकादि महान् ऋषि दिगंबराचार्य हैं उनको तो कदापि पोहोंचही नहीं सकते; क्योंकि उनके वचन सरागी देवपूजाके होही नही सकते. तहां भगवज्जिनसेनाचार्यकृत महापुराणमेंतो शासनदेवपूजाका नामभी नहीं है. जो आपसारिखे पंडित मान्य पीठकामंत्रादि गर्भाधानादि क्रियाओंमें सिद्धकरते हैं उस्का खंडन तो अनेक पंडितोंने जैनमित्रमें कियाही है ओर करेंगे. तथा वर्तमान जै. मि. अंक ३० में फिर पंडित वनारसीदासजी शास्त्रीने तथा पं. जयदेवजी कलकत्तावालोंने किया है और मैनेभी किया है. देखो देखो पाठक वृंद! आदिपुराणमें गर्भाधानादि क्रियामें जो पीठिकामंत्र हैं उनसे श्रीसिद्धपरमात्माकी पूजा होना आचार्योंने लिखी है जैसे (इति सिद्धार्चनं) इसको थोडासाभी जानकार होगा वह स्पष्ट कहैगा कि यह

सिद्धभगवानकी पूजा है, परंतु पंडितजीतो सौधर्मस्वर्गादि इंद्रादिकों की ही पूजा बताते हैं सो प्रत्यक्ष आखोंमें धूल डालना है. इसवास्ते जिनसेनस्वामी के तो वचन ऐसे है ही नहीं. बाकी अकलंकादि कृत प्रतिष्ठापाठादिकोंके विषयमें जो पंडितगणोंका आक्षेप है उसके विषयमें ब्रह्म. शीतलप्रसादजी तथा मैंने पहले लिखाथा कि–एकतो आचार्योंके नामधारक भट्टारक बहुतसे हुए हैं. सो वे ग्रंथ भट्टारकोंने बनाए हैं सो जिनसेनादि नामसे भोलेलोग दिगंबराचार्यही की कृती मानकर शंकामें पडजाते हैं. और इसहीसे इन पंडित लोगोंकी बनआती है. दूसरे कोई कोई धूर्तोंने सच्चे आचार्योंके बने ग्रंथोंमें क्षेपक श्लोक बनाकर मिलादिये हैं. तथा कोई कोई ग्रंथही धूर्तोंने बनाकर अपना नाम छिपाकर बडे २ आचार्योंका नाम धर दिया है. जैसें भगवज्जिनसेनाचार्यकृत त्रिवरणाचार, भद्रबाहुसंहिता, कुंदकुंद श्रावकाचार आदि जिनका जाल प्रगटही हो चुका. ऐसेभी सेकडो ग्रंथ हैं. वस यही कारण है कि पं० टोडरमलजी, जयचंदजी आदिने ऐसे ग्रंथ कहींभी प्रमाणमें नहीं लिए हैं ॥ और प्रतिष्ठापाठोंमेंभी कोई शासनदेवोंकी पुजाकी आवश्यकता नहीं है तो आचार्य वृथांही प्रयास क्योंकरें? ओर क्यों मिथ्याप्रवरती चलावें ? क्योंकि वही प्रतिष्ठापाठोंमें जो मंत्र हैं वे विशेष करके पंचपरमेष्ठिके वाचकही है सो जब पंचपरमेष्ठीके वाचक मंत्रोंसे ही विघ्नशांति होती है तो फिर शासनदेवताओंको विघ्नशांतिके अर्थ बुलाना वृथां है; कदाचित कहो कि विघ्नशांतिके अर्थ तो नहीं बुलाते किंतु जैसे अन्य साधर्मी मनुष्योंकों बुलाते हैं तैसे बुलाते हैं, सोभी संभव नहीं. क्योंकि प्रथम तो वे बुलाने पर आतेभी नहीं.

वर्तमान जितने जैनी वा प्रतिष्ठाचार्य आदि पंडितोंने देखेहो या जानेहो वे कि अमुक २ प्रतिष्ठामें अमुक २ इन्द्रादिक देव आए हैं तो कोई बतावें. कदाचित कहो कि जैसे साधर्मीयोंको बुलानेको पत्र देते हैं तैसे देवोंको बुलाते हैं फिर कोई आओ या मत आओ-

सो ठीक परंतु जो साधरमी आते हैं उनहीकी खातर कीजातीहै.जे नही आते हैं उनकी तो नहीं. तैसेही देव बुलाये हुए आए होवे तो उनका सत्कार करो; ओर जब नहीं आए तो सत्कार कैसा ? दूसरें सत्कारभी तो योग्यतानुसार होता है. भला जो तीन लोकके नाथ सर्वज्ञका अष्ट-द्रव्यसे पूजा करे तैसाही उन क्षुद्रदेवोंकाभी करै सो कदाचितभी प्रति-ष्ठापाठोंमें शासनदेवोंकी पुजा लिखनेकी आवश्यकता नहीं. अब कोई यह शंका करे कि जितने प्रतिष्ठापाठ देखनेमें आते हैं उन सर्वोमें शासन देवोंकी पूजा भरी हुई है. ऐसा कोई प्रतिष्ठापाठ देखने सुननेमें नहीं आया जिसमें इन शासनदेवोंकी पुजाका नामभी नहीं. इसका समा-धान यह है कि—पहले जमानेमें पांच सातसे बरष भट्टारकोंका बडा जोर शोर रहा. सर्वके ऊपर भट्टारकलोग हावी हो गए थें; गृहस्थोंको जैसें नचावै वैसेही नाचतेथें जब कोई २ विद्वान उनके अनाचारीके जानकार होनेसे अलग फटे तब भट्टारकोंके पासही सर्व शास्त्रभंडार थे सो चरणानुयोगके ग्रंथोंको तो उन्होने बिलकुलही छिपादिए,ओर दूसरे ग्रंथ प्रकाशित करदिए; यही कारण है कि पुर्वाचार्योंके बने ग्रंथ विस्तार पुर्वक श्रावकाचार वा यत्याचारादि बिलकूल नहीं मिलते. मुझेभी प्रतिष्ठा-पाठोंके विषयमें बडा संशय था कि—आचार्यगणोंने प्रतिष्ठापाठोमें ए मि-थ्यात्व कैसें भर दिया? किंतु भाग्यका उदय ओर इन पंडितोंकी मिथ्या प्रचार मानो रोकनेकोही एक प्रतिष्ठापाठ मुझे उपलब्ध हुआ है. वह प्रतिष्ठापाठ श्रीकुंदकुंद स्वामीके अग्रशिष्य श्रीजयसेनाचार्यका बनाहुआ है. उस प्रतिष्ठापाठमें कहीं शासनदेवकी पूजाका नामतक नहीं है. उसमें यंत्रभी इतने हैं जो किसीभी प्रतिष्ठापाठमें नहीं होंगे. उन सब यंत्रोंमें पंचपरमेष्ठीवाचक अक्षर ओर अंक हैं, इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि जितने प्रतिष्ठापाठ वर्तमानमें उपलब्ध उस एक सिवाय जो हैं वें या तो सारेही भट्टारकादिकों के बनाए हैं अथवा आचार्योंकी कृतियोंमें इन्होंने बहुतसा हेरफेर २ करदिया है. बस. फिर आप उन ग्रंथोंकी शासन-

देवपूजाकी क्रति आर्पंचानी वतलावें तौ सिवाय दुराग्रहके ओर क्या किया जाय? फिर पंडितजीने लिखा है कि जो तुमने केई ग्रंथोंके श्लोक दिए हैं. परंतु एकभी श्लोकसे शासनदेवताकी पुजा निपेध नहीं होती. सो इससे तो आपकी हद्दही होगई. इसका तो कोई जवावही नहीं. एक दृष्टांत है–एक मूर्खने कहा कि मै काशमिं सम्पूर्ण पंडितोंको शास्त्रार्थमें जीत आया. जव उससे पुछा कि कैसें जिता? तो कहा कि, सवोने सव कहा परंतु मैंनै किसीकी भी नहीं मानी! वस सोही वात हमारे पंडितजीकी है. देखिए'रागद्वेषमलीमसाः देवतायदुपासीत देवतामूढमुच्यते' यह वाक्य श्रीसमंतभद्रस्वामीके क्यो आप नहीं मानते? अर जो मानते तो क्या आपके शासनदेव रागद्वेषकर मलीमस नहीं है? क्या वीतरागहे? वस, अव आप दुराग्रह कर नहीं मानोतो आपकी खुपी. सूज्ञपाठक महाशय तो जानही जायंगे.

फिर आपने लिखा है कि शासनदेवोंको अर्हतके वरावर किस विद्वानने कहा है उसका नाम वताओ. इसका उत्तर इतनाही है कि जव आप साहव शासनदेवोंकों अर्हतके वरावर नहीं मानते तो उनकी पुजन अर्हतके वरावर करना क्यों वताते हैं? वरावर तो क्या मैंने तो वहुतोंको अर्हतोसे वहूत अधिकही करते देखा है. फिर यह औरभी मायाचार है कि–वचनसे तो कहे कि हम वरोवर नहीं मानते; और क्रिया सेवा उनके वरावरकी करें. भाईसाहव जो अतरंगके भाव होय तो वाह्य प्रगट हुए विना नहीं रहते. जो सच्ची प्रवरती होती है वह अतरंग वाहर एकसी होती है. जो अतरंगमें शासनदेवोंमें भक्ती कमी होय तो वाह्यभी विनय उतनाही कमी होना चाहिए. नहीं तो यह एक तरहका कपटही है.

तथा एक आक्षेप मेरे ऊपर किया कि शासनदेवोंके पूजनेसे पंडितलोग तो नरकको ही जायगे किंतु आप शास्त्रीय आज्ञाकी अवहेलना करके ऐल्लक आदिकों असंयमी वतलाकर अवश्यही मुक्तीपद प्राप्त करेंगे. सो महाशय जो सच्चे दिगंवराचार्योंके वाक्य है उनको तो मै परमपूज्य मानता हूं.

परंतु जिन वाक्योंको आप शास्त्रीय वाक्य बताकर मिथ्यात्वके प्रचारका बीडा उठाया हैं उन वाक्योंको मै शास्त्रीय वाक्य न मानकर शस्त्ररूप मानताहूं.

ऐल्लकादिके विषयमें जो आपने लिखा सो जो दिगंबराचार्योंकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले मुनि ऐल्लकक्षुल्लकादि हो उनके तो मै वडी आदरदृष्टिसे देख और यथायोग्य विनयकरूं, मै उनके वचन को मस्तक चढाऊं. किंतु जो परिग्रह त्यागी बनकर लाखोंका परिग्रह एकत्र करे, आरंभका त्यागी बनकर हजारो लाखों आदमियोंका मेला करावैं, औषधालयादि बनवावे, अपनी नामवरीके वास्ते अनेक संस्थाओंको अपने नामकी बनवावै; जो उद्दिष्टत्याग प्रतिमाको धारकर उद्देसित अन्न जलादिक ले; इत्यादि दशवीस नहीं किंतु सेकडोहि क्रिया शास्त्रविरुद्ध होनेपरभी आप सरिखे पंडितही उनको संयमी माने; मैं अथवा सच्चे श्रद्धानी तो ऐसे महाशयोंको संयमी मानते नही. ऐसेही जिनके अष्टमूलगूणभी शुद्ध अतीचार रहित न होवे, जिनसे पानी छनेकी क्रियाभी न पले जो घुला वीधा अन्नभी खानेमें न टले, उनोको ऊंची २ प्रतिमाओंके धारी आपसरिखे ही मान सकते हैं ॥ तथा कृत्याकृत्रिमके विषयमें आपने लिखा कि पंडित वंशीधरजीने जो अर्थ लिखा है वही होता है अनेक आर्षग्रंथोंके प्रमाण देनेपरभी तुमने अपना दुराग्रह नहीं छोडा. ओर पं. बनारसीदासजी, पं. बनवारीलालजीने लिखा है. उससे तुह्मारा मनोरथ सिद्ध नहीं होता इत्यादि इस्के उत्तर में देखो खंडेलवाल जैनहितेच्छु जिसमे यह आपका भी शोभनीक सम्यत्वका मुख्य कारण पावित लेख है. उसीके प्रथम पृष्टके दूसरे कालममें संपादकजी क्या लिखते हैं ब्र० शीतलप्रसादजीके कि प्राचीन पाठ जो आपके सरस्वती भवनकी प्रतिपरसें खोज किया गया है वह वेशक कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालयोंकी पूजाके लिये पर्याप्त है शासनदेवोंकी पूजाके लिए नहीं. इसबातको उक्त संपादकजी (पं० वंशीधरजी) स्वीकार कर चुके

है। बस तो अब पं० अजितकुमारजीसाहेब अब यह दुराग्रह आपकों है या मेरा? कि आपके मित्र पंडित जिनकी आप धुआही देते हैं? वे तो हमारे अभिप्रायको स्वीकार कर चुके. और आप हाल अपनी तानआला पही रहे हैं धन्य है!

अगाडी चलकर इन्द्रायस्वाहाके अर्थपर लिखा सो इसके पीछे पं. बनारसीदासजी और पं. जयदेवजी दोनोंके दो लेख जैनमित्र अंक ३० में प्रगट हुए हैं मै अब जादे क्या लिखूं? परंतु आप आपना दुराग्रह तो स्यात छोडनेके नहीं; क्योंकि आप खुद लिखते हैं कि–गोधाजी इस अर्थको यथार्थ समझते हैं तो वडे २ आर्षग्रंथोंको पलटना पडेगा. और संसारभरकी शब्दप्रणालीकों रद्दीके टोकरीमें डालना पडेगा. सो हमारे अर्थसे तो नहीं, किंतु आपसरिखे ऐसा करें तो कोई आश्चर्य नहीं. देखो इस विषयमें आपकेही मित्र पं० पन्नालालजी सोनी क्या लिखते हैं. देखो जैनहितेछु अंक १५।१६ पृष्ट ३३ दूसरा कालम–तथा आशाधरजीने अर्हत अर्थमें इंद्र शब्दका प्रयोगभी किया है. इसलिये इंद्रायस्वाहाका अर्थ इंद्र अर्थात अर्हतके लिए अर्पण ऐसा होता है यह बात ठीक है कि, अर्हतके लिएभी इंद्र शब्दका प्रयोग होसकता है. फिर पृष्ट ३४ प्रथम कालममें सहस्रनामका १ श्लोक दिया है. उसके विषयमें लिखा है कि–इस श्लोकमें जो इंद्र शब्द आया है; उसका अर्थ अर्हत है. सौधर्म ऐसा नहीं; क्योंकि यहां भगवानके १००८ नाम गिनाये गए; यदि यहांपर इन्द्र शब्दका अर्थ अर्हत नहीं किया जायगा तो अर्थका अनर्थ और इसी आगमका विरोध होजायगा. अतः प्रकरणानुसार अर्थ करना चाहिये. इत्यादि वहुत लिखा है। अब आप-आपके मित्रोंके वाक्योंसेही संसारके शब्द रद्दीमें पटकिए अथवा आर्षग्रंथोंके अर्थको पलटिए. पंडितजीसाहेब अपनी लेखनी पहले अपने मित्रोंसे सला मिलाकर पीछे उठाओ तो शरमिंदा न होना पडे; बस हमाराभी यह लिखना है कि, प्रकरणानुसार शब्दोंके अर्थ होते हैं. आदि-

पुराणमें जो पीठिका–सुरेंद्रादि मंत्रहो उनमें जो शब्द हैं वे पूज्यपुरुषके अर्थ हैं,सो पूज्य अर्हंतादिही है; और इंद्रादिक पूजक है पूज्य नहीं है. सो पूजकको पूज्य बनाना और जो पूज्य है उनका निषेध करना ये कितना वडा अन्याय और पाप है! परंतु आपसरिखे वडे सूरवीर साहसी है जो इतने बडे भारी पापकी कुछभी परवाह नहीं करते. धन्यवाद आपकी सूरवीरताको! फिर आगे चलकर आप लिखते हैं कि—क्या अर्हत भगवानको आहुती देनेके लिए एकही मंत्र पर्याप्त नहीं था? जो १११ आहुतिमंत्र एकही देवकेलिए प्रयोग किए गए? क्या किसीभी पूजनमें ऐसा ढंग रखा है कि—एकही देवकेलिए एकसाथ ५०।१०० आहूतियां हो? समझमें नहीं आता कि, एक असत्य अर्थकोलिये कितने सत्य अर्थोंका गला दवाकर असंख्य अनर्थोंका सोला लटकाना पडता हैं? इत्यादि कहकर मुझे दोपी ठहराया है. सो मुझसे अपशब्द तो इससेभी और अधिक कहडाले तो कुछ चिंता नहीं परंतु उलटा चोर साहकों डंडे यह होडिंग इस लेखका है, सो ही चरितार्थ हुआ.

पंडितजीसाहव मैं आपसे पुछता हूं—क्या इंद्रने १००० नाम कर भगवानकी स्तुति करी और जिनसेनादि आचार्योंने उनोंको लिखा सो क्या एक अर्हतका नाम व केवल आपके उनको पर्याप्त न था? स्यात इंद्र तथा आचार्यादि भूलगए? उससमय सलाह लेनेको आपको बुला लेते तो उनोंको इतना क्यों प्रयास करना पडता? कदाचित आपकहे कि, वहतो स्तुति करीथी पूजन नहीं; सो ठीक नहीं, पूजन स्तुति सब एकही है सो सब जानते हैं. तो भी आपको संतोप नहीं होवे तो सहस्रनामकी पूजन है तथा सिद्धचक्रपूजा है जिसमें एकही अर्हतके कोई २००० दो हजार नामपर इतनेही अर्घ अर्पण किए जाते हैं सोभी मिथ्या होगी. तथा प्रथम चोवीस महाराजकी समुच्चयपूजा करते है, पीछे पृथक २ ऋपभादिककी करते हैं सो जब समुच्चयपूजा करली तो फिर पृथक २ पूजन करनाभी पापही होना चाहिए. तथा सोलह

कारण दशलक्षण रत्नत्रयादि अनेक मंडळ विधानकी पूजाये हैं वे सब एक अर्हंतकी ही अनेक नामगतकिरके अर्घादि अर्पण किए जाते हैं सो सर्व पूजकोंको महापाप होता होगा. वाहवाह धन्य है आपके शास्त्रिपनेको !

आगे चलकर पंडितजीने ग्रामपति, श्रावक, ब्राह्मण, कल्पाधिपति, सौधर्म, अहमिंद्र इत्यादि शब्दोंके अर्थ अर्हंतवाचक हमने वताए उनकी हंसी उडाई; और लिखा कि–ग्रामपति आदि जो नाम हैं वे प्रसिद्ध राजा श्रावक ब्राह्मणादिकोंकोही हो सकते हैं. जिनभगवानके नहीं किंतु गोधाजी तो जिनेंद्रकाही अर्थ करेंगे. इन्द्र आदि शब्दोंका अर्थ यद्यपि देवोंका स्वामी इन्द्र है. किंतु गोधाजीके लक्ष्यमें जिनेंद्रदेवही है. यहांतककी अनुचर शब्दका अर्थ दास नोकर है; किंतु गोधाजी उसका अर्थ अर्हंत देवही करेंगे. इत्यादि हंसी उडाई, सो इन शब्दोंके अर्थका तो उत्तर हम ऊपर दे चुके. और यह अर्थ केवळ मैंनेही नहीं किया वडे२ पंडित पुरानेअनुभवीयोंने किया है. और अभी जैनमित्र अंक ३० में पंडित बनारसीदासजीने व्याकरणसे सिद्ध किए हैं. और यहांतकके आपके सहमित्र पं० पन्नालालजी सोननिही मानलिया कि–प्रकरणवश इंद्र आदि शब्दोंके अर्थ जिनेंद्रभी होता है. फिरभी शास्त्रीजी शरमिंदा नहीं होते. तो इससे ज्यादा धृष्टता और क्या होगी ! जो अनुचर शब्दका अर्थ हमने तो जिनेंद्रकाही अर्थ कियाही है. परंतु शास्त्रीजी दास अर्थ करते हैं; सो अपने दासकी अष्टद्रव्यसे पूजा शास्त्रीजी उनके मित्रादिकही करते होंगे. यह सौभाग्य उनहीको प्राप्त होवे. अनुचर शब्द जो सिद्धार्चनमें अर्थात् सिद्धोंकी पूजामें जिनसेन स्वामीने लिखा है सो क्या सिद्ध भगवान जिनसेन स्वामीके दास हैं? या पंडित शास्त्रीजीके दास हैं? हाय हाय कितना वडा भारीपाप है! मुझे यह शब्द लिखनेमेंभी वडा दोप हुआ. किंतु क्या किया जाय ? अन्यधर्मात्माओंका भ्रम मिटानेवास्ते लिखना पडा. अनुचर शब्दका अर्थ पहले मैंने पंडितोंके अनुसार लिखा

ही है. अब फिर स्पष्ट कर देता हूं कि-यहां सिद्धार्चन (पूजा) के मंत्र हैं. इसवास्ते १११ ही नाम अर्हंत सिद्धके हो सकते हैं. सो इस प्रकरणके अनुसार यह अर्थ होता है कि (अनुचराय स्वाहा) इसका अर्थ चरधातु गमन अर्थमें है. अर ज्ञानअर्थमेंभी है. इसवास्ते परं-पराय है ज्ञान जाको ऐसा अनुचरके अर्थ अर्पण करता हूं. बस जब अर्हंतसिद्धकी पूजामें जो शब्द है वे अर्हंतसिद्धके वाचक होसकते हैं, तैसेही अनुचर शब्दभी अर्हंतका वाचक है.

तथा आगे चलकर फिर शास्त्रीजी हंसी उडाते लिखते हैं कि, पंडितोंको मिथ्यावादी कहा सो गोधाजीके नामसे पंडित शब्द छुट्टी लेगया है. तथा गोधाजी लिखते हैं-समभिरूढनयसे गो शब्दका अर्थ गायही होता है. वैसेही इंद्र शब्दकेलिए समभिरूढनय कहा पधार गई? यदि इन शब्दोंका ऐसाही अर्थ होना चाहिए, तो उदासीनका अर्थ ऊंचेमें हुए सिद्ध भगवान और उदासीनाश्रमका अर्थ सिद्धालय क्या नहो? इंदोर शब्दका अर्थ दीप्तिवानवक्षस्थलवालों अर्हंतको न हो और गोधा शब्दका अर्थही दिव्यध्वनिवाले अर्हंतही क्यों नहो? इत्यादि. सो इसका उत्तरभी देनाही पडा. सो यह है कि-प्रकरणके विरुद्ध ऐसे अर्थ आपसरिखेही करेंगे. मेरेमें ऐसी बुद्धि कहां ? मैंने सर्वही पंडितोंको मिथ्यावादी नहीं बताए; और आप व आपके मित्रोंकोभी असत्यवादी सर्वांशमें मैं नहीं कहसकता हूं. किंतु जितने अर्थ जो कोई असत्य कहेगा उसहीको उतनेही अंसोंमें मैं असत्यवक्ता कह सकता हूं वह कोई होवे. बस, यहां जो सिद्धार्चनमें अर्हंतासिद्धवाचक शब्दोंको अर्हंत-सिद्ध न कहकर रागीद्वेषी देवादिकको पूज्य बतावें; ऐसा प्रकरणविरुद्ध कहनेवालेको मैं अवश्य असत्यवक्ता कहसक्ता हूं; और मैही क्या हर कोईभी यथार्थवक्ता कहेगा. और मैं तो पंडितभी नहीं हों पंडित क्या पंडितोंके चरणोंकी धुलभी नहीं. अन्य सज्जन मुझको पंडित कहो तो उनकी वचनकी सैली हैं. सज्जन पुरुषोंके वचनही उपमा लिए निकलते

हैं. जिस्कों मै क्या करूं? मैं तों अपनेको आप पंडित लिखताभी नहीं.
तथा इन्द्र शब्दके समभिरूढ लगानेको कहां पधारगई? ऐसी तर्क करी
सो मै ऊपर लिख चुका हूं कि—प्रकरणानुसार अर्थ होता है. एकही
नय सर्वत्र नहीं लगती. आप साहेब अनेकांतकी धुआई देकर एकांत हट्ट
करके शासनदेवोंको पूजो, खुशी आपकी. यद्यपि समभिरूढ नयकर आप-
देवराजको इंद्र मानो किंतु पूज्य प्रकरणमें देवराजको इंद्र नहीं कहा
जाय. क्योंकि वह धर्मप्रकरणमें पूजक है पूज्य नहीं. जहां पूजकपनेमें
इंद्र शब्द आवेगा वहां ही देवराजका ग्रहण हो सकता है.

तथा लिखा कि—गोधाजीके किए अर्थ कहीं टीकाटिप्पणीमें नहीं.
मिलेंगे किंतु गोधाजीके कोषमें अवश्य मिलेंगे. सो महाशयजी मैंनेतो
ग्रंथोंके प्रमाणसेंही लिखा है. अपनी मनोक्ति आपकेसी नहीं लगाई.
परंतु आश्चर्य है कि आप उन कोटीकाटिपनीका मूल कुछभी नहीं मानते.
सो यातो आपके नेत्रोंमें तिमररोग हुआ हो या दुराग्रह कर ऐसा
लिखते हैं; दूसरे कोई ग्रंथमें आपने नहीं देखा सो स्यात आप केवली-
या श्रुतकेवली होगए होंगे; संसारभरके सम्पूर्ण ग्रंथ आपने देख डाले होंगे.

अगाडी चलकर आप लिखते हैं कि—जैसें अनुचरादि शब्दोंका
अर्थ अर्हंत करके आहुती मंत्र बुलवा देंगे तैंसेही उदासिनिका अर्थ सिद्ध
परमेष्टी करके अपनी पूजाभी करा लेंगे. सो महाशयजी यह तो आप
साहेबकाही साहस है; जो अपूज्योंको पूजवाते हैं. जब वही तो आप
साहबानने ऐल्लक क्षुल्लकोंको अष्टद्रव्यसे पूजवा रहे हैं,प्रदक्षणा कराते हैं,
साष्टांग नमस्कार कराते हैं. हममें इतनी शक्ति कहां ? जब हम ऐल्लक
क्षुल्लक श्रावककोही अर्हंतादिकके बराबर पूज्य नहीं समझते, तब उदा
सीनश्रावक किस गलीका? परंतु मुझे नहीं तो और कोई उदासीनश्रा-
वकको आप सिद्धपद देकर अवश्य पुजातें तो आश्चर्य नहीं. और तो
क्या आपके मित्रोंने शास्त्रोंमेंभी लिखा दिया है जो किसी ग्रंथमें नहीं है.

तथा जो मैंने लिखाथा कि—ऐल्लक क्षुल्लक गुरु नहीं होते; अष्ट-

द्रव्यसे पूजे नहीं जाते. जिसके उत्तरमें आपने लिखा है कि-इनकी पूज्यता शास्त्रीय प्रमाण है; सो प्रमाणमें आपने चंद्रप्रभपुराण और पार्श्व-पुराणके छंद दिएहैं. परंतु उनमें ऐलक क्षुल्लकको अष्टद्रव्यसे पूजना करे ऐसा कहीं नामनिशानकोभी नहीं लिखा। पाठकोंके देखनेको मै वेही छंद यहां लिख देताहूं। यथा चंद्रप्रभपुराण-'एक लंगोट अरु मंथ पीछी कमंडल सोहना ॥ सो नगनविन इकवसि परीसह सहै मुनिसमसोहना ॥ पुन खडा होय सुअसनकर रहै वनहि वसियाधीर है॥ तीन कुलको होय उपजो सो यही पदवीगहै ॥' तथा पार्श्वपुराण—'जाके एक कमरकोपीन हाथ कमंडलपीछी लीन। विधिसों खडालेय आहार पाणिपात्रआगमअनुसार करै केशलुंचन अतिधीर सीतघाम सवसहै शरीर ॥' इन छंदोंमें तो कहीं भी गुरु शब्द और अष्टद्रव्यसे पूजनका नाम नहीं है. परंतु आगे चलके आपने स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथा दी है उसमें तीन प्रकार-के पात्रोंकी नवधाभक्ति करकें दान देना लिखा है; परंतु विचार कर-नेकी बात है कि-जो व्रतीश्रावक पंचमगुणस्थानी है उसकी नवधा-भक्तिमें अष्टद्रव्यसे पूजा करेगा, प्रदक्षणा व साष्टांग नमस्कार करेगा-ऐसा उलटा अर्थ अयोग्य आप सरिखेही करें!

शास्त्रीजीसाहेब पात्रोंको तो जाने दीजीए किंतु नवधाभक्ती तो व्यवहारमेंभी जब अपनेसे छोटा जमाई आदिको भोजन कराया जाता है तो करनी पडती है; परंतु जैसे मुनियोंकी होती है तैसी नहीं. यथायोग्य सबकी होती है. जैसे—आइए पधारिए (पडगाहना) ऊचा आसन यथायोग्य देना २ वस्त्राभरण तथा रुप्पा नारेळ आदि देना तिलक आदिपूजा, ३ पग धोनेको जल देना, ४ जुहार आदि करना, ५ मन वचन कायकी सरळता सोही शुद्धी तीन ये ६ और योग्य भोजन देना, ७ इस तरह यथायोग्य हरएकके साथमें की जाती है; तैसेही मध्यम जघन्य पात्रके योग्य नवप्रकार भक्ती उनकी करके भोजनादि दियाजावें; किंतु मुनिके समान पूजन नमस्कार प्रदक्षणाआदि औरोंके नहीं किए

जाते, सो प्रत्यक्ष रीति प्रगट प्रसिद्ध है. श्रावकोंको प्रतिष्ठादिमें तथा तीर्थ क्षेत्रोंमें तथा व्रतोद्यापनोंमें जिमाए जाते हैं. परंतु अष्टद्रव्यसे पूजा साष्टांग नमस्कार प्रदक्षणा आदि करते कहीं देखनेमें आये नहीं. परंतु शास्त्रीजी अब प्रवरती चला दे तो ठीक हो । तथा उपरोक्त पार्श्व-पुराणके चौपाईमें पंडितजीने चालकीवात और लिखदी है अर्थात् पार्श्व-पुराणमें तो 'विधसे बैठ लेय आहार' के स्थानमें 'विधसे खडीलेय आहार' लिख दिया है. हस्तलिखित पुरानी और नवीन पुस्तकोंमें बैठकरही आहार लिखा है. तथा अभी छपी पुस्तकमेंभी बैठकरही लिखा है. और ब्र० शतिलप्रसादजीने गृहस्थधर्म पुस्तक छपाई उसमेंभी लिख दिया. जब उनसे कहागया तो—वहांके पानीपतवाले पंडितजीने छपाई उसको देखकर हमने लिखा; तब फिर कहागया कि—सेकडो पुस्तके हस्तलिखित हैं किसीमें खडे नहीं लिखा है? तब उनोंने देखकर जैनमित्रमें प्रकाश कर दिया कि; खडे आहार नहीं है बैठकर है. सो जिन २ के पास गृहस्थधर्मकी पुस्तक होवें वे सुधार लेवें. परंतु नहीं मालूम इन शास्त्रीजीने सेकडो पुस्तकोंके लेख छोडकर दूसरे कौनसी पुस्तकसे या मनोक्त ऐलकको खडे भोजन लिख दिया है?

उत्सूत्र बोलनेका और लिखनेका कुछ भय नहीं. इसही तरह जैनसिद्धांत पत्रमें सम्पादकजीने लघुमुनि ऐलकको लिखा दियाथा. और जब उनोंको मैने लिखाथा तो—नैगमादि नय लगादी; परंतु यह नहीं विचारा कि आगेभी कोई आचार्य वा पंडितोंने नैगमनयादि लगाकर लघुमुनि कहा है? अथवा हमही सबके गुरु हैं? सो चाहे जिसको आचार्य, गणधर, तीर्थंकरादि बनादे तो बन जायगे! शास्त्रोंमें जो ऐलकको मुनिके छोटे भाई कहे हैं उसका अर्थ लघुमुनि नहीं होता. मुनिसमान मुनिके छोटे भाई और लघुमु[illegible] एक नहीं होता. जैसे राजाका भाई तो होता है किंतु [illegible] राज्यका एक राजा होते उसी राज्यमें किसी दूसरे पुरुषको छोटा राजा [illegible] कहे तो वह राज्यसें दंडितही होवेगा; खैर ऐसे दृष्टांतादिसे कोई

प्रयोजन नहीं. जो आचार्योंने वाको कहे होय वेही कहना सत्पुरुषोंका कार्य है. आगे चलकर शास्त्रीजीने आंधीसीधी सुनाते लिखा है कि—ऐसे अनेक प्रमाणोंसे हम ऐलककी नवधाभक्ति मुनिवत पूज्यपना सिद्धकर सकते हैं. परंतु आपका अद्भुत रूप हम किसी प्रकार सिद्ध नहीं कर सकते.

भला यह बताइए कि—आपकी उदासीनता किस ग्रंथके आधारसे है? इत्यादि. उत्तरमें निवेदन है कि—आपके चंद्रप्रभपुराणके प्रमाणमें जो ऐलकको मुनिसमान कहा इसका अर्थ आप अपनी चतुराईसे मुनिवत पूज्य सिद्ध करना चाहते हैं सो कदापि नहीं होसकता. मुनिवत यह ऐलकको कहा न कि पूज्यपनाको; क्योंकि ऐलकको मुनिवत पूज्य कहना है यह उपमा वचन है और मुनिवत पूज्य यह उपमेयमें पडता है. जैसें किसीसे यह तो कहसकते हैं कि यह तो राजाके समान है; परंतु यह नहीं कहसकते कि जैसे—राजाको चमरछत्र लगाए जावें तैसे किसी दूसरेकोभी राजा समान मान चमरछत्र लगाए जावें.

जो कदाचित मुनिसमान ऐलकको कहनेसेही मुनीसमान पूजते हो तो ऐलकके नीचे दरजेका १० मी प्रतिमासे लगातक पाक्षिकश्रावक जो कि—सामायिकके समय अथवा प्रोषधोपवासके समय मुनिसमान शास्त्रोंमें कहा है; सो उस समय उस्कोभी मुनिसमान अष्टद्रव्यसे पूजा प्रदक्षणा और साष्टांग पंचांग नमस्कार करना पडेगा जो सर्वथा अयोग्य है. तथा जो उदासीनरूप आप सिद्ध नहीं करसकते और हमसे पूछते हैं कि—आप उदासीन किस ग्रंथके आधारसे हैं.? सो मै उस्का उत्तर तो नहीं देता क्योंकि स्यात आत्मप्रशंसा मालुम पडे. परंतु आपने पूछा तो कहना पडता है कि—आप इतनी बडी प्रसिद्ध बात नहीं जानसके तो आपका शास्त्रीपनाही अद्भुत है!

महाशयजी शास्त्रीपना पंडितपना केवळ दो चार ग्रंथ पढनेसेही नहीं होता है. जो पढलिया और शास्त्रीयआदि उपाधि परीक्षा देकर पा ली

किंतु जिनधर्मका रहस्य और आम्नाय अनेक शास्त्रोंका स्वाध्याय और अनुभवी पुरुषोंकी संगतीसे प्राप्त होती है. महाशयजी प्रथम तो यह प्रसिद्ध बात है कि—जो कोई संसारसे किंचित उदास हुआ, उस्को उदासीनश्रावक कहने लगते हैं. परंतु उदासीन कोई ऐलकक्षुल्लक सरीखा पद नहीं है. तथा जिस किसीनेभी श्रीपद्मपुराणकी स्वाध्याय कीहोगी वोभी जानते होंगे की उदासिनश्रावक होते हैं. देखो—पद्मपुराणमें जहां रावणनें राजा इंद्रको युद्धमें बांधलिया तब इंद्रका पिता जो सहस्रार इंद्रको छुडानेको रावणके पास गया तब रावण सहस्रारको देखकर सिंहासनसे उठकर बहुत विनय किया और सिंहासनपर बैठाया आप नीचे बैठा और बहुत विनय स्तुतिकरी और कहा -आप उदासीनश्रावक हैं, पूज्य हैं, मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है. इत्यादि लिखा है. तथा विशेष और जानना होय तो श्रीभावदीपकका क्षयोपशम भावाधिकारमें उदासीनश्रावकको विधि देखिए. उसमें विस्तारसे लिखा हुआ है; और आपके शुभवचनोका उत्तर मै दे नहीं सकता. आपके वचनरूप पुष्पाके सुगंधता मेरे पास नहीं सो क्षमा कीजे; और पक्ष छोडनेका उपदेश आपने मुझे किया है वह उपदेश आपका आप ग्रहणकरलो तोही अच्छा हो.

अब जैनहितेच्छुके सम्पादकजीने कुछ लिखा है. उसके विषयमें कुछ मैभी लिखताहूं. जो ब्रह्मचारीजीके खुलासेमें बहुतसे बीसपंथियोंके नाम लिखे उनके विषयमें पूछा कि—ए सम्यग्दृष्टी है या नहीं? सो इस्का उत्तर तो ब्रह्मचारीजी देवेंगेही किंतु मै आपसे पूछताहुं कि—आपके लेखसें सम्यग्दृष्टी है सो इनको सम्यग्दृष्टी बनाके आपने इनोंको खुष किए. और फिर लिखा कि—वस्त्रधारी भट्टारकोंको मुनिसमान मानना चाहिए. यह बात जैनमित्रने कहां लिखी है ? आपको यह शंका कैसी होगई कि यह शास्त्रीयपरिषद बीसपंथ आम्नायका पोषण करेगी इत्यादि शब्दोंसे आपने तेरापंथियोंको खुष किये. मानो तेरापंथीजानेंगेकि यह शास्त्रीयपरिषद बीसपंथीयोंकी नहीं है. सो यह आपकी तथा परि-

षदकी दुरंगचाल वीसपंथी और तेरापंथी जानहीं लेवेंगे कि, ए तेरा वीससे पृथक कोई तीसरा खिचडा मतप्रगट करनेवाले हैं. भला जो आपने वीसपंथियोंके विषयमें ब्रह्मचारीजीसे पूछा है कि-सम्यग-दृष्टी है कि नहीं? सो इस विषयमें मे आपहीसे पूछताहूं कि-ए वीस पंथी भट्टारकको गुरु मानते हैं या नहीं ? और जो वस्त्रधारियोंको गुरु माने वे क्या आपकी दृष्टीमें सम्यग्दृष्टी होता है या नहीं? सो यह बात आप अपनी तरफसे और शास्त्रीयपरिषदकी तरफसे स्पष्ट कीजिए आपके ही मुखसे स्पष्ट होजायगा. कदाचित इस्के उत्तरमें यह लिखके अलग हो जाओ कि-ए लोग भट्टारकोंको धर्मगुरु (निर्ग्रंथ) तो नहीं माने किंतु लौकीक गुरु (गृहस्थाचार्य) मानते हैं. सो यह बात आपकी कोन मंजूर करेगा? हम सेंकडो वीसपंथियोंसे पुछा; कहते हैं कि, भट्टारक हमारे गुरु हैं. और भट्टारक गृहस्ताचार्य कदापि होनही सकते क्योंकि गृहस्थाचार्य गृहस्थ होता है, उस्की स्त्री होती है; भट्टारकोंकी स्त्री होती नहीं. इसवास्ते वे गृहस्थाचार्य नहीं हैं. और आपने शासनदेवपूजाके विषयमें लिखा कि- यह विषय निर्णयार्थ लिखा है. सो यह आपका कपट है. आप मिथ्यात्वको पुष्ट करनेवाला अपूज्योंको पूज्य मनाकर बडा भारी एक मिथ्यात मतकी स्रष्टी रच रहें हो;आपको निर्णयकरना था तो प्रश्नरूपसे इन विषयोंको लिखना था. आप सर्व साहब जो शासन देव पूजाके पक्षी पंडितजन हैं वे कम्मर बांधिकर भोले जीवोकों वहकानेको खडे हुए हैं.

आपने चौथे गुणस्थानवालेंको जिन संज्ञा होनेसे चांडाल तकके पूज्य बताया सो क्या जैसे अष्टद्रव्यादिसे जिनेंद्र भगवानकी पूजा की जाती है. तैसेही क्या देव और चांडाल सर्वही चतुर्थगुणस्थानीयोंकी अष्टद्रव्यादिसे पूजन करना चाहिये? और करनाभी चाहिए क्योंकि आपके मित्रोंने १११ आहूतिसें जो एक ग्रामपतीके नामकी आहूती बताई है. और प्रायः ग्रामपती पटेल आदिक व राजादिक आजकल मिथ्यादृष्टीही

होते हैं. उनकोही आपने पूज्य मानलिया! वडा आश्चर्य है. एक श्रद्धानी जैनी राजाहो या जमीनदारहो जिस्के सेकडों गावोंका स्वामीपना हो और वह एक पटेल (ग्रामपति) एक ग्रामका स्वामी लेवरदारमें रुपया लेना हो तो रुपया लेनेमें उस पटेलको वेइज्जती करे, पिटवावे आदि, और पूजनके समयमें उस्की पूजा करे, कितना वडा अंधेर है? यहभी अन्यमतीनकेसी पुजा जो-गाय आदिकी पहले तो पूजा करे और पिछे डंडोकी मारे वाहवाह आपकी पंडिताई !!

तथा आप यहभी लिखते हैं कि-नौकर और राजाकी वरोवर विनय नहीं होती. तैसेही शासनदेवोंकी विनय जिनेंद्रके वरावर नहीं होती जो दोनोंको समान मानता है वह अधोगति जाता है,और जिन-शासनसे दूर होता है. अव महाशय देखिए-मेरी मा और वांझकी कहावत चरितार्थ है या नहीं? जवानसे नौकर हम वरोवर नहीं मानते और क्रिया,विनय, भगवानसे जादे शासनदेवोंकी करते हैं! देखो आपने जो भावसंग्रह ग्रंथकी साक्षीसे शासनदेवोंकी पूजा अष्टद्रव्यसे करना सिद्धकी है उसीमेंही यह दिखाया है कि-पहले तो अपनी २ प्रियाओं वाहनों शस्त्रोंसहित सुरपति इंद्र शिखी आग्निकुमार कालयम नैऋत-वरुण पवनकुमार और यक्ष इनका आव्हानन करके पश्चात् मंत्रोंसे उन्हे पूजाद्रव्य-वलि चरु यज्ञभाग देकर पश्चात् देवाधिदेवका अभिषेक करे. भला देखो-पहले तो ए वनिता और शस्त्रधारी देवोंकी पूजा करे पीछे देवाधिदेवकी उसी पूजाद्रव्यसे! जिसपर पंडितजी लिखते हैं कि-जो जिनेंद्रदेवके वरावर शासनदेवोंको मानता है वह अधोगति जाता है. और वह भगवानसेभी जादा क्योंकि जो-भगवानसे पहले जिनकी पूजा हुई तो वे भगवानसे जादा वडे हुए या नहीं ? क्या इतना वडा अंधेर आचार्योंकेही ज्ञानसे रहता होगा? क्या ऐसे वचन निर्ग्रंथ आचार्योंके होते हैं? कदापि नहीं. जो ए देवसेनाअचार्यके जो सं.९००वे हुए वताए सो वे कदापि न होंगे. जैसे रत्नकरंडककी टीकाके कर्ता प्रभाचंद्रजीको वताए

जो प्रमेयकमलमार्तंडके कर्ता. इसपर जैनसिद्धांतमें बडी उछलकूद इन पंडित मन्योंने मचाइ थी परंतु कोई पंडितोंने कोई प्रभाचंद्र सिद्ध किए और यह सिद्ध होगया कि, वे प्रभाचंद्र नहीं थे. तब अब इसी अंक जैनहितेच्छुमें पं० पन्नालालजी सोनी लिखते हैं कि– चाहे वे प्रभाचंद्र न हो परंतु रत्नकरंडकी टीका ऋषीप्रणीतही है. सो जरा शरम नहीं आती, जो हम अपनी डेड चांवलकी खिचडी पकाते जाय? और मूसा कैसी टांग उची करतेही जाय? बस जैसे रत्नकरंडकी टीकाके कर्ता वे ऋषी प्रभाचंद्र नहीं ठहरे तैसेही ए देवसेन ऋषी नहीं हो सकते. ए सब भट्टारकोंकीही करतूत है. भला आचार्योंको क्या पडी जो पहले तो इन कुदेवादिकोंको पूजे और पीछे जिनेंद्र देवको पूजे? देखो–पंडित दौलतरामजीने छहढालामें क्या कहा है. "जे रागद्वेष मलकरमलीन बनिता गदादि जुत चिन्ह चिन्ह। जे हैं कुदेव जिनकी जुसेव शठकरत तिन भव भ्रमण छेव" अर्थात् पहिलेके पंडित तो कहते हैं कि–जे रागीद्वेषी जिन रागद्वेषका चिन्ह स्त्री और शस्त्र हैं वे ही कुदेव होते हैं. जिनको मूर्ख लोग पूजते हैं उनके संसार भ्रमणका छेव है. (अंत) नहीं होता. और अबके ए पंडित उन रागीद्वेषी स्त्री और शस्त्रके धारियोंको पूजावें. और ऋषिवाक्योंकि धुआई देवें यह कदापि हो सकती है? कदापिभी ऋषि वाक्य नहीं हो सकते.

तथा जो विघ्नोंकी शांतिके अर्थ देवोंको पुजनेका प्रमाण देवसेन ऋषीका दिया, सो जिन ऋषियोंके तपके प्रभावकरही सिंहसर्पादिक शांति होजाती हैं, क्या वे ऋषि इन कुदेवादिकोंसे विघ्न निवारणकी प्रार्थना करेंगे? कदापि नहीं ए सब भट्टारकोंकी करनी है. क्योंकि भट्टारकोंमें तपोबल तो रहा नहीं और अपनी महंतताराखे;सो ए व्यंतरादिक क्षुद्रदेवोंको आराधे; जिसें कुछ झूठा सच्चा बोल लोगोंको दिखाकर ठगे हैं. और दोष छिपानेको शास्त्रोंमें लिख दिया कि-आचार्योंने तो लिखा है;इत्यादि.

अब जो इंद्रायस्वाहाका क्या अर्थ करेंगे? इसपर पं० पन्नालाल-

जी सोनीने लिखा है इस विषयमें कुछ थोडासा संक्षेप लिखताहूं. जो पं० शंकर पंढरीनाथ रणादिवेने पं० कल्लप्पा भरमप्पा और पंडित फत्तेलालजीके अर्थ करेहै. ए इंद्रायस्वाहाआदिके अर्थ जिनेंद्रपर हैं. तिसपर पंडितजी लिखते हैं कि–सुरेंद्र मंत्रोंके अर्थ प्राकृतमें वदलनेके लिए पंडितोंका प्रमाण देना मुनासिब नहीं है. परंतु आपने यह प्रगट नहीं किया कि–अमुक संस्कृत ग्रंथमें इन्द्र आदि स्वर्गादिदेवही वताए हैं. तथा पं० कल्लप्पा भरमप्पाने अपने मनोक्त अर्थ नहीं किया; किंतु महापुराणकी संस्कृत टीकाके आधारसे किया है. और पं० फत्तेलालजीनेभी किसी पूर्वाचार्योंके वाक्यसेही अर्थ किया होगा. किंतु वे विद्यमान नहीं है, नहीं तो उनोंसे पूछकर समाधान करते कि–पंडित फत्तेलालजी वडे निष्पक्ष थे उनको पापोंका भय था.मनोक्त अर्थ नहीं करतेथे, जैसाकी आप साहेव जो मनमें आया सो कर वैठते हैं. इसवास्ते वे दोनों पंडितोंके वाक्य अप्रमाण नहीं होसकते. आगे चलकर आपही लिखते हैं कि–भक्तामरमें श्रीमानतुंगस्वामीने और जिनसेनस्वामी तथा पं० आशाधरजीने सहस्रनामोंमें ब्रह्मा विष्णु महेश तथा इंद्रायस्वाहा इनका अर्थ जिनेंद्र किया है. इसलिए इंद्रायस्वाहाका अर्थ इंद्र अर्थात् इन्द्रके लिए अर्पण ऐसा अर्थ होता है. यह वात ठीक है कि, अर्हतकेलिएभी इन्द्र शब्दका प्रयोग होसकता है. पर इसका मतलव यह नहीं है कि–इन्द्र शब्द मुख्य त्रिदशेंद्र अर्थको छोड देता है.सो पंडितजीसाहेव आपको कौन कहता है कि, सर्वत्र इन्द्र शब्दका अर्थ जिनेंद्रही किया जाय? यह तो आपके मित्रोंका और आपकाही हट है कि—सिद्धार्चनमें इन्द्र आदि शब्दोंका अर्थ जिनेंद्र नहीं करके त्रिदशेंद्रआदि अर्थ होता हैं. प्रकरणानुसार नहीं करते. हम लोग तो प्रकरणानुसार सिद्धार्चनादिमें पूज्यके लिए जो इंद्र शब्द आवेगा वहां तो जिनेंद्र अर्थ करते हैं. और जहां पूजकमें इन्द्र शब्द आवें वहां त्रिदशेंद्र करते हैं. देखो २ वडाही आश्चर्य-जो इंद्रही तो पूजन करनेवाला और इंद्रहीकी [अपनी] पूजन करैं; भला

कहीं होसकता है जो आपही देव और आपही पुजारी? वहतो एक बडी हास्यकी बात है. !!

और आगे चलकर आपही लिखते हैं, प्रथम तो भगवानके अभिषेकके आदिपुराणका श्लोक दिया, और वहा पूजन करनेवाला इन्द्र शब्द आया, वहांतो इन्द्र शब्दका अर्थ सौधर्मेंद्र किया है. और फिर सहस्रनामका श्लोक देकर इंद्र शब्दका अर्थ जिनेंद्र किया है. और आप लिखतेभी हैं कि, यदि यहांपर इंद्र शब्दका अर्थ अर्हंत नहीं किया जायगा तो अर्थका अनर्थ और आगमका विरोध होगा; अतःप्रकरणानुसार अर्थ करना चाहिए. हमारी समझमें स्तोत्र मंगलाचरण पूजापाठ सहस्रनामआदिस्थानोंमें जहां इन्द्र, शंकर, विष्णु आदि नाम आवें तो वहां प्रकरण हो तो अर्हंत अर्थ करना चाहिए. इत्यादि आपने माना है, तो फिर पीठिकाके मंत्र सिद्धार्चनके हैं यह प्रकरण वीतरागदेवकी पूजनकी है तो फिर इंद्रका अर्थ अर्हंत न कर पूजक जो इंद्र शचीपतिका अर्थ क्यों करते हो, जो सरागी और अर्हंतका सेवक है?

यहांपर आप एक युक्ति लगाते हैं कि—अर्हंतादिकोंके नामके साथ तो नमः शब्द होता है, और इन्द्रादिकोंके नामके साथ नमःशब्द नहीं होता; सो यह युक्ति आपकी बहुत पोंच है. वर्तमान प्रचलित जितने पूजापाठ अर्हंतादिकोंके है उनमें कोई विरलोंमेंही नमः शब्द आता है. सो पूजन करनेवाले व बाचनेवाले सेंकडो क्या हजारो जैनी है. कोई शास्त्रप्रमाण देनेकी जरूरत नहीं जो नमःशब्दके विना अर्हंतादिकोंके अर्घादिकोंका अर्पण न होता होवे तो जो लोग अर्हंतादिककी पूजन करते हैं. और ॐ ह्रीं बोलकर वृषभनाथायस्वाहा, अजितनाथाय स्वाहा, इत्यादि बोलकर अर्घ चढाते हैं सो वृथाही होजाय. वाहवा पंडितजी धन्य है ! स्ववचन बाधक शब्द कहनेमें जरा तो विचार करो कि हम कहते तो हैं परंतु फिर हमको बाधा आयगी या नहीं?

तथा औरभी देखो आपके पीठिकामंत्रोंमें सत्यजातायस्वाहा

अर्हज्जातायस्वाहा इत्यादि है. और कहीं २ अर्हज्जातायनमः सत्यजाता-यनमः ऐसाभी है. इस वास्ते यह तो ग्रंथकर्ताकी मरजीकी बात हुआ करती है. कहीं संकोचकर शब्द रखते हैं. कहीं विस्तारसे जादे विशेषण लगा देते हैं, इससे आपकी इष्टसिद्धी हो नहीं सक्ती जो आगे चलके आपने ७ प्रकार पीठिकाके अर्थ करे है सो नहीं होते. इसका उत्तर तो पं० वनारसीदासजीने देदिया है सो यहां लिखनेकी आवश्यकता नहीं. किंतु यहां इतनाही कहना है कि—ए सप्तपरमस्थानकी प्राप्ति इनकी पूजासे होती है. सुरेंद्रकी पूजासे सुरेंद्रपदकी प्राप्ती होती है; तथा सम्य-ग्दृष्टी न तो सुरेंद्रपदको चाहते हैं; किंतु अर्हतकी पूजासे स्वयमेवही सुरेंद्रादि सप्तस्थानोंकी प्राप्ती होती है. जो आपने आशीर्वादादि शब्दोंके अर्थमें लिखा है कि—सुरेंद्रपदभागभिव इत्यादिकोंमें अर्हत शब्द नहीं संभवेगा सो यह आपकी युक्ती अयुक्ति है; ए मंत्र पूजाके नहीं किंतु मा-तापितादिके आसीरवादके वचन है. 'गंगाकी वाटमें मक्काके गीत' गानेके समान वृथा है. और शंकर रणदिवेकी निंदा और शेठ रावजी सखा-रामकी प्रशंसा अंतमें आपनें करी है सो वाजवी है. चोरोंके मुकद्दमेमें उठाई गीरे गवाह देनेवाले होय फिर क्या पूछिए? मुकद्दमा तो फौरन जीतही लिया जाता है ! अपराधसे वरी सहजही हो जाते हैं. सारांश यह है, जो जैनसिद्धांतके संपादकजी कृत्याकृत्रमके अर्थसे और इन्द्राय-स्वाहाके अर्थसे इन दो शब्दोंके अर्थपर वडा घमंड कियाथा सो पीछा माननाही पडा. तथा शासनदेवपूजा नित्यमंत्रमें सिद्ध न करसके तव प्रतिष्टापाठोंका शरण लिया. सो प्रतिष्ठाओंमेभी शासनदेवोंकी पूजनकी आवश्यकताही नहीं. क्योंकि प्रतिष्टापाठोंमें विघ्ननिवारणादिके पंचपरमेष्टी वाचक मंत्र वहुत हैं. सो विघ्ननिवारणको शासनदेवोंकी आवश्यकता नहीं. और साधरमी जानकर शुश्रूषा करना सोभी शासनदेव सेकडोंमेंसे कोई एकभी आता नहीं तो फिर शुश्रूषा किसकी ? साधर्मी मनुष्योंको वुलाए तो वहुत जाते हैं किंतु शुश्रूषा तो आतेहैं उनकीही की जाती है.

लिखूं ? मेरी नम्र प्रार्थनाको स्वीकार करले, जिसेस जैनसमाजका क-
ल्याण रहे. इत्यलम्

आपका,

पन्नालाल गोधा, इंदोर.

जैन सिद्धान्तके लेखोंपर विचार.

दिगम्वरजैनधर्म सच्चा धर्म है, और इस्का अस्तित्व पंचम-
कालके अंततक रहना शास्त्रोंमें लिखा है. परंतु कालदोपसे इस्के घातक
होते रहते हैं. किंतु इस्का असलीरूप आजतक मेटनेमें कोई समर्थ
नहीं हुआ. वडे २ अजैन दिग्गजोंने इसपर आक्रमण किए. जिससे
वहुतसे इस धर्मके धारक अर्द्धदग्ध मृगसमान विन्हल होकर दिग्गजोंके
शरणमें चले गए. परंतु केहरी सिंहसमान इस धर्मके धारीयोंकी गर्जन
सें वे दिग्गजही भागते फिरे. और उन सिंहोंकी सहायतासे असंख्य और
अनंतजीव संसारसदृश धर्मात्मा वाचतेही रहे हैं. जैसें पहले सुगतादि
वौद्ध हुए जिनका निराकरण श्रीमहावीरस्वामीने तथा रहेपहे श्रीअक-
लंकादिकोंने निरस्त किए. इस्के पीछे श्वेतांवरभए तिनको श्रीकुंदकुंदादि
आचार्योंने निराकरण करके दि० धर्मकी रक्षाकरी. पीछे शंकराचार्यादिक भए
इन्होंनेभी अपना जोर जगाया. सो वौद्धधर्मका तो यहां नामनिशानभी
नहीं रहनेदिया, किंतु दिगम्वरधर्मपर उनकी कुछ दाल नहीं गली. इसके
वाद गोरीसाह आदि वादशाह हुए, उन्होंने अनेक मंदिर प्रतिमाओंको
खंडित किए, और मुसलमानभी वनाडाले, और हजारों लाखों जैन
ग्रंथ जलाजलाकर भस्म कर डाले, तोभी इस धर्मका वाल वाका न हुआ.
किंतु जवसे मुसलमानी राज्य हुआ और मुसलमानी विद्या फैली

मुसलमानोंसे संपर्क होनेलगा तबसे क्रिया आचरणकी हीनता होचली. जिससे मुनि ऐलकादिकोंका अभावसा दीखने लगगया. इसके पीछें भट्टारक हुए. इन्होंने प्रथम तो धर्मकी रक्षा करी और अनेक अतिशय चमत्कारोंसे इस धर्मकी वडी प्रभावना करी. और उन्होंने केवल अपना स्वरूप विगाडा परंतु धर्मका स्वरूप नहीं. पीछे इनमें कोई विषयोंके लंपटी होने लगे और धर्ममें अनेक तरहके शिथिलाचार पोषण करने लगे, और वढाने लगगए. तब पं० गुमानमलजी, विरधीचंदजी, टोडरमलजी, जयचंदजी, सदासुखजी आदि पंडितोंने भट्टारकोंसे वचाकर धर्मकी रक्षा करी. इसके वाद थोडेसे वर्ष पहले आर्यसमाजने कुछ उट पटांगसे धर्मको खंडन करना विचारा. तब वर्तमान समयके पंडितगण न्यायदिवाकर पंडित पन्नालालजी व न्यायवाचस्पति वादिगजकेशरी आदि उपाधिधारक स्वर्गीय पंडित गोपालदासजी तथा पं० माणिकचंदजी, पं० वनारसीदासजी पं० मक्खनलालजी आदि पंडितोंने उन समाजियोंके दांत खट्टे कर दिए. इत्यादि अवतक मुनी त्यागी श्रावक और पंडितों करके इस धर्मकी रक्षा तो हुई,किंतु हीनाचारकी वृद्धि अवश्य होती गई. इसका कारण क्या हुआ कि-म्लेच्छोंका संपर्क. म्लेच्छ विद्याका प्रभाव. सो वढते वढते यहांतक आगया कि-मद्य मांसतकभी कोई २ कदाचित मेरा सुनाहुआ झूट नहो तो जैनी नहो तो जैनी नामके धारक खाने लग गए. यद्यपि प्रगट कसाईके यहांका अथवा जीवमार कर मांस उजागर वे न खाते होंगे. परंतु गुपचुप परोक्ष [छुपकर] खाते हैं. सो ऐसे तो वहुत थोडे होवेंगे. किंतु अंग्रेजी दवाईयां जो कि-प्रायः मद्यमांस चरवी रुधिरादिकसेही वनती है उनोंके खानेवाले तो जैनियोंमे कोई एक १०० सोमें ९५ पिच्याणव निकलेंगे. और अकेली दवाईही क्या शक्कर (खांड) विलायती तथा वस्त्र देशी कलोंके व विलायती तथा रंग दियासलाई आदि जितने पदार्थ हैं सबोंमे त्रसजीवोंके कलेवरो करके भरे हुए वें जैनीभाई सेवन करते हैं. और तो

दूर रहो किंतु प्रायश्चित ग्रंथोंमे लिखा है. कि—हड्डी आदि हस्तसे स्पर्श हो जायतो दो २ उपवास और चार एकाशने और १२ जिनेंद्रके अभिषेक करें तब उस्का दोष दूर होता है. परंतू हम देखते हैं ऐसा साधारण जैनियोंको जाने दीजिए किंतु बाजे बाजे पंडितजन अपनी २ सदरी कोटोमें हड्डी, सीपके बटन लगाए रहते हैं, और उन्ही कपडोंसे भोजनभी करलेते हैं. मंदिरमें जाते शास्त्र वाचते हैं. चमडा टोपियोंमें लगा रहता है. इत्यादि क्रियाकी हीनतासे हृदयमेंसे धर्मके अंश निकलते जा रहे हैं. श्री पुरुषार्थसिद्धुपायमें कहा है कि-पंच उदुंबर और तीन मकारका सेवनेवाला है वह जिनधर्मके श्रवणका पात्रही नहीं है. अर्थात् जैनधर्मके शास्त्र उसको सुनाने योग्य नहीं है. तथा पद्मनंदिपंचविंशतिकामें कहा है कि, जो व्यसनोंका सेवनेवाला है, उसमें धर्म ढुंढनेको भी न पाइए. तथा सागारधर्मामृत तथा धर्मसंग्रह शास्त्रोंमेंभी लिखा है कि—जो संस्कार शुद्ध होकर यज्ञोपवीत धारण कर मद्य मांसादि अभक्षोंका जो महापाप है जन्मपर्यंत त्याग करता है, वोही जैनधर्मके शास्त्रोंके सुननेका अधिकारी है. अब वर्तमानमें देखो कैसी उलटी गंगा बह रही है कि—जिनलोगोंको शास्त्र सुननेकाभी अधिकार नहीं है वेही पुरुष हमको शास्त्र सुनाते और उपदेश करते हैं. अब कहो धर्म कैसे ठहरे ? अर्थात् अभक्षादिकर जिनके हृदय काले पड रहे हैं उनके हृदयमें सुफेद उज्वल जैनधर्मरूपी रंग कैसे जमसकता है ? अर्थात् वह उज्जल रंग है सोही मलीनहो जायगा. किंतु हृदयरूपी वस्त्रको उज्जलकैसे करेंगा?

बस यही कारण है कि—वर्तमानके बाजे २ बाबूलोगोंकी बुद्धि अत्यंतही विपरीत होगई. और उन्होंनेभी जैनधर्मके घातका बीडा उठाया. जिनमें बहुतसे गुप्तरूपसे इस कार्यमें लगे, और कई २ प्रगट होकर करने लगे. प्रथमतो बा० अर्जुनलालजीने जब कि वे प्रथम कैदमें नहीं गए थे उन्होंने कूडा पंथ चलानेका बीडा उठाया था. सो भोले लोग इनोको सच्चे जैनी और शास्त्रोंके अच्छे जानकार समज धोकेमें आगए.

उन्मेंसे १९ गुर्नास घर उनके उपदेशसे जैपुरमें प्रगटमें कूडा पंथी हो गए. अर्थात् ओसवाळ, खंडेलवाल आदि जातवाले समस्त बैठकर खा लिया. जिससे जैपूरकी पंचायतीने उनोंको जातिसे खारिजतो कर दिए; किंतु उनका जोस वढाही. और वरस छे महीनामें हजारोही घर होजाते. किंतु हाल धर्मका अस्तित्व रहना है सो उस्के अतिशय प्रभावसे तत्का-लही शेठीजी पकडे गए. और विनाही हकीकत जेल (कारागार) में हुस दिएगए. उससमय अपने छूटनेकी इच्छासे कपटरूप जैनी वनकर जिनप्रतिमाके दर्शनविना कई दिनतक भोजन नहीं किया सुना है. जिसे जैनी लोग उनपर और लुब्ध होगए. सो उनके छुडानेमें चेस्टा करने लगे. और चंदा एकत्र करने लगगए. पश्चात छे सात वर्ष वाद किसी कारण वश वे जेलसे मुक्त होतेही जैनधर्मके अतिशयसे उनकी वुद्धि फिर गई.सो जैनधर्मसे प्रगट विरुद्ध होगए.और जैनसमाज तत्काल चेतगई. उनके पंजेमें नहीं परसी. जो कदाचित वे जेलसे निकलनेवाद कपटके जैनी वने रहते तो आभितक न जाने क्या२ अनर्थ जैनियोंमें होजाता? परंतु धर्मका अभी घात नहीं होना है. इसही वास्ते उनकी वुद्धि फिर गई. इसही तरहसे सूरजभान वकील आदि वावू ऐसे जैनसमाज सर्विदित हैं. उनोंके धोकेमें अव नहीं आती है. क्योंकि उन्के खोटे निरुप-णोंका खंडन पं० लालारामजी, पं० रघुनाथदासजी, पं० मक्खनलालजी आदिने अच्छीतरहसे करदिया. यहांतकतो अनेकाविघ्नोंसे जिन-धर्म टूटी फुटी हालतमें वचा हुआ है. क्योंकि साधु मुनि त्यागी व पंडितोंने वचाया है. क्योंकि त्यागी और पंडितोंसे रक्षा होसकती है. परंतु अव वडाही असमज होगया जो रक्षकही भक्षक होजायगे तो कैसे धर्म रहेगा? यह वडी चिंता होती है. और कभी२ साहस हो आता है कि–धर्म पंचमकालके अंततक रहना है. तू क्यों घवराता है ? फिरभी शंका आती है. कहना प्रसिद्ध है कि–मनुष्यने कच्चा दूध अपनी माता-का पिया है. इससे छाती कच्ची पडजाती है. वस यही कारण कि–

बार २ शंका उठ आती है वह यह है कि-धर्मकी प्रवरती त्यागी और पंडितोंके आधारपर बताई है. परंतु त्यागी मुनी पंडित सब शास्त्रोंके आधारपरही धर्मकी प्रवरती चलाते हैं. परंतु वर्तमानमें कई२ पंडितोंने शास्त्रोंकी छपाईकी आजीविका करके उनमेंसे कैयोंने बहूतसे शास्त्रोंके अर्थो और शब्दोंमे अस्तव्यस्त किया है. और कर रहे हैं. अपने लोभके वशमें पडकर जिनाज्ञाभंगका कुछभी भय नहीं रखते.

इसके सिवाय जैनसिद्धांतपत्रके सम्पादकजीको एक अद्वैतही ध्वनी मस्तकपर सवार हुई है. वे अपनी सारी बुद्धि वडे भारी कार्यमें खर्च कर रहे हैं; एक तो निर्माल्य खानेमें निर्दोष, दूसरा कुदेवादिकोंका पूजना. जो शास्त्रोंमे निर्माल्य खानेका महापाप बतायागया है सो परंपरासे चला आता है. जो निर्माल्य खानेवालेके हातका स्पर्श किया हुआ जैनी जलमात्रतक नहीं पीते हैं. दूसरेजगे अनेक शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है कि-अर्हत देवसिवाय सब कुदेव, निर्ग्रंथगुरुसिवाय सब कुगुरु, दयाधर्म (अहिंसाधर्म) सिवाय सब अधर्म कहे हैं. जो अर्हत वीतरागदेव सिवाय अन्यरागीद्वेषी देवोंको पूजता है वह मिथ्यात्वी है; मूढता है; अनायतन है; दोष है. इत्यादि प्रसिद्ध है.

और उन पंडितजीको न जाने क्या सूझी है कि-उनको अपने स्ववचन विरोधकाभी भान नहीं है? जैसें पंडितजीने अपने प्रथम लेखमें तो यह लिखा है कि-जो पूजन करके द्रव्यको भगवानको अर्पण करे और फिर वह ग्रहण करें तो उसको निर्माल्य ग्रहणका दोष लगता है. किंतु जो नियोगीजन हैं वे मंदिरकी नोकरी कर उस द्रव्यको लेते हैं उनको दोष नहीं. सो प्रथम तो यह कहा और फिर श्रावणमासके प्रथमांकके लेखमें आप लिखते है कि-उपाध्याय लोग पूजा करनेके नियोगी है, तो उस पूजाकी सामग्रीपर उनका हक भी है. सो पाठक देखिए कि-प्रथम तो पूजन करनेवाला जो चढा द्रव्य लेवें उसको दोषी ठहराया. और फिर उपाध्याय लोगोंको पूजा करनेके और पूजाकी

सामग्री लेनेका दोनो बातका उनका हक बताया और उनको निर्दोष ठहराए, यह बात स्ववचन बाधित हुई या नही ? इसके सिवाय फिर पंडितजी लिखते हैं कि— जहां ए लोग (उपाध्याय) नही है ऐसे प्रांतोंमें पूजाका कैसा फजीहता होता है.

पंडितजीके कथनानुसार जहां ए उपाध्याय लोग रहते हैं ऐसे करनाटकादि देशोंमें पूजा अच्छी तरह शास्त्रोक्त रीतिसे होती है. और जो इस देश [मध्यदेश, मालवा,पूरव उत्तर, पश्चिमादि देशोंमें] उपाध्याय लोग नहीं हैं वहां पूजनका बडा फजीता है. आहाहा पंडितजीका कैसा अच्छा उदाहरण है! जहां शास्त्रोंक्त गृहस्थीयोंको खुद आप पूजन करना नित्यरोज षटकर्मोंमें मुख्य कर्म पूजन कही है सोही होता है जिसको तो फजीता बताया है. और जहां रात्री पूजन होना,भगवान ऊपर तेलका अनेक दाल चावल अन्नादिकका अभिषेक होना, नारेलोंका अभिषेक,केला आदि फलोंका, आम नारेल केला आदिके रसोंका अभिषेक, इत्यादि अनेक शास्त्रविरुद्ध अन्यमतावलंबियो कैसी क्रिया उस देशमें उन ब्राह्मणोंने चला रखी है. और तो क्या जैनवद्रीमें श्रीगोमटस्वामीके पिछाडी पच्चीस तीस प्रतिमा बडी अवगाहनाकी है. मैने खुद आखोंसे देखा है कि—बहुतसी प्रतिमाके मस्तकपर सिंदूरके तिलक लग रहे हैं. और तेलसे तो सर्वही प्रतिमा ऐसी चिकटी होरही है कि जो मक्खी मच्छर उनपर बैठ जाता होगा तो उसमें फिर वहांसे नहीं उठा जाता होगा. वहीं बैठकर अपने प्राण मुक्त कर देता होवेगा. वे ब्राह्मण बिलकुल मूर्ख जिनकों कुछ शास्त्रोंका ज्ञान नहीं और पूजनके अधिकारी बन रहे हैं ! सो वे ब्राह्मणोंका पूजनादिमें अधिकार पंडितजी इस देशमें चलाना चाहते हैं. विना उनके यहां पूजनका फजीता थोडाही मिटेगा. इसकेलिए पंडितजीको जितना धन्यवाद दिया जाय उतना थोडा है.

तथा पंडितजी लिखते है कि—निर्माल्य ग्रहण करनेसें पापी नहीं होजाते हैं; जो हिंसादि पांच पापोंमेंसें कोईसा पाप करे वह पापी

होता है. जो इन पापोंकी तीव्रता है सो अन्याय है. इस विषयमें एक प्रकारका अन्याय लक्षण कि जिनसेनाचार्यके नामसे लिखी है. उस्का अर्थ यह होता है कि—अदया वृत्तिकर प्राणीका मारना धर्म है. यह अन्याय है. सो यह अन्याय निर्माल्यद्रव्य लेनेमें उनको नही होता जो राजवार्तिकमें निर्माल्य ग्रहण करनेसे अंतराय कर्मका आस्रव होना लिखा है. सो अंतराय विघ्नका कारण होनेसे इसे चोरीमें गर्भित करना चाहिए, परंतु इस्में किसीको विघ्नका कारण नहीं है सो चोरीमें सामिल नहीं होसकता. इस मार्मिक वातपर एक भी अक्षर न लिखकर इन्दोरसे गोधाजी कोसने लगे. और एक भी युक्ति न दी केवल यह सर्टीफिकेट देदिया कि, उनकी कुयुक्ति है. गोधाजी और सेठ हीराचंदजी नेमीचंदजी वा जिन्हें हिम्मतहो वे पंच पापोंमेंसे किसी पापमें इस निर्माल्यको गार्भित करके दिखावें? इत्यादि.

इसके वदलेमें हमको इतनाही कहेना है कि—पंडितजी प्रथम तो आप स्वर्ग मोक्षमें जाकर उन आचार्योंसे पूछे कि आप निर्माल्यमें ऐसा पाप क्यों लिख दिया? दूसरें भंगी चमारका स्पर्श्या भोजन कोई खा ले तो क्या कोई पांच पापोंमेंसे कोईसा पाप पंडितजीके कथनानुसार नहीं लगना चाहिए. इसही तरहसे कोई अपनी भुआ वहन पुत्री माताके साथ विवाह करके स्त्री वनाले तो उसको भी कोई पाप न होना चाहिए. वस फिर तो क्या है? जैसे पंडितजी उन उपाध्यायोंके प्रिय वनते है, वैसे ही कुछ भ्रष्टाचार चलानेवालेके वडे हितैषी और गुरु वन जावेंगे; क्योंकि वे लोग यही तो चाहते है. पाश्चात्य लोगोंमें यही प्रवरती है. महाराज कहिए ए ऐसी कुयुक्तीयें है या नहीं है?

अव निर्माल्यमें चोरीका पाप होता है सो भी सुनिए आपके लेख पीछे एक लेख इस निर्माल्यके विषयमें मैंने जैनमित्रमें दियाथा. उसमें स्पष्ट दिखा दियाथा कि—जो द्रव्य भगवत्के अर्पण करादिया उस द्रव्यको फिर भगवानकी आज्ञा विना किसीको भी लेनेका अधिकार

नहीं है. जो लेता है तो फिर उसको क्यो न चोरीका दोष लगेगा? जो आप लेवेगा अथवा आप लेकर किसीको देवेगा व लेवेगा उन सबको चोरीका दोष अवश्य लगेगा. इस्के उत्तरमें पंडितजीको शास्त्र आज्ञा दिखाना चाहिएथी के अमुक अमुकको तो दोष नहीं; और अमुक अमुकको दोष हैं; अथवा नियोगी जनोंको दोष नहीं तथा ए उपाध्याय ही नियोगी हैं; अथवा इनोंको निर्माल्य ग्रहण करनेकी भगवानकी आज्ञा अमुक अमुक ग्रंथोंमें है. सो तो कुछ बताया नहीं और हमसेही पूछते है सो तारीफ है!

इसके सिवाय फिर पंडितजी लिखते हैं कि-जिस (निर्माल्य) द्रव्यको हम कूडा [कचरा] समझते हैं वह त्यागयोग्य होजानेसे यह उसकोही लेले, उसने हमारी क्या चोरी करी? सो महाराज क्या वह आपका द्रव्य है सो आप कहते हैं? नहीं २ वह तो जिनको अर्पण किया उनका है उनकी आज्ञा विना लेना उन्हीकी चोरी है, आपकी नहीं. और जो प्रभूको चढाया द्रव्य परम पवित्र वंदना करने योग्य है, इस्को आप कूडा कचरा बतलाते हैं? हाय हाय बडा खेद है! क्या भगवानको अर्पण करनेसें वह ऐसा निंद्य होगया? पंडितजी साहेब मैं आपसे तो क्या कहूं और क्या लिखूं किंतु मैं अपनेहीको धिक्कार देसाहूं जो ऐसे शब्द मैं वाचता हूं और सुनता हूं! बस इतना लिखकर अब इस विषयमें मेरा आपसे मौन है. अब इसके उत्तरमें आप यह कहै अथवा और कोई पाठकोंके शंका होवे कि—जब भगवानको अर्पण किया द्रव्य इतना सर्वोत्कृष्ट पवित्र है तो फिर इसके लेनेमें इतना दोष क्यों? इस्का उत्तर एक तो ऊपरके लिखनेसेही होजाता है कि— विना देनेसें चोरीका दोष है. और व्यवहारमें राज्यमें भी यही है कि—जितना जितना जादे कीमतीकी चोरी होगी उतना २ ही जादे दंड मिलेगा. इसही भांति सर्वोत्कृष्ट द्रव्य अमोल जो भगवत्के अर्पण करनेसे उत्तम हुआ तो उस्के लेनेवालेको भी उत्कृष्टही पाप होना सिद्ध है.

दूसरा और भी दृष्टांत है जैसे अपनी वहेन भानजी माता पुत्री होती है वह सर्व कुटुंबसे अधिक माननीय होती है, किंतु भोगनेयोग्य नहीं होती. इसहीतरहसे भगवतको अर्पण किया द्रव्य वंदने योग्य है; किंतु भोगने योग्य नहीं है. और जैसे अन्य परस्त्री वेश्यादिकके सेवनसे मातापुत्री आदिके सेवनमें पाप जादा होता है, तैसेही अन्य संपूर्ण प्रकारकी चोरीसे भगवतको अर्पण किया द्रव्यके ग्रहणमें पाप बहुत अधिक होता है. इति.

दूसरा लेख पंडितजीका शासन (व्यंतरादि) देवोंकी पूजनका इसकीभी हकीगत सुन लीजिए—प्रथम तो मै पंडितजीसे तथा उनके सहचर पं० वासुदेवशास्त्री पं० जिनदासजी शास्त्रीजी आदिसे नीचे लिखी बाते पूछताहू.

(क) जब कि आप ऐसा मानते हैं कि—वरकी इच्छासे व मोक्षमार्गकी इच्छासे पूजना मिथ्या है; तो इनको क्यों पूजना? आपने जो उदाहरण दिए हैं कि, जैसे चमरछत्र सिंहासनादि शोभा बढाते हैं. तैसेही शासनदेव हैं. तो क्या चमरछत्र सिंहासनकी पूजाकी जाती है? जब चमरादिकी पूजा नहीं कीजाती तो फिर इनकी पूजा क्यों ? और क्यों मिथ्या नहीं? कदाचित निक्षेपकर छत्रादिको पूजा मानभी ला आवे क्योंकि अजीव द्रव्यमें स्थापना होसकती है. किंतु जे व्यंतरादिक सजीव है इनमे स्थापना कदाचितभी संभव नहीं.

[ख] क्या कोई इनकी (शासनदेवोंकी) पुजा करेही बिना केवल अर्हंतादि परमेष्ठीयोंकी अच्छे उत्तम भावसे पुजा करे, सो क्या इसको पूजाका फल नहीं मिलेगा ? जो कदाचित कहो कि—शासनदेवोंके बिना ऐसे उत्तम भाव नहीं होसक्ते सो क्या वीतराग छवीको देखकर तो उत्तम भावन होवे, और क्रूर स्वरूप शस्त्रादि ग्रहण करनेवालेको देखनेसे उत्तम भाव होवे ? यह बात सिवाय मिथ्यात्वी और कोन बुद्धिवान स्वीकार करेगा सो बताइए ?

[ग] क्या कोई शासनदेवकी पूजाविना अर्हंतादिकी पूजा करनेसे मिथ्यादृष्टि होजाता है? जो नहीं होजाता तो फिर इनकी पूजा करनेको इतना जोर क्यों देते हैं?

[घ] जबके आपने तेरापंथी वीसपंथीके लेखमें लिखा है कि, वीसपंथियोंमें यह विपरीतता है कि—इनमें क्षेत्रपाल पद्मावतीके पुजनका स्तोम वढगया हैं. तब आपही इनको शासनदेव मानकर पुजनेका उपदेश करते हैं. यह कैसी विपरीति ? और फिर आपके लेख अनुसार लोग प्रवरतने लगे तो फिर कितनी पुष्टी उन वीसपंथियोंकी होगी? क्या फिर सर्व समाज क्षेत्रपालादिके पूजक नहीं होजायगें ? जो कि—वर्तमानमें बहुतही थोडे तेरापंथके प्रभावसे रहगए दीख पडते हैं. तब कहिए कितनी मिथ्यात्वकी प्रावल्यता होजायगी?

[ङ] जो आप शासन देवोंके पूजनेका पक्ष कर रहे सो यह केवल प्रतिष्ठाके समयकी करते हैं या नित्यनियममेंभी करनेकी करते हैं ? प्रतिष्टाके विषयमेंतो मै फिर लिखूंगा.

(च) जो नित्य अर्हंतकी पूजाके समय प्रथम शासनदेवोंकी पूजन की जावे पीछें अर्हंतादिककी कीजावे या वीच २ में कीजावे तो कहिए अर्हंतादिकी पूजामें विघ्न पडा या नहीं? और उनका [अर्हंतादिका] अविनय हुआ या नहीं? जो कहो कि—शासनदेवकी पूजा करना है वह अर्हंतादिकहीकी पूजा है, शासन देवोंकी नहीं.तो ऐसी वात कोन बुद्धि वान स्वीकार कर सकता है ? आप वकीली पेंचोंसे इसवातको सिद्ध करो सो यह वात आपको शोभनिक नहीं. आपने जितने हेतु उदाहरणा दि दिए हो उनोका सविस्तर उत्तर दिया जाय तो एक वडा भारी गो-मटसारके वरावर ग्रंथ वन जाय, और सार कुछभी नहीं. आपने जितने शास्त्रोंके प्रमाण दिए हैं उनके सर्व उलटे अर्थ कर २के दिए हैं. उनमेसे कुछ नीचे वताउंगा. जैसे वकील वॅरिष्टर लोग सच्चे मुकदमेंको झूट और झूटे मुकदमेंको सच्चा करदेते हैं. तैसे आप अपनी विद्यावाक्पटुता

और लिखनेकी चतुराईसे आगमविरुद्ध कथनी करो सो क्या आपने इसीवास्ते इतनी विद्या पढी है? हाय गजब !

(छ) क्या आप शासनदेवोंकी पूजा करके उनको बुलातेहो और विघ्नादिकी शांति जिनेंद्र पूजनादिमें आप चाहते हो ? सो क्या वे इन्द्र वातादिकुमार तथा अन्य आपके शासनदेव आते हैं ?

मै तो जानताहूं कि, आप हजार वार शिर पटककर रह जाय, और आप लिखते है जिससे भी हजार गुनी आप पूजा, स्तुती, सेवा, विनंती कर दीखाइए, वे तो कदाचित भी नही आवेगे यदि कहोगे आसकते हैं तो अनेक जगह तीर्थस्थानोंपर तथा मंदिरोंपर तथा प्रतिष्ठा आदि उत्सवोंपर विघ्न क्यों हुए? और होते रहते हैं ? और कहीं २पर उनकी पूजा आव्हाननादि विशेष होती है फिर वे क्यो नहीं सहाय करते? और जहां उनका विलकूल आराधन नहीं होता किंतु उनका विरोध किया जाता है वहां कोई प्रकारका विघ्न नहीं होता सो क्यों ?

अब औरभी विरुद्ध वाक्योंका हाल सुनिये—

१ प्रथम तो उपरोक्त पंडितगण शासनदेवोंकी पूजन करना दूसरी प्रतिमासेभी ऊपरकी प्रतिमावालेकों सिद्ध करते हैं. परंतु पं० जिनदासजीने जैनमित्र अंक १७ वीरसम्वत २४४७ के लेखमें माना है कि—पूजनेसे सम्यक्त्व मलीन होता है नष्ट नहीं होता. तो विचारनेकी वात है कि—कोईभी सम्यग्द्रष्टी अपने सम्यक्त्वादि गुणोंको मलीन करना नहीं चाहता; किंतु उज्जवल करनेहीके प्रयत्नमें रहता है. परवश मलीनता का दोष लगे उसमे अपनी निंदागर्हा कर्ता हुआ रहता है. और जो दोष प्रायश्चितादिकर शुद्ध होसक्ते हो उनकों तत्काल प्रायश्चितसे शुद्ध करता है. तव वताईए वह सम्यग्द्रष्टी वडी प्रीतिसें उनकों कैसे पूज सकता है? और वुद्धिपूर्वक राजी होकर सम्क्त्वको मलीन क्यों करता है? आश्चर्य है ! दूसरे जो शासनदेवोंके अन्य भक्त पंडित आशाधरजी भी कहते हैं. अध्याय ३ श्लोक ७।८ की टीकामें कि शासनदेवोंको दर्श-

निक (प्रथम प्रतिमाधारी) श्रावक अनेक आपदायें आनेपर भी सेवन नहीं करता है किंतु पाक्षिक कर सकता है. और पूजन तो मुख्यतासे व्रती श्रावक करता हैं तब वह उनको कैसे पूजें ?

२ एक और विचित्र बात देखिए कि—सामान्यतासे पूजाका अर्थ सत्कार वाची है सो पंडितजी हरेक स्थानमें सत्कारकी आडमें शासनदेवोंकी पूजा सिद्ध करनेकी अनेक शास्त्रोंके प्रमाण दे डालते है. सो यथायोग्य सत्कारके विषयमें तो कोन विरोध करता हैं? किंतु जिनेंद्रादि सारीखी पूजा करना सिद्ध करदेना यह कहां की बात? सत्कार भंगी चमार आदि तथा पुत्रका मातापिताशिष्यका गुरु इत्यादि तथा योग्य सबहीका सबहीको करना कहा है. किंतु क्या पूजन करना भी कहा है? यद्यपि पूजन करना सत्कारमें है, किंतु पूजन शब्दसे महान् सत्कार ग्रहण होता है; न कि सामान्य सस्कार. जो ऐसाही होवे की सबही सत्कारका नाम पूजा है—तव तो आचार्योके वाक्य है जो कि देव गुरु शास्त्रके सियाय अन्य वंदने पूजनें योग्य नही है. सो खंडित होजायगे.

३ और सुनो, अपनी वचन पक्षके पुष्ट करनेको पंडितजी शब्दो-के अर्थही पलटकर और के और अर्थ करने लगते हैं. और कहीं कहीं तो श्लोकोंके शब्दही बदल देते हैं सो पाठकगण नीचे देखिए.

जैनसिद्धांत पत्र अंक १२ वी. सं. २४४७ आषाढ मासके पृष्ट ३९ पंक्ति २८। २९ तथा पृष्ट ४० पंक्तिमें लिखते है कि—पूजा-विषय नमस्कारसें कम महत्वका है. और इसका उदाहरण दिया है कि—मुनिकी मुनिसे भी होजाय तो पूजा शब्द नहि उच्चारणकर नमस्कार करते हैं. इत्यादि कैसा छलसे पूजाके महत्वको घटाया है? अपने विद्या इसही वास्ते नही पढी कि केवल शब्दोही के अर्थ करके वकीली पेचोंके सदृश अपने प्रयोजन सिद्ध करनेको चाहे जिधर घुमावें पंडि-तजी साहेब, जहां पूज्य पूजक भाव है वहां पूज्य ऊंचा होता है

और पूजक नीचा होता है. यही कारण है कि- हम जब श्रीजीके दर्शन करते समय नमस्कार करते है उस्का महत्व थोडा समझते है; और जब स्नानादिकर जब द्रव्यसें पूजा करते हैं तब उस्का महत्व जादे समझते है. और आप भी समझते होगे और सर्वही समाज समजती है और यही सनातन रीति है. और जो नमस्कारका महत्व जादा होवे तो हम लोग नमस्कारही किया करें; पूजनही क्यो करे? तथा जो आचार्य भी शिष्योंको क्यों नमस्कार करे? आपके नमस्कारका महत्व जादा हो तो आचार्य शिष्योको नमस्कार ना करें; महाराज जरा विचार करिए. व्यवहारमें शब्दोका अर्थ एक होनेपर भी उन्ही शब्दोंमें भेद करके अर्थमें भेद मान लिया जाता है जैसे नमः, नमोस्तु. वंदना वंदामि इन चारों शब्दोंका एक नमस्कारही अर्थ होता है. किंतु नमः मुनियोंमे परस्पर, और श्रावक नमोस्तु मुनियोंको, वंदना ब्रह्मचारीयोंको, वंदामि अर्जिकाजीको ऐसा भेद क्यो बताया? और सर्व ही प्रतिमा धारियोंको परस्पर इच्छाकार क्यों बताया? तथा प्रतिमा धारियोंकेविषे गृहस्थकों इच्छाकार करना क्यों बताया? तथा परस्पर जुहार शब्द क्यों बताया? इसवास्ते जो ऊंचे दरजेका जो सत्कार है वह अष्ट द्रव्यसे मन-वचन काय की शुद्धता पूर्वक पूजन करनाही है. क्या वजे है कि- हम घरसे स्नान करके सामान्य वस्त्र पहरकर जिनालय आकर वंदना नमस्कारादि स्तुती और दर्शन करते हैं? किंतु जब अष्ट द्रव्यसें पूजन करते हैं तो विशेष शुद्धता स्नान वस्त्रादिकसे होकर फिर करते है. इससें सिद्ध होता कि पूजनका महत्व नमस्कारसे वडा है सो आपने भी माना है. कि- मुनी आचार्यादि भगवत्की भाव पूजा करते हैं. सो क्या आचार्य अपने शिष्योंकी भी भाव पूजा करसकते है? जो कहो कि नहीं तो फिर क्यो नमस्कारसे पूजनका महत्व कम बताते हो?

तथा जो आपने भरत चक्रीका उदाहरण दिया कि-चक्रकी पूजा करी; आये हुए राजोंकी पूजा करी, सो इस पूजाका अर्थ तो सत्कार

होसकता है. और इस्का महत्व वकोल आपके नमस्कारसे हीन है. किंतु अष्टद्रव्यसे पूजाका महत्व हीन नहीं है. क्या नमस्कारको पूजा नहीं कहसकते है? क्योंकि नमस्कार भी एक सत्कारही है. ऊपर नमः आदि चार शब्द तथा इच्छाकार जुहार एमी सत्कार दिखाया है. तो इनको भी पूजा सत्कारकी अपेक्षा कहसकते हैं. जो भरत चक्रवर्तीने चक्रकी और राजाओंकी अष्ट द्रव्यसें पूजा करी कही होवे तो वताईए? तब कहीं आप नमस्कारसें पूजाका महत्व कम बतावे. नहीं तो वृथाही आप अपना अर औरोंका अमूल्य समय ऐसी खोटी बातोमें जिंससे जीवोंको भरममें डालकर दुरगतियोंके पात्रबनानेमें क्या फायदा? और जो आपने लिखा है कि- शासनदेवोंकी पूजा है वह उनकी पूजा नहीं किंतु भगवानहीकी पूजा है. सो भाईसाहेब मेरी मा और बांझ ऐसी बात कोन बुद्धिवान मान सकता है? तथा आपने जो विसर्जनके पाठमें "तेमयाभ्यर्चिता भक्त्या" इस शब्दको उडाकर "ते जिनाभ्यर्चनं कृत्वा" ऐसा शब्द बनाकर अपना इष्ट सिद्ध किया सो यह भी बहुत बुरी बात है. सेकडो वर्षोंकी लिखी पुस्तकोंमें आपने लिखे शब्द सो नहीं है. जो मैने लिखे वे ही है, और अद्यापि सर्वत्र वे ही प्रचालित है. सो अपना वचन पुष्ट करनेको शास्त्रोंके शब्द नहीं बदलना चाहिए यही प्रार्थना है. जादे क्या कहे?

तथा जो तीन लोककी जिनचैत्यालयोंके अर्घमें केवळ जिन भगवानकोही वंदना और पूजना कहा है. परंतु आप उस्का अर्थ करने लगे कि—चारो निकायके देवोंको भी अर्घ्यादि प्रदान करना वताया है. सो एभी आपकी चतुराई ठीक नहीं है. जबकी आप चारो देवोंको अर्घ प्रदान करना सिद्ध करते हैं. तो वहां "वंदे"शब्द भी हैं. तो क्या व्यंतरादिकोंको वंदना भी करना होगा? जो कहो कि नहीं, तो फिर दो बातमें एक मानो; एक नहीं मानो. अर्थात् अर्घ चढाना मानो और वंदना करना नहीं मानो सो कैसें बने? और जो कहो कि वंदना करे.

तो फिर आप इसका पूजनसे जादा महत्व वताते है. और कह चुके हैं कि शासनदेवोंकी पूजन तो करना किंतु नमस्कार नहीं करना. सो ये वाक्य आपके स्ववचन वाधित होते है.

अथवा इस 'वंदे' शब्दका अर्थ आप चतुराईसे दूसरा अर्थ वनाओगे. सो कदाचित् नहीं वनेगा क्योंकि जब अकृत्रिम विंबोंके अर्थ वंदे शब्द है वह सिवाय नमस्कारके दूसरा अर्थ हो नही सकता. सो वो ही शब्द आपकेही मतसे शासनदेवोंके अर्थ कैसे होसकता है? इस वास्ते उक्त श्लोकसे व्यंतरादि ४ प्रकारके देवोंके स्थानमें चैत्यालय है. उन्हीको नमस्कार और अर्घ प्रदान है; व्यंतरादि देवोंको कदापि नहीं. आपका अर्थ पक्षसे है सो ठीक नही.

अव और देखिए आखोमें धुल डालने कैसी कहावत पंडितजी करते है. पंडितजी अपने पत्र अंक १२ में पृथम तो यह लिखते हैं कि– तपस्वियोंका कर्तव्य ध्यानाध्ययन है, और गृहस्थियोंका पूजा दान है. इस ध्यानाध्ययनकी सुरुवात पंच नमस्कार मंत्रसे व सिद्धादि भक्तियोंसे होती है. और गृहस्थियोंकी पूजा दानकी सुरुवात गर्भान्वय आदि संस्कारोंसे वताई है. संस्कारोंके प्रकरणोंमे सेकडो मंत्र हैं. परंतु उनमें पंच नमस्कार मंत्र व सिद्ध भक्तिका वहां जिकर नहीं है. सो जो गृहस्थ अपने कर्तव्यको न कर (छोडकर) तपस्वियोंके कर्तव्य करता है वह उभय भ्रष्ट है. इत्यादि वहुत लिखा है–इससे पंडितजीने यह सिद्ध किया है कि– नमस्कार मंत्र व सिद्धार्चन तो मुनियोंका कर्तव्य है. और गृहस्थोंका शासनदेवोंके सूचक मंत्र है. उनके आराधनही कर्तव्य है सो ही आपने अपने पत्र नं. ११ पृष्ठ ३५ के नीचेकी पंक्तिमें लिखा है कि– श्रीजिनस्वामीने क्रमसे जिनशासनके देवोंका उल्लेख किया है और इस्की पुष्टी अंक १२ में करते हैं. इन्द्राय स्वाहा इसका अर्थमें कोई हजारवार शिरपटके तो भी इन्द्रको आहुती देनेका जो अर्थ होता है वह वदले नही सकता. तो भी इसे

इन्द्रकी पूजन न कहकर सिद्धार्चन बताया हैं. इसका मतलब इतना है कि जो इन मंत्रोंसे कार्य हुआ उस्को सिद्धार्चन कहा है. भावार्थ पंडितजीका यह अभिप्राय के सिद्धार्चन तो वहां नहीं हुआ किंतु अर्चन शासनदेवोंही का हुआ और इसको सिद्धार्चन समझलिया. देखो कैसी वचनकी चतुराई मिलाकर शासनदेवोंको पूजनेको सिद्ध करते हैं! आपको कितना धन्यवाद दिया जाय! खेद! अब आपके वाक्योंका उत्तर सुनिये.—

जो आपने गृहस्थियोंको पंचनमस्कार मंत्रका निषेध किया सो अयोग्य है. गृहस्थीयोंके वास्ते हमेशा बैठते उठते सोते खाते पीते हरेक कार्य करते नमस्कार मंत्रको जपना कहा है. क्षणमात्रभी नहीं विस्मरण करना. सोही अच्छे पुरुष हैं जे सदाही स्मरण करते है. और सिद्धोंकी पूजा गृहस्थी रोज करताही है. आप इसका निषेध करते हैं सो क्या कहाजाय? " अर्थी दोषं नपश्यति. "

जो आपने गर्भान्वयादि क्रियाओंके मंत्र शासनदेवोंके सूचक बताए सो आपके शासनदेवका सूचक एक मंत्रभी नहीं है; सर्वही मंत्र अर्हतासिद्धादिके सूचक हैं. इसवास्ते वे पंच नमस्कारसे भिन्न नहीं है. जैसें सत्यजाताय, अर्हज्जाताय, परमजाताय, अचलाय, अव्याबाधाय इत्यादि जितने मंत्र हैं सो मुख्यताकर सिद्ध भगवानके सूचक हैं; और गौणताकर पंचपरमेष्ठीके सूचक हैं. परंतु आपके शासनदेवके कोईभी सूचक नहीं है. और जिनसेनस्वामीने शासनदेवोंका उल्लेख कहींभी नहीं किया? आपही उनके वाक्योंके उलटे अर्थ करते हैं सो बलिहारी है!

और जो आपने, इन्द्रायस्वाहा इस मंत्रके ऊपर बडा गर्व किया है और लिखा कि— हजारवार शिरपटके तोभी इन्द्रके अर्थ आहुती देने से दूसरा अर्थ नहीं होता; सोभी आपका पक्षपात है, जब कि—वे सिद्धार्चनके मंत्र हैं तो सिद्ध भगवानकेही सूचक है, और गर्भाधानादि सब क्रियाओंमें सिद्ध भगवानकी प्रतिमा विराजमानकर पुजन कर आहुती

देना लिखा है. न कि—आपके शासनदेवोंको. और इन्द्रायस्वाहामें भी सिद्ध भगवान अर्हंत भगवान वा शुद्धात्माकोही आहुती दी है. क्योंकि देखो श्रीतत्वार्थ सूत्रजीकी टीकाये सर्वार्थसिद्धी राजवार्तिकादिक इन्द्रियोंके निरुक्ति अर्थमें कहा है इन्द्र जो आत्मा ताका चिन्ह होय सो इन्द्री तथा जिनेन्द्र हरजगा अर्हंतका वाचक आताही है. प्रसिद्ध है सो जिनके जो इन्द्र सो जिनेंद्र जिन जो कर्म शत्रुके जीतनेवाले तिनके स्वामी. सो यहां जिन चौथे गुणस्थानसे लगाकर मुख्यतामें बारमें गुणस्थानतक जिन है. और बारमेंके ऊपर सिद्ध भगवानपर्यंत जिनके इन्द्र है. इसवास्ते अर्हंत सिद्धोंको इन्द्र संज्ञा शास्त्रोंमें और वर्तमान प्रवरतीमें प्रसिद्ध है. अजी महाराज इन्द्र शब्द तो अर्हंतासिद्धोंका वाचक प्रसिद्ध है सो तो जान दीजिए; परंतु इससेभी जादा आपका गर्व बढे उन शब्दोंकाभी अर्थ सुनिए जो गर्भान्वय क्रियाओंके पीठिका मंत्र हैं; उन्मेके मंत्र सौधर्मायस्वाहा इसका अर्थ आप इन्द्रके अर्थसेभी जादा गर्वके साथ सौधर्म स्वर्गके इन्द्रका करेंगे किंतु इस्का अर्थ किया है कि—सुन्दर धर्मको भावस्वरूप (अर्हंतसिद्ध) ताके अर्पण करता हूं ? देखो विवाहपद्धती इसही तरह नगरपतये, ग्रामपतये इत्यादि शब्दोंका अर्थ आपके अनुसार किया जाय तो नगरका जमीदार, गावका जमीदार, पटेल, वगैरहको आहुती देना चाहिये जो प्रायः मिथ्यादृष्टी होते हैं. सो कदाचित संभव नहीं. तथा कहो कि है तो फिर उनोंका प्रत्यक्षही बुलाकर क्यों न आहूती देतेहो ? क्योंकि वे तो विद्यमान होते हैं. जो विद्यमान न होय उनकी परोक्ष पूजा करना चाहिए. दूसरे औरभी एक आश्चर्य देखिए की पुजन करनेवाले आहूती देनेवाले बडे २ राजादिक तथा वर्तमानके बडे २ जमीदार सेठलोग जैनी होते हैं और है. सो कोई ग्रामकापति (पटेल) आदि लगानके रुप्पा नहीं देता अथवा और कोई कसूर करता है तो वह राजा व बडा जमीदार उस पटेलको पिटवाता है, कैद करता है. इत्यादि बेइज्जती करता है. और जब वह राजा जमीदार पूजन करे,

आहूती देवे, तब क्या उस पटेल (ग्रामपति) को पुजेगा? आहूती देवेंगा? जो देवेगा तो वही मसल हुई, जैसें पहली तो गायको पूजी, माता व नाई पीछे, डंडा मारे! कहो क्या जिनमतमें भी ऐसा अंधेर कि उसीको नमस्कार पूजन करना और फिर उसहीको जुता मारना! सो माहाराज ऐसी हालतका जैनधर्म ना बनाइए? इसवास्ते ए जो ग्रामपति, नगरपति, भूपति, देवब्राह्मण, सुब्राह्मण, कालश्रवण, श्रावक, सम्यग्दृष्टी, वैश्रवण, इत्यादि पीठिकामंत्र हैं; उन सबका अर्थ अर्हंतसिद्धही होता है. और देखो उन मंत्रोंमें एक मंत्र है अनुचरायस्वाहा. सो अनुचर नाम है नौकर चाकर का. सो आपके अनुसार अर्थ किया जाय तो अपने चाकरकोंभी पूजना चाहिए सो असंभव है. परंतु देखो वहां क्या अर्थ किया है कि—चर-धातुगमन अर्थमें है अर ज्ञान अर्थमेंभी है. याते परंपराय रूप है ज्ञान जाको ऐसा अनुचरके अर्थ अर्पण करताहूं इत्यादिक जितने मंत्र हैं वे सब परमेष्टीवाचक हैं सो सर्वही पंचनमस्कारमें गर्भित है. उनसें पृथक्क कोई नहीं है. आप अन्यथा अर्थ करके भव्यजीवोंको नीचमार्गमें न ले जाइए.

औरभी जो जो बाते पंडितजीने लिखी है उनके उत्तर जैनमित्र अंक ३२ में ब्र० शीतलप्रसादजीने तथा जैनमित्र अंक ३८ में मैंने दिए हैं जिनसेभी बहुतसा समाधान होसकता है. जो पंडितजीनें उत्तर दिए हैं वे सब बातोंके नहीं दिए हैं. परंतु अपनी वचन पक्षकर दूसरोंकी न सुनकर या पूरा उत्तर न देकर अपनीही हाकते चले जावे! सूरजभानूजीकेसी रीत पकडनेसें कुछ नहीं होता.

प्रभाचंद्रजीके बाबतभी प्रथम तो यही बात सिद्ध करतेथे कि—रत्नकरंड टीकाके जो करता है वही प्रमेय कमलमार्तंडके करता है. रत्नकरंडके टीका करता भट्टारक नहीं. परंतु जब जैनहितेषीवालेने चार प्रभाचंद्र सिद्ध कर दिए तब १३ तेरमी शताब्दीके पूर्वके माने और प्रमाणमें यह दिया कि—पं० आशाधरजीने प्रभाचंद्रजीकी रत्नकरंड टीकाका

उल्लेख किया है जिससे सं० १३१६ के प्रभचंद्र नहीं है. परंतु यहभी भूल है क्योंकि जो १३१६ की सालका प्रभाचंद्रजीका उल्लेख है. क्या वे १३१६ की सालमे जन्मेथे जो पं० आशाधरजीके समकालीन नमाने जाय ? और पं० पन्नालालजी वाकलीवालेने पांचवे प्रभाचंद्रजीका उल्लेख किया है. वे सं. १०८० में हुये लिखेसो उस लेखसे यहतो सिद्ध होगया कि, वे र. क. टीकाके करता और प्रमेयकमल मार्तंडके करता एक नहीं लिखा है. किंतु उससे यह सिद्ध नहीं है और कि जो १०८० में यह है वेही र. क. टीकाके करता है. इसवास्ते जो आपको यह अभिप्राय नथा कि प्रमेयकमल मार्तंडके करता और र. क. टी. के करता एक नहीं है सो गलत होगया. और हमारा और ब्रह्मचारीजी आदिका लिखना और उनमान ठीक होगया. कि भट्टारक न होकर आचार्य होते तो कदापि शासनदेवपुजाके वाक्य नहीं लिखते. प्रथम यही प्रभाचंद्रको ८०० संवतके सिद्ध करनेमें वडा भारी जोर देकर लेख लिखा सो वह रद्द होचुका.

इसही तरहसे पहले शासनदेवोंको सम्यग्दृष्टी सिद्ध करनेमें वडा जोर दियाथा. पीछेसे व्यवहारसम्यग्दृष्टी मानना पडा. किंतु उस वातको भी ब्रह्मचारीजीने खंडित करदी, और जो जिनेंद्रके कल्याणकादिनिमें आनेसे सम्यग्दृष्टी देवोंको माने जाय तो कोईसाभी देव मिथ्यादृष्टी नहीं रहताहै. अभियोगजातक देवतकभी सम्यग्दृष्टी ठहरजायगे, जो कि बिलकुल असंभव है. तथा मिथ्यादृष्टि देव होते हैं यह शब्दही नहीं रहना चाहिए. क्योंकि सर्वही देव पांचो कल्याणकमें आते हैं. तथा सर्वही देवोंके विमानोंमे भवनोंमे आवासोमें जिनेंद्रके चैत्यालय है. और सर्वही देव जब जन्मके समय उत्पाद शय्यासे उठते हैं तो अपनी २ वावडीमें स्नानकर प्रथम अपने चैत्यालयमें जिनेंद्रकी पूजन करके पीछे देव सम्पदाको स्वीकार करते हैं. सो जो जिनभक्तिसेही सम्यग्दृष्टी माने जांय तो सर्वेही सम्यग्दृष्टी ठहरे, मिथ्यादृष्टी कोईभी नहीं ठहरसकता

सो असंभव है. जैसे वर्तमानके जैनी सर्वही व्यवहारसम्यग्दृष्टी नहीं है. तैसे देवभी नहीं. क्योंकि रूढिसे जैनी हैं देवादिकका श्रद्धान नहीं हैं और जो सुदेवादि देवोंके ४ भेद किए हैं उन्होंमें कोई सुदेवोंको पूज्य नहीं बताए, उन्होंने देवाधिदेवही पूज्य माने हैं. परंतु जहां सामान्य शब्द दो हैं, एकतो देव और एक कुदेव वहां देवमें तो एक देवाधिदेवका ग्रहण होता है. और कुदेवमें तीनों प्रकारके देवोंका ग्रहण होता है. इसीवास्ते कहा है कि-अर्हतदेवके सिवाय अन्य कुदेव हैं सो मान्य नहीं इत्यादि.

और जो जैनसिद्धांतके संपादकजीने अंक १२ में मेरे प्रश्नके उत्तरमे श्री० उदासीन पं० गोधाजीके प्र[illegible]र इस लेखमें शब्द पर वहुतसा लिखा और जिसशब्दपर प्रश्नथा उसका उत्तर तो न दिया अर और वहुतसे शब्द वृथा लिख डाले. अर्थात सवाल दीगर और जवाव दीगरकी कहावत करी; अर्थात मैनेतो यह पूछाथा कि आपने ऐलकको लघु मुनि लिखे सो लघुमुनि किस शास्त्रमें कहा है ? ऐलकको मुनिसमान तथा मुनिके लघुभाई ऐसातो कहा है किंतु लघुमुनि ऐसा मेरे देखनेमें नहीं आया. और विरुद्धताभी दीखती है. जैसे राजासमान हरएक पुरुषको कहसकते हैं. अथवा राजाके भाईभी होता है. किंतु राजाके भाईको या किसी अन्यपुरुषको छोटा राजा कहते नहीं. और कहे तो राजा नाराजही होगा. सो इसका उत्तर न देकर तपस्वी साधू समान तथा नैगमनयसे तपस्वी साधू कहा है. इत्यादिक लिखा सो ठिक नहीं. तथा समानता और नैगमनयसे जो चौथे गुणस्थानवालेको भी कहते हैं. जैसे श्रावकको सामायकसमय प्रोषधोपसमय तथा दिग व्रतमें मर्यादक्षेत्रके बाहर मुनिसमान तथा मुनि कहा है. तथा सज्जन पुरुषको भी साधु कहते है. आप एक ऐलककोही क्यों वताते? मेरा इन शब्दोंपर प्रश्न नही था किंतु लघुमुनि शब्दका उत्तर देनाथा. और नैगमनयसे कहोतो उस शब्दकेसाथ नैगमनय लगा देना चाहिए जिससे

मंदबुद्धियोंको भ्रम नहीं पडे. और सार्थक लघुमुनि समझकरही तो लोग नवधाभक्ति करने लगगए, मुनिसमान जो कि आज्ञा नहीं.

सं. १९७९ } पन्नालाल गोधा, इंदोर.
श्रावण वदी २ }

शासनदेवता-चर्चा.

विदित हो कि एक पत्रिका पं० शंकर पंढरीनाथ रणदिवे सोलापूरकी भेजी हुई वास्ते अभिप्रायके मुझे प्राप्त हुई. प्रयोजन उसका यह था कि दुष्कर्मों ही शांतिके अर्थ सत्यार्थ देवगुरु सिद्धांतोंका ही अष्टद्रव्योंसे पूजन करना योग्य है. सो कृत्याकृत्यम् इत्यादि श्लोककी व्याख्यामें मैं पहले ही सम्मति प्रकाशित कर चुका. पश्चात् एक पत्री सेठ रावजी सखाराम दोशी सोलापुरवालोंकी भेजी हुई वास्ते अभिप्रायके मुझे प्राप्त हुई. सो इसका इष्ट यप्रोजन शासनदेवकी पूजा करनेका भी है. सो रा० शंकरजी पत्रिकाके प्रतिकूल है तातैं मुझे इसका विचार करके सम्मति देनेकी आवश्यकता हुई. प्रथम पं० वंशीधरजीने अपने जैनसिद्धांतमें प्रकाशित किया था कि इन्द्रायस्वाहा यह मंत्र महापुराणके ४० वें पर्वका है इसका अर्थ इन्द्रकेलिये आहुती देना ही होता है. इसका प्रतिउत्तर रा० शंकरजी लिखते हैं कि-इंद्राय स्वाहा यह सुरेंद्र मंत्रोंमें कोई अलग मंत्र ही नहीं है किंतु सुरेंद्र मंत्रोंसे "एतै; सिद्धार्चनम् कुर्यात्" इस पादके प्रमाणसे सिद्धोंका ही अर्चन किया है सो ही पर्व ४० श्लोक १८ का यह पाद है. इसके प्रति उत्तरमें पं० वंशीधरजीने रावजी सखाराम दोशी सोलापुरकी ओटमें होकर जो पत्रिका निकाली है, और मेरे पास अभिप्रायके लिये आई है, सो मैं तिसपर अपनी सम्मति विद्वानोंके सन्मुख रखता हूं. आशा है कि इसपर ध्यान देकर विचार करेंगे. उस पत्रिकामें प्रथम यह पंक्ति है

[रा० शंकरजी आगम प्रमाणता यह चीज क्या मानते हैं] समीक्षा बहुधा सामान्य पुरुष अपूर्व पदार्थको देखकर यह कहते हैं कि— यह क्या चीज है? और विद्वान् कहते हैं यह क्या पदार्थ है? क्या वस्तु है? इस व्यवहारसे निश्चय होता है कि—चीज वस्तु पदार्थ ये तीनों एकार्थवाची पर्याय शब्द हैं. असमंतात् गम्यंते ज्ञायंते पदार्थाः अनेन इति आगमः जिसकर सर्व पदार्थ जाने जांय सो आगम दो प्रकार है— द्रव्यागम और भावआगम सो अक्षर पद वाक्योंका समुदायरूप द्रव्य आगम है. तिसके निमित्तसे उत्पन्न हुवा जो अर्थका ज्ञान सो भाव आगम है. सो श्रीमान् माणिकनन्दि आचार्यकृत सूत्रानुसार भावआगम ही मुख्यता करके प्रमाण है. क्योंकि हितकी प्राप्ति और अहितको परिहार करनेमें समर्थ ज्ञानी जीव ही है न कि मुर्ख पुद्गलमई शब्द आदि जड पदार्थ. और आगमज्ञान भी स्वपर निश्चय स्वरूप है. सो तिस प्रमाणमें भी स्वपराभासकरूप प्रामाण्य भाव है सो आगम प्रमाणताका वाच्य अर्थ मानते हैं. सो प्रामाण्यभाव वह ज्ञानीके उपदेशसे अथवा आगमके अभ्याससे व्यक्त होता है. किंतु जिनके मिथ्यात्व और कषायोंका तीव्र उदय है वे तो अपनेसे अधिक किसीको ज्ञानी नहीं समझते. तातैं परतः तिनके ज्ञानमें प्रामाण्य नहीं होय है. और श्रुतके अभ्याससे भी निज वचनकी पक्षकरके अपने ही अभिप्रायको पुष्ट करते हैं. तातैं अत्यंत अभ्याससे भी तिनके ज्ञानमें प्रमाणता नहीं होय है. और जिनके मिथ्यात्व कषायोंका मंद उदय है वे वहु ज्ञानीके वचनोंके हिरदेमें धारण करते हैं तिनके ज्ञानमें परतः प्रमाणता आती है. और जो निःपक्ष जाननेके अर्थ श्रुतका अभ्यास करते हैं तिनके ज्ञानमें स्वतः प्रमाणता व्यक्त होती है. तातैं मुख्यता करके भावश्रुतको प्रमाण माना है; और तिसका कारण द्रव्यश्रुतको उपचार करके प्रमाण मानते हैं, प्रथम प्रमाणका ही निर्णय करना योग्य है, प्रमाणसे ही उभय पक्षका निर्णय होता है. तातैं पं० बनसीधरजीनें यह पङ्क्ति लिखी है (यह एक वक्त

प्रकाशित करेंगे तो ठीक होगा) किंतु पहले ही प्रमाण निर्णयके विना जो लेख पंडितजीने निज पक्षकी पुष्टिके अर्थ वडे परिश्रमसे लिखा है वह सर्व निरर्थक हुआ, स्ववचन वाधित होनेसे आगे पंडितजीने रा० शंकरजीके श्रद्धानमें दोष व्यक्त करनेके लिये यह पङ्क्ति लिखी है. (श्री सोमदेव सूरि और पं० आशाधरजी ये दोनों ग्रंथकार व्यभिचार कार्यके पोषक हैं इसलिये इनके ग्रंथ विद्यार्थियोंके पठनक्रममें न रखने चाहिये ऐसा एक वख्त लिखते हैं) रा० शंकरजीका किसी समयका यह लेख जो पंडितजीने याद करके लिखा है इसके लिखनेसे पंडित- जीके अभिप्रायकी सिद्धि न होकर रा० शंकरजीके श्रद्धानकी प्रशंसा हुई. परीक्षा करके प्रमाण मानते हैं. क्योंकि व्यभिचार पोपक ग्रन्थ कैसे ही विद्वान्का क्यों न हो कोई भी जैनी प्रमाण नहीं मान सकता. और निश्चय है कि पंडितजी भी प्रमाण नहीं मानते होंगे. फिर पं० जी लि- खते हैं कि [और उनके वचनोंमेंसे एकाद वचन अपने मतोंकी पुष्टिके लिये तो जरूर लेते हैं] सो यह भी पं० विना विचारे लिखते हैं. क्या पं० जी यह दोष देते हैं कि जिन ग्रन्थोंको रा० शंकरजीने अप्रमाण ठहराए थें उनको ही प्रमाण मान लिया ? नहीं २ यह पंडितजीकी है भूल. जो प्रतिवादिके माने हुवे सिद्धांतोंसे अपना पक्ष सिद्ध हो जाय तो इससे अधिक और क्या प्रमाण होगा ? देखो श्री मोक्षमार्ग प्रका- शमें विद्वद्वर पं० टोडरमलजीने जैनमतकी प्राचीनता सिद्ध करनेको वेदोंकी ऋचावोंका प्रमाण दिया है तो क्या पं० टोडरमलजी वेदोंको प्रमाण मानते थे ? नहीं २ वेदोंका खंडनहीं करते थे. फिर पं० जी लिखते हैं (परंतु उन वचनोंसे भी अपनी कार्यसिद्धि होती है या नहीं इसका ख्याल उनको नहीं है.) पं० रा० शंकरजीको निज कार्यकी सिद्धिका ध्यान नहीं वह आपके निर्पेक्ष वचनोंसे सिद्ध नहीं हो सक्ता किंतु आपको निज कार्यकी सिद्धि असिद्धिका ध्यान नहीं यह दोष आपके वचनों कर पूर्वोक्त प्रकारसे आपमें सिद्ध होता ही है. फिर पं०

जी लिखते हैं (अपने मतकी पुष्टिके अर्थ पं० कल्लापा भरमापा निटवेका अर्थ उपयोगी समझते हैं, सोमदेवसूरीका नहीं समझते हैं उसका प्रमाण देते हैं.) इत्यादि सर्व सूते पुरुषके आलापवत निष्फळ हैं! क्योंकि वादी प्रतिवादिको विवादके अवसरमें जो प्रमाण जिस अभ्यासित ग्रंथका उपस्थित होता है, बोलता है या लिखता है तिसका यह प्रयोजन नहीं है कि- वह अन्य ग्रंथोंको अप्रमाण मानता है या नापसंद करता है। आगे पंडितजीने इन्द्रायस्वाहा इस मंत्रका जो अर्थ निजपक्षकी पुष्टिके अर्थ लिखा है तिसतें भी विपक्षही पुष्ट होता है सो अगले अंकमें प्रकाशित करूंगा. किंतु रा० शंकरजीने अपनी निज पत्रिकामें लिखा है कि- सुरेंद्र मंत्रोंमें इन्द्रायस्वाहा यह मंत्रही नहीं है. और मैंनेभी मुद्रित महापुराणमें देखा तो वास्तवमें नहीं है। खेद है कि- पंडितजी शासनदेवकी पूजाकी पुष्टिमें इंद्रायस्वाहा यह मंत्र महापुराणके ४० वें पर्वका वताकर प्रमाण देते हैं! और यह मंत्र महापुराणमें नहीं है. फिरभी इसका अर्थ अपनी निज पत्रिकामें वड़े विस्तारसे लिखते हैं तिसपर मैं विचार करके प्रकाशित करूंगा। इत्यपूर्णम्।

जैनमित्र भादोवदी
वीर सं. २४४८ } बनवारीलाल-खेकड़ा (मेरठ.)

शासनदेवता-चर्चा.

विदित हो कि मिती भाद्रपद कृष्ण ८ के जैनमित्रके अंकमें मेरा अपूर्ण लेख प्रकाशित हुवा है. तिसको पूर्ण करनेकी इच्छा करके मैं प्रथम यह निश्चय करना चाहता हूं. जो पत्री रावजी सखाराम दोशीकी मेरे पास आइ है उसके आधारसे लेखककी वुद्धि शासनदेवकी सिद्धि पुष्ट करसक्ती है या नहीं इसका विद्धज्जन विचार करके निश्चय करैं. पं० जीने प्रथम इंद्रायस्वाहा यह सुरेंद्र मंत्र प्रमाण दिया था इस मंत्र

करके इंद्रपदका देवोंका इंद्रही अर्थ होता है तातैं तिसकाही पूजन होता है. किंतु यह नहीं विचार किया के जैनमतमें सौ १०० इन्द्र प्रसिद्ध हैं. तिनमें एक तिर्यंचोंका इंद्र गवेंद्र भी है. सो अन्य मतावलम्बी तो गऊमाताकी पूजा करते हैं. और जैनियोंको सांढ पिताकी पूजा करनी पडी. किंतु जैनियोंके पुन्य उदयसे रा० शंकरजीने निज पत्रिकामें प्रकाशित किया कि–सुरेंद्र मंत्रोंमें इन्द्रायस्वाहा यह जुदा मंत्रही नहीं है. सो तिनकी कृपासे सांढ पिताकी पूजासे तो जैनी वच गये.

अव पं० जीने सुरेंद्रपद ग्रहण करने लिखा है कि– सुरेंद्र शब्द तो देवोंके इन्द्रकाही वाचक है. क्योंके इसमें जो सुर इन्द्रपदका विशेषण है तिसतैं तिर्यंच नरेंद्रकी निवृति भई. और पुष्ट कर निज पत्रिमें लिखा है (क्रिया और मंत्र जो माहापुराणमें दिये हैं तिसपर विचार करैंगे. मंत्र देनेके प्रथम सप्त परमस्थानोंका वर्णन किया है. दो श्लोक लिखकर तिनका अर्थ लिखा है. सज्जाति, सदगृहित्व, पारिव्राज्य, सुरेंद्रता, साम्राज्य, परमार्हंत्य, परमनिर्वाण ये सात तीन लोकमें श्रेष्ठ स्थान माने जाते है. और जीवोंको अर्हत देवकी वाणीरूप अमृतके आस्वादन करनेसे प्राप्त होते हैं. और येही सात कर्त्तन्वयं क्रियाये हैं. समीक्षा उस पं० जीके लिखे अनुस्वार सुरेंद्रपदके दो अर्थ हुये एक तो परमस्थान विशेष्य दूसरा कर्तृन्वय क्रियाविशेष्य.

आगे पंडितजी दो श्लोक महापुराणके लिखकर तिनका अर्थ लिखते है. (यह भव्य पुरुष प्रथम ही सज्जातिको पाकर फिर सद्गृहस्थ होता है. अर्थात् सदगृहीत्व क्रियाको प्राप्त होता है. तदनंतर गुरुकी आज्ञाकर सबसे उत्कृष्ट पारिव्राज्य वा दिक्षा धारण कर तपकर स्वर्ग जाता है. वहां उसे इंद्रकी विभूति प्राप्त होती है तथा फिर वहांसे च्युत हो चक्रवर्ति साम्राज्य होता है. फिर अरहंत पदको प्राप्त होता है. और इस तरह अपनी पूर्ण महमा धारण कर अंतमें मुक्त होकर सिद्धपदको प्राप्त होता है.) समिक्षा. इस कथनानुस्वार एक

जीवके ही यह सप्त परमस्थान प्राप्त भये. इन सप्त परमस्थानोंकी अपेक्षासे एकही जीवके सज्जाति, सद्गृहित्व पारिव्राज्य, सुरेंद्र, साम्राज्य, परमर्हत, सिद्ध, ये सात नाम हुवे. जिस जीवको सज्जाति प्राप्त हुई तिसके ही सद्गृही आदि पट नाम हुये. और पट लिखे हुये महापुराणके नामोंका वाच्यार्थ एकही जीव हुवा. अब वक्ताकी इच्छा है के चाहे तो उस जीवको सद्गृही कहे, चाहे परिव्राज्यक कहे, चाहे सुरेंद्र कहे, चाहे चक्रवर्ती कहै, चाहे अर्हत कहै, चाहे सिद्ध कहै, श्रोताको इन पट् नामोंसे एक जीवकाही बोध होता है. तातैं सुरेंद्र शब्दका अरहंत अर्थ पूर्व पं. जीके लिखे हुवे महापुराणके दोनों श्लोकोंके प्रमाणसे सिद्ध हुवा. किंच कोई विद्वान यहां तर्क करैं कि द्रव्यार्थिक नयकी मुख्यता करके सुरेंद्र शब्दका अरहंत अर्थ तुमने सिद्ध किया. किंतु पारमार्थिक नयकी मुख्यता करके तो सुरेंद्र शब्द देवपर्याय विशेष्यकाही वाचक है सो पं. जी तो पर्यायार्थिक नयकी मुख्यता करके ही सुरेंद्र शब्दका देवपर्याय विशेष्य अर्थ कर रहे हैं सो निर्विवाद सिद्ध है.

उत्तरः—यह आपका कहना सत्य है किंतु यहां यह विचार करना है कि—पंडितजी सापेक्ष कथन कर रहे हैं. पं. जी निज पत्रिकाके सप्तम पृष्ठमें लिखते हैं. (इन सर्व आधारोंसे यह सिद्ध होता है कि—सुरेंद्र शब्द अरहंत अर्थका वाचक नहीं हैं. देवोंका इन्द्र वही सुरेंद्र है.) सो यह मिथ्यानेकांतकी प्रतिपादक पंक्ति है. क्योंके विपक्षका निपेध मिथ्यानेकांती ही करता है. सो पूर्वोक्त रिती करके द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे सुरेंद्र शब्दका अर्थ अर्हत निश्चय हुवा. और पर्यायार्थिक नयसे देव विशेष्य हुवा. फिर अरहंत अर्थका निपेध करके देव विशेष्यही प्रतिपादन किया सो मिथ्याही है. मिथ्या एकांत होनेसे किंच प्रश्न— सुरेंद्र शब्द द्रव्य वाचक है या पर्याय वाचक? उत्तर— वक्ताकी इच्छापर निरभर है, वक्ता द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे कथन करता है तहां द्रव्यवाचक है, जहां पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे कथन

करता है तहां पर्याय वाचक है. (प्रश्न) ऐसा कहनेसे शब्दकी शक्तिका अभाव भया?

उत्तरः— शब्दनयकी मुख्यता कर जब वक्ता कथन कर्ता है. तब योगिक शक्तिसे पदार्थ सिद्ध करता है. जब अर्थनयकी मुख्यता करके कथन करता है तब प्रमाणसे पदार्थ की सिद्धि कर्ता हैं. सो पं. जीने सुरेंद्र शब्दका अर्थ प्रमाणसे सिद्ध किया है तातैं अर्थनयकी मुख्यता हुई. सो प्रमाणसे भी आगम प्रमाण दिया है. प्रथम महापुराणके दो श्लोक अर्थ सहित निज पत्रिमें लिखे हैं. जिनके वक्ता भगवान श्री जिनसेनाचार्य हैं. जिनके वचनोंकी एक एक मात्रा जैनी मात्रको प्रमाण है. अब यह निश्चय करना है कि— श्रीजिनसेनाचार्य उक्त श्लोकोंमें द्रव्यनयकी मुख्यता करके कथन करते हैं या पर्याय नयकी मुख्यता करके? उक्त श्लोकोंमें भव्यात्मा यह पद है सो जीव द्रव्यकाही बोधक है. न के किसी पर्याय विशेष्यका. सो यह भव्यात्मा ऊंच जातीको प्राप्त होकर ऊंच जातिसे सद्ग्रही होता है. और गुरुकी अज्ञानुकूल परिवृज्य भावको साधन करके स्वर्गको जाता है. तहांतै चयकर चक्री होता है. फिर अरहंत पदकी समग्र महिमाको प्राप्त होकर निवृतिको प्राप्त होता है. इस प्रकार मनुष्यसे देव और देवसे फिर चक्रवर्ती मनुष्य फिर मोक्ष इस प्रकार अवस्थासे अवस्थांतर पर्यायसे पर्यायान्तर. और मोक्ष जीवद्रव्यकीही होती है. तातै द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासेही कथन है. यह निश्चय हुवा.

द्रव्यमेवार्थ प्रयोजनम् अस्यस द्रव्यार्थिकः। द्रव्यही है प्रयोजन जाका ऐसा जो वक्ताका वाक्य तथा अभिप्राय सो सज्जातिसे सद्गृहीत्व और सद्गृहीत्वसे परिव्राज्य यह मनुष्य पर्यायमें अवस्थासे अवस्थांतर है. और मनुष्यसे देव और देवसे फिर मनुष्य यह पर्यायसे पर्यायान्तर है, फिर मोक्ष. इस प्रकार जीव द्रव्यही परणमै है. इस प्रकारसे द्रव्यकेही प्रतिपादन करनेका वक्ताका अभिप्राय है. सोई द्रव्या-

र्थिक नय है. सो द्रव्यके प्रतिपादनकीही है. इच्छा जिसके ऐसा जो वक्ता है सो प्रथम द्रव्यका अनुभव करें है. सो अनंतपर्यायात्मक माहासतास्वरूप जीव द्रव्य जिस समय अनुभवका विषय होय है तिस समय एक जीवद्रव्यकी अनंत पर्यायोंमेंसे किसी एक पर्याय स्वरूप अवांतर सत्ता असतरूप प्रतिभास होय है. अनंत पर्यायात्मक सत्ता महासत्ता, और एक प्रर्यायात्मक सत्ता अवांतर सत्ता. सत्तासह प्रतिपक्षी इस वचनसे महासत्ता सतरूपा अवांतर सत्ता असत्तरूपा अवांतर सता सतरूपा माहासता सतरूपा यह जैनसिद्धांत प्रसिद्ध है. सो विद्वान विचार करें. जिस समय भगवान श्रीजिनसेनाचार्यको जीव द्रव्यके कथन करनेकी इच्छा हुई प्राक् माहासता स्वरूप जीवद्रव्य सत् अनुभव होता था. अवांतर सतास्वरूप पर्याय असत अनुभव होती थी क्योंके शब्दगोचर जो विशेष्य पदार्थ हैं सो विधि प्रतिषेध स्वरूप हैं. इस सिद्धांतके अनुकूल प्रमाण स्वरूप जो आचार्यका अनुभव तिसका विषय जो एक सत असतस्वरूप है. अनेकात्मक प्रमाणका अनुभव तिसका विषय जो एक जीव सत असतास्वरूप है. अनेकात्मक प्रमाणका विषय है. और अर्पितनयका एकात्मक विषय है. इस सिद्धांतके अनुकूल आचार्यने एक भव्य जीव पदार्थका द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे उक्त श्लोकोंमें सज्जात्यादि सप्त पदों करके महासत्ता स्वरूपही प्रतिपादन किया है. और जो कहोके सज्जाति आदि अवस्थांतर और देवादि पर्यायान्तरका प्रतिपादन किया है, तो सज्जाति सदगृहीत्व पारिव्राज्य सुरेंद्र साम्राज्य परमार्हत्य परमनिर्वाण ए सर्व शब्द खरविषाणवत् असत् स्वरूपके प्रतिपादक होनेसे अप्रमाणिक ठहरेंगे. तातैं उक्त भव्यात्मा आदि पदोंका एक जीवद्रव्यही अर्थ हुवा. और सुरेंद्र शब्दके निमित्ततै अवांतर सत्तास्वरूप इंद्र पर्यायको अनुभव कर्ते हुवे. पं० जी महासत्तास्वरूप जीव द्रव्यको असतस्वरूप अनुभव करें हैं. यह आगम प्रमाण सिद्ध है. सो निज अभिप्रायके प्रतिकूल अर्थके प्रतिपादन करने

वाले उक्त दोऽश्लोकोंका स्वपक्षकी पुष्टिके अर्थ प्रमाण देते हैं यह कितनी वडी भूल है ?

आगे पं० जी लिखते हैं. (यह सात परमस्थान अर्हतकी सेवा करनेवाले सम्यग्दृष्टिको प्राप्त होते हैं.) समिक्षा. पुर्वोक्त दोऽश्लोकोंका यह आशय है कि अर्हत वचनरूपी अमृतके आस्वादनसे देहधारी जीवोंको सप्त परमस्थान प्राप्त होते हैं. तिनमें— अर्हतवाक्यामृतास्वादात् इस पदका अर्थ तो पं. जीनें अर्हतकी सेवा किया. देहीनाम् पदका अर्थ सम्यग्दृष्टि कीया. सो यह अर्थ करके पं. जीने यह भाव व्यक्त किया है कि– ब्राह्मण क्षत्री वैश्य जो उत्तम जातिकी प्राप्ति शुद्र सम्यग्दृष्टिको होती है अर्हतोंकी सेवा करनेसे. क्योंके सेवा करना शुद्र जातिकाही धर्म है. किंतु यह निश्चय नहीं कियाके शुद्र सम्यग्दृष्टिके सप्तपरमस्थानोंकी इच्छा है या नहीं ? क्योंके शुद्र सम्यग्दृष्टि सेवाका फल जो सज्जातिपरस्थानोंको प्राप्त होकर शेष्य षटस्थानोंकी प्राप्तिके अर्थ पुजा कर्ता है. सो यह पूजा अर्हतकी कर्ता है या शासनदेवकी यह भी नियत नही की. पं. जीने लिखा है (सब क्रियावोंके लिये जो मंत्र कहे गये हैं उनमें षट् परमस्थानोंकी प्राप्ति होनेकेलिये जो पूजा करनेवाला इच्छा रखता है. उन षटस्थानोंकी इच्छा योग्य है. जिनरूपता धारण करनेकेलिये उत्तम जाति चाहिये, उत्तम जाति या वर्णवालोंसेही जिनरूपता अच्छी तरहसे धारण हो सक्ति है.) समिक्षा. जिनरूपता धारन करनेकेलिये उत्तम जाति है की इच्छा योग्य है सो उत्तम जाति जिसको प्राप्त हुई उसे षट स्थानोंकी इच्छा है. उसे जिनरूपता धारण करनी चाहिये. वो षट स्थानोंकी प्राप्तिके अर्थ पूजा करता है. पूजाका फल सप्तस्थानोंकी प्राप्ति है.

इस प्रकार संबंध रहित पं. जीके वाक्य हैं. सो निप्रयोजन सूते पुरुषके आलापके शब्दस अप्रमाणिक हैं. और पं. जीने जो उक्त श्लोंकोंका प्रमाण दिया है तिनमें कोनसे पदोंका यह अर्थ है की षट परमस्थानोंकी इच्छा करनी चाहिये ? प्रमाण तो अपने वचनोंकी पुष्टिके

अर्थही दिया जाता है. और पुष्टि जब होती है कि– प्रमाण वाक्योंके सदृशही अर्थके कहनेवाले अपने वचन हों. प्रमाण श्लोकोंका तो यह अर्थ है कि अर्हत वाक्यरूपी अमृतके आस्वादनसे संसारि जीवोंको सप्त-परमस्थानोंकी प्राप्ति होती है. सो वचनरूपी अमृतका आस्वादन करण इंद्रिद्वारा होता है. और सेवा या पूजा मनवचनकाययोगोंद्वारा होती है. सो कैसे उक्त श्लोकोंसे आपके वचनमें प्रमाणता हुई? क्या पं. जीके रसनामें ऐसा अतिशय है के जिसके स्पर्शमात्रसेही प्रमाण वाक्यमें मंत्रत्वशक्ति विशेष्य होति है? के जिसके उच्चारण मात्रसेही पं. जीके वचनोंमें प्रमाणता आती हो? जैसे के मंत्रत्वशक्तिके प्रभावसे मंत्र वाक्यों के उच्चारण मात्रसे ही विप उतर जाता है; व्याधि दूर हो जाति है. देव मनुष्य वशमें हो जाते हैं. इत्यादि अनेक कार्य सिद्ध होते हैं.

आगे पंडितजी लिखते हैं कि–सद्गृहीत्वअवस्थामें थोडे अंशमें जिनरूपतारहती है उसी मुजब चक्रीत्व इंद्रत्व अवस्थामेंभी थोडी जिन-रूपता रहती है. समिक्षा. जिनरूपता क्या होनी चाहिये? कर्मारातीन्-जयति इति जिनः। कर्मरूप शत्रूको जो जित रहा है सो जिन है. शब्द प्रवृतिनियमः भावः सो जिन शब्दकी प्रवृतिका नियम जो जयति कृपाका वाच्य आत्माका परिणाम भावनिर्जरा स्वरूप जिस जीवके पाइये हैं सो जिन है. और जिनस्यभाव जिनत्वम्. और सोइ आत्माका परिणाम जिनपदकी शक्यताका अवछेदक जिनत्व है. तातैं जिनपदकी शक्यता जिनत्व धर्मावछिन्न है सो सम्यग्दृष्टीही जिन है यह जैन मतमें प्रसिद्ध है. तातैं ऐसा प्रयोग हुवा सम्यग्दृष्टिरेवजिनः, सो इस वाक्यमें सम्यग्दृष्टिपर विशेपण है, और जिनपद विशेष्य है, एव पद अव्यय है, विशेपण संगत एवकारः अयोग्यावेवेछद बोधकः अयोग्य विवछेदोनामः शक्यतावछेदक सामानाधिकरण्याभावाप्रातियोगित्वम् अयोग्यविवछेदकत्वम् इति प्रकृतेः शक्यतावछेदकत्वम् जिनत्वम्। तत्सा-मानाधिकरण जो अभाव सप्तप्रकृतियोंका क्षयरूप अभाव तिसका प्रतियोगी सप्तप्रकृतियोंका समुदायअप्रातियोगि क्षायकसम्यक्त सो

जिसके पाइये है सोई क्षायकसम्यग्दृष्टि जीवही जिन है. यद्यपि सप्त-प्रकृतियोंके अभावकी अप्रतियोगिता सिद्धोंके विषें है, किंतु तिनमें जयति क्रिया नहीं है तातें जिन नहीं कहिये है. और जो क्षायक सम्यक्त है सो जिनरूपता है. सो जिनरूपता नाना जीव अपेक्षा तिर्यग् सामान्य रूप और एक जीव अपेक्षा उर्ध्वता सामान्यस्वरूप अव्रति गुणस्थान आदि अयोगी गुणस्थानके चरमसमय पर्यंत पाइये है. तातें एकादश गुणस्थानवर्ति जीव जिनपदके वाच्य हैं. और तेई सज्जाति आदि पट-स्थानवर्ति है. और इन सर्वस्थानोंमेंही जयति क्रिया प्रवर्ते हैं. किंतु परम निर्वाणस्वरूप जो सप्तम परमस्थान हैं तिसमें जयति क्रियाकी प्रवृत्ति नहीं है. तातें जिनपदका वाच्यभी नहीं है. सो सप्तप्रकृतियोंका क्षयरूप अभावका प्रतियोगी क्षायकसम्यक्तको थोडी घनी कहना अ-त्यंत भूल है. और क्षायोपशमसम्यक्त सदोष होनेसे क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टिको उपचार कर जिन कहेहैं. और उपशमसम्यक्तको अनित्य होनेसे उपशमसम्यग्दृष्टिकोभी उपचारकर जिन कहिये है. और कालिक देशिक पर अपर अल्प वहुत इत्यादि पदार्थ आपेक्षिक सिद्ध हैं. और क्षायकसम्यक्त स्वभाव सिद्ध है- सो पंडितजी जिनरूपता थोडी घनी बताकर जो पूजक पुज्य भावसिद्ध किया चाहते हैं सो क्षायकसम्यक्तकी अपेक्षासे अव्रत्तिसम्यग्दृष्टि पुजक नहीं होसक्ता और न अर्हत पुज्य होसक्ते. देखो तीर्थंकरभी सराग अवस्थामेंही सिद्धोंको नमस्कार करते हैं, अर्हंतकू नहीं करते. और अरहंतोमें पूज्यभाव सर्वज्ञ हितोपदेशक निर्दोष गुणोंकी अधिकता करकेही है सो शुभोपयोगी सम्यग्दृष्टीके पूजने योग्य हैं. और जो कहोके शुभोपयोगि तीर्थंकर अर्हंतोको क्यों नहीं नमस्कार करें ? उत्तर तीर्थंकर स्वयंबुद्धहैं. वर्तमानपर्यायसंबंधी उनका कोइ हितोपदेशक नहीं होसक्ता. इति अपूर्णम् ॥

द० बनवारीलाल, खेकडा (मेरठ)

शासनदेवता-चर्चा.

आगे पंडितजी लिखते हैं (गृहस्थका मुख्य कर्तव्य दानपूजा करनेका है. देवपूजा करनेवाला इन स्थानोंकी प्राप्ति होनेकी अभिलाषासेही पूजा करता है. और बालकोंके उपर संस्कार करतेवक्त उसको इस पटस्थानोंकी प्राप्तिहो ऐसेही आशीरवादात्मक मंत्रभी कहे हैं इत्यादि असंबंधित वाक्य प्रलाप करते पंडितजी लिखते हैं- सुरेंद्र शब्द अर्हंत वाचक नहीं है, देवोंका इंद्र वही सुरेंद्र है.

यह पंक्तिभी आपकी स्ववचनबाधित है क्योंके देवोंका इंद्र इस पदमें आपने स्वस्वामिसंबंधमें षष्टि विभक्तिके अर्थका वाचकका अक्षर लिखा है, और स्वपदकरके देवोंको ग्रहण किया है. स्वामिपदकरके इंद्रका ग्रहण है, सो देव इंद्र सामानिक त्रायस्त्रिंशत् आदि ३५प्रकारके हैं. तिनमें सुरगोंका इन्द्र तो देवकोटिमेंही आगया. तिन सर्वका स्वामि इन्द्र अर्हंतही हुवा. तातैं आपका लिखना सुरेंद्र शब्द अर्हंतका वाचक नहीं है, बाधित हुवा. सो प्रथम विवादस्थ इंद्रायस्वाहा इस मंत्रमें इंद्रपदका अर्थ क्या है सो जिन भव्यपुरुषोंके हृदयमें श्रीअर्हंतदेवकी भक्ति दृढ है तिनको इंद्रपदके श्रवणमात्रसेही अर्हंत अर्थका स्मरण होता है. और जिनके हृदयमें शासनदेवकी भक्ति दृढ है तिनको इंद्र शब्दके श्रवणमात्रसे स्वर्गोके इंद्रकाही स्मरण हो जाता है.

क्योंके संस्कारका उद्बोधकी स्मृतिका कारण कहा है. सो इंद्रत्वावछिन्न इंद्रपदकी शक्यता सामान्य अपेक्षासे जिनेंद्र सुरेंद्र दोनोंके ही विर्षे पाइये है.क्योंके इंद्रायस्वाहा इस उक्त मंत्रमें कोई जिन या स्वर विशेष्यबोधक पद नहीं है, तातैं भक्तिही कारण है। सो जिन भव्य जीवोंके हृदयमें अर्हंतकी भक्ति दृढ है तिनको इंद्रपदके श्रवणमात्रसेही अर्हंत अर्थका स्मरण होता है. तातैं वे अनेकांतवादि यथार्थ जैनधर्मके श्रद्धानी निश्चय होते हैं. क्योंके वे इंद्रपदका सुरेंद्र अर्थ नहीं है ऐसा

विपक्षका खंडन नहीं करते किंतु स्वपक्षका प्रतिपालन करते हैं. कि यहां पुजनके प्रकरणमें इंद्र शब्दका अर्हतही अर्थ करना चाहिये. क्योंके सर्वग्यहितोपदेशक निर्दोष अर्हत भगवानही है. तिनकीही दुष्कर्मोंकी शांति होनेके अर्थ अष्ट द्रव्योंसे पूजा करना योग्य है. और चतुरनिकाय के देवोंकेभी वेही इंद्र हैं. तातैं सुरेंद्र शब्दकाभी अर्हतही अर्थ करना योग्य है। यद्यपि विशेष्य अपेक्षा जिनेंद्र शब्द अर्हत वाचक है और सुरेंद्र शब्द सुर्गोंके इंद्रका वाचक है किंतु सामान्य अपेक्षा इंद्रपद तो दोनोंकाही वाचक है. इंद्रायस्वाहा इस मंत्रमें केवल इन्द्रपदका अर्थ सुरगोंका इन्द्रही है अर्हत अर्थ नहीं होसक्ता ऐसें विपक्षका निषेध करके निर्पेक्ष स्वपक्षको दृढ करनेवालेतो मिथ्या एकांतवादि होनेसे मिथ्या दृष्टिही है. और जो कहो कि यहां शासनदेवकी पूजाका प्रकरण है तातैं इंद्र शब्दका अर्थ हम सुरगोंका इंद्र करते हैं. यह सत् है किंतु इंद्र शब्दका अर्थ अर्हत नहीं होसक्ता यह निषेध करनेसे तो मिथ्या एकांत वादि होनेसे मिथ्यादृष्टिही होता है.

जो कहो कि सुरेंद्र शब्दका तो अर्थ सुरगोंका इंद्रही होता है. अर्हत नहीं होता. तिसका उत्तर–जिन शब्द सप्तप्रकृतियोंके क्षयसे व्यक्त भया जो तत्वार्थश्रद्धानस्वरूप जीवका निजस्वभाव क्षायकसम्यक्त जिसके पाइये है सो जिनपदका वाच्य सम्यग्दृष्टि जीव है. ते चारोंही गतिमें होय है. तिनमें जो सम्यग्दृष्टि सुर हैं ते जिनपदके वाच्य हैं;सो तिन सुरोंका जो इंद्र सो सुरेंद्र अर्हतही होसक्ता है. तातैं जे मोह कर्मके उदयसे आत्मस्वरूपको भूल रहे हैं. गतिनामा नामकर्मके उदयसे जिस पर्यायमें जाते हैं तिसपर्यायकोही आपा मान करके तिसमेंही रत रहते हैं. तिनकोही सुरेंद्र शब्द श्रवण मात्रसेही सुर राज्य अर्थका बोध होता है. सो यह कहते हैं कि सुरेंद्र शब्दका अर्थ सुरराजही है. और जो ऐसा कहते हैं कि–सुरेंद्र शब्दका अर्थ अर्हत नहीं होसक्ता उनके इस वचनसे यह निश्चय होता है कि, उनको प्रमाणनयनिक्षेपका ज्ञान नहीं.

क्योंके प्रमाणका विषय सामान्यविशेषात्मक वस्तु है. प्रकृतमें जीव नामावस्तु है. तिसका देवगतिमें सम्यक्तस्वरूप तो सामान्य और सुर पर्यायरूप विशेष्य है.

क्योंके सम्यक्त चारों गतिमें पाइये हैं तातें सामान्य है. और सुरपर्याय देव गतिमें है, तातें विशेष्य है. इस प्रकार सामान्य विशेषात्मक जीव नामा वस्तु जिनआगम प्रसिद्ध है. सोई आगम प्रमाणका विषय है. सो द्रव्यनिक्षेपकी अपेक्षासे सम्यक्त सामान्य ध्रौव्यस्वरूप उत्पादव्ययका आश्रय जीवद्रव्य द्रव्यार्थिक नयका विषय है. सो इस नयकी मुख्यता करके यह अर्थ हुवा सुराणांइन्द्रः अर्थात् सम्यग्दृष्टि सुराणाम् इन्द्रः सुरेंद्रः और सम्यग्दृष्टि सुर जिनपदके वाच्य है. तिन सुरोंका इन्द्र अर्हंत भगवानही है अन्य नहीं. तातें द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे सुरेंद्र शब्दका अर्थ अर्हंतही होता है. ऐसा माननेवाले सम्यग् एकांत वादि है. किंतु विपक्षका खंडन नहीं करते और पर्यायार्थिक नयकी मुख्यता करके देवगति नामा नामकर्मके उदयसे उत्पन्न भई आयु अंतमें विनसनेवाली जो पर्याय है सो सुर शब्दका वाच्य है. तिसकी वाच्यताका अवछेदक सुरत्व भाव जिनके पाइये है. ऐसे इंद्र सामानादि सवही देव सुरपदके वाच्य हैं तिन सर्वका जो इन्द्र है सो सुरेंद्र है. शब्दका अर्थ भी अर्हंतही हुवा, सो इस प्रकार अर्थ नयकी मुख्यता करके सुरेंद्र शब्दका अर्थ अर्हंतही होता है. किंतु शब्द नयकी मुख्यता करके जो सुरेंद्र शब्दकी यह व्युत्पति होती है सुराणाम् मध्ये यह इन्द्रः ससुरेंद्रः इस प्रकार व्युत्पति करनेसे सर्व सुरोंके मध्यमें जो कोई सुर विशेष्य है सो इन्द्र है. सुरेंद्रपदका अर्थ स्वर्राज्य हो सक्ता है. इस प्रकार सर्वनय प्रमाण है. सर्व नयका माननेवाला जिनआगमका श्रद्धानी सम्यग्दृष्टि है. और एक को मान अन्यको नहीं मानना ऐसा एकांतवादि मिथ्यादृष्टि है. तातें जो सुरेंद्र पदका अर्थ अर्हंत नहीं मानते सो मिथ्या एकांत वादि होनेसे मिथ्यादृष्टि ही है.

पंडितजी निजपत्रिकामें सप्तम पृष्ठपर यह लिखते हैं कि–सुरेंद्र शब्द अर्हतका वाचक नहीं है. देवोंका इन्द्र वही सुरेंद्र है आपने लिखा– सुरेंद्रमंत्रएषःस्यात्सुरेंद्रस्यानुतर्पणम् ॥ अर्थ–यह सुरेंद्रको तृप्त करनेवाला सुरेंद्रमंत्र कहा । समीक्षा. यह महापुराणके पर्व ४० श्लोक ५५ के दो पाद जो आपने प्रमाणदिये हैं इनमें जो तर्पणकी साथ अनु उपसर्ग है तिसका अनुकूल अर्थ होता है. तिसका आपने अर्थ किये विनाही अपने अभिप्रायका पोषक अर्थ किया है.

और पं० लालारामजीने जो महापुराणके भाषानुवादमें यहही अर्थ किया है. तातें आपका अभिप्राय यह है के दोचार विद्वानही संस्कृतके पाठी हमारे अनर्थको समझकर धिक्कार कहेंगे तो क्या हुवा ? किंतु सहस्रों जैनी हमारे इस भाषानुवादको वांचकर शासनदेवकीही पुजामें प्रवर्तने लग जायगें सो यह अभिप्राय स्वपरको नर्कगतिके बंधका कारन आपको त्यागने योग्य है.

देखो इस अर्ध श्लोकका यह अर्थ है–यह सुरेंद्रके अनुकूल तृप्ति करनेवाले सुरेंद्र मंत्र हैं. अर्थात् जैसे इंद्र इंद्रध्वज पूजा करके आनंदको प्राप्त होता है तैसेही आनंदको प्राप्त करनेवाले ये मंत्र हैं । और तातें इनको सुरेंद्रमंत्र कहिये है आगे आपने लिखा है—(इन सर्व मंत्रोंसे आहुति देना इसीका नाम तो सिद्धार्चन है) समिक्षा–एतैः सिद्धार्चनं कुर्यात् इस पादका यह अर्थ होता है कि– उक्त सर्व मंत्रों करके सिद्धोंका अर्चन करो. और आपने इसपादका यह अर्थ किया है कि–[इन सर्व मंत्रोंसे आहुति देना इसीका नाम तो सिद्धार्चन है] सो ऐसा लिखनेसे आपका यही अभिप्राय है के जैसा उक्त पादका अर्थ होता कि विलक्षण जो आपका यहही अभिप्राय है. तो महापुराणके सर्व मंत्रोंसे तो सिद्धोंकीही पूजा होती है तो फिर आप शासनदेवपूजा महापुराणके कोनसे श्लोकोंसे पुष्ट करते हो ? वे श्लोक क्यों नहीं लिखे सो लिखो कहांसे? महापुराणके किसीभी श्लोक या वाक्यका यह नहीं

अर्थ होता कि–शासनदेवकी पूजा करो, या करनी योग्य है. बल्के महापुराणमें शासनदेव यह शब्दभी दृष्टिगोचर नहीं है.

देखो निर्वाण कल्याणमें उपयोगी होनेसे अग्निको पवित्र माना है. सो आचार्य अपने मुखारविंदसे कितनी पुष्ठ करी है? इन तीनों अग्नियोंको वडे यत्नसे घरमें राखो, और किसी असंजमीको मांगी मतदो. क्योंके जैसे निर्वाणक्षेत्र और वहांकी रज और गंधोदकादिक यह जड पदार्थ अर्हंतोंके संबंधसे पवित्र माने जाते हैं। तैसे अर्हंतोंके शरीरको दग्ध करनेसे अग्निभी पवित्र मानी जाती है. इत्यादि। किंतु चैतन्य पदार्थ केवल अर्हंतोंके पास रहनेसे पूजा करनेसे तथा बचन श्रवणमात्रसे पवित्र या पूजनीक नहीं माने जाते. क्योंके जीवकी पवित्रताका अंतरंग कारण घातिकर्मोका क्षय है. कर्मोंके क्षय क्षयोपशम उपशम विना जीवमें किंचितभी पवित्रता नहीं होसक्ति श्रीअर्हंतादि बाह्य निमित्त कारण हैं और रागीद्वेषी हरीहरादि ज्ञानावर्णादि कर्मोके नोकर्म हैं. तातै जीवकी अशुद्धताकेही कारण है. सो रागीद्वेषी होनेसे आचार्यवर श्रीजिनसेन आचार्यने यह नहीं कहाकि–शासनदेव पूजनीय है या नहीं; पूजा करो या मत करो; और किसी विपक्षके विद्वाननेभी यह नहीं प्रगट किया कि–महापुराणमें ३८–३९–४० वें पर्वमें पूजाके प्रकरणमें अमुक श्लोकमें शासन देव पूजाका उपदेश दिया है, किंतु सर्व मंत्रोंके अर्थसेही खैंचातानी करके शासनदेवकी पूजा करना पुष्ट कर रहे हैं.

और मंत्रोंमें जो अभिधा लक्षणा व्यंजना शक्तियोंसे भिन्न एक मंत्रत्वशक्ति आगम सिद्ध है. तिसपर किसीका ध्यानही नहीं है. तिसकावरनन मैं आगे अपना अभिप्राय व्यक्त करते समय करूंगा. और जो आपका कोई विलक्षण अभिप्राय है तो यह ही है कि– पूजा तो सिद्धोंकी है. और अर्पण शासनदेवादिकोंका है. तो ऐसा असंबंधित अर्थ करके धोकाही देना है!

और आप जो अग्निन्द्रायस्वाहा इस मंत्रका यह अर्थ करते है

कि (हे अग्निकुमार देवोंके इंद्र तेरेलिये समर्पण) क्यो पं० जी जो पहले आपने लिखा है कि— इन मंत्रोंसे आहुति देना ही सिद्धार्चन है. सो यह अग्निकुमारेंद्रका अर्चन है या सिद्धार्चन है जो अग्निन्द्रायस्वाहा इसमें जो चतुर्थी विभक्तिका संप्रदान अर्थ किया है ? और स्वाहाशब्द-का वाच्य द्रव्य है. तिसको देवोंके अर्थ समर्पण करते हो या सिद्धोंके? क्या पं० जी ऐसे अर्थका अनर्थ करके जनताको भ्रममें डालनेसे आपको सुरगकी प्राप्ति नहीं होसकी. देखो इस मंत्रका अर्थ यह होता है अग्निद्राय इसमें तादर्थ्यमें चतुर्थी विभक्ति है तिसका यह अर्थ होता है. सर्व अग्नियोंके मध्यमें वोही अग्नि इन्द्र है जोके अर्हंतोंके निर्वाणकल्याण में उपयोगि होती है. जो के पूजा करते समय तीन कुंडोंमें स्थापितकी जाती है, जिसकी आचार्यवरने प्रशंसाकी है, सोई अग्निद्रका वाच्य है. तिसकी प्राप्तिके अर्थमें सिद्धोंकी पूजा करता हूं. यह अर्थ एतैःसिद्धार्च-नम् कुर्यात् इस पादके अनुकूल है. इसी तरह सर्व मंत्रोंमें तादर्थ्यमें चतुर्थी विभक्ति जानना.

सौधर्मायस्वाहा इस मंत्रमेंभी सौधर्म स्वर्गकी प्राप्तिके अर्थ में सिद्धोंकी पुजा करता हूं यहही अर्थ होता है। और श्रीमत गोमटसार-जीमें जीवत्व और भव्यत्व पारिणामिकभाव अयोगी गुणस्थानके परम-समयपर्यंत कहे हैं. और रत्नत्रयकी पूर्णता और परम यथाख्यातचारित्र, मनुष्यगतित्व, असिद्धत्व, उभय औदायिक भावका अभाव, और संसारका विच्छेद, चरम समयमेंही होते हैं, और मोक्षकी प्राप्तिभी अंत समयमेंही होती हैं. सो पंडितजी मेरीतो यहही प्रार्थना है के वादविवादको त्यागकर सिद्धांतोंकी स्वाध्याय करके आत्मकल्याण करनाही आपको या सर्वको योग्य है. "अलंविस्तरेण" और इसही शासनदेवचर्चापर एक लेख जैनमित्रके भादों वदी ९ के अंकमें अनेकांतवादि लोकनाथ मूडबद्रि वालोंकी तरफसे प्रकाशित हुवा है. तिसपर विचार आप लिखते हैं कि, (सबसे पहले इस बातको ध्यानमें रखनी चाहिये कि, जैनधर्म अने-

कांतात्मक है, इसमें कोईभी बात एकांत नहीं है.) आपके नामका विशेषण अनेकांति है किंतु "इसमें कोईभी बात एकांत नहीं है." यह आपका वाक्य आपको एकांतवादि मिथ्यादृष्टि सिद्ध करता है. क्योंके जैनमत अनेकांत और एकांतभी हैं. प्रमाण अपेक्षा अनेकांत और नय अपेक्षा एकांत है. आपका शुभस्थान मूडबद्रि है. तातैं स्ववचनबाधित वाक्य आप लिखतेहो सो आपको प्रथम अनेकांतस्वरूपका निश्चय करके जिनधर्मको सिद्ध करना चाहियेथा. अन्यथा अनेकांत शब्दका उच्चारण-भी आपके मुखसे शोभनीय नहीं है !

आप लिखते हैं कि- (श्रीराजवार्तिकजीमें अशरण अनुप्रेक्षाके कथनमें प्रतिपादन किया है. शरणंद्विविधम् लौकिकं लोकोत्तरम् च) समीक्षा. शास्त्रीने इस प्रमाणसे यह निश्चय किया है कि—राजा देवतादि लौकिक मार्ग होनेसे पुजनीक है किंतु श्रीराजवार्तिकजीमें आगे यहभी लिखा है कि— [दुर्गादिकम्] दुर्ग, गृह, वस्त्र, अन्न, पान, धन, संपदा, ग्राम, वैद्य, नगरादि जीवअजीव वस्तु लौकिक शरण हैं. तातैं सर्व पूज्य ठहरेंगे! ऐसा माननेसे आपमें और अन्य मिथ्यादृष्टियोंमे कुछ अंतर नहीं रहा? किंतु वहांही अनुप्रेक्षाके कथनमें जो यह कहा है—"मृत्यु-नानीयमानस्य सहस्रनयनादयोपि न शरणं इति" सो यह आपको दृष्टि-गोचर क्यों होता? यहतो इंद्रादिकोंके पुजनका निषेधक है.और जो आप कहे कि—निश्चयमें अर्हतादिभी शरण नहीं जीव अशरणही है.

उत्तर—शरणस्वरूप जो आत्मत्वभाव है. तिसकी हितोपदेश करके रक्षाकरनेवाले लोकोत्तर शरण अर्हत है. देव निर्ग्रंथ गुरु जैनसि-द्धांतही हैं तिनही की पूजा करना योग्य है. और जो देहादि पर प-दार्थोंकी रक्षाके कारण राजा देवादि नगर ग्राम दुर्गादि चेतन अचेतन पदार्थ जीवको आपा भुलाय संसारमें डबोवनेवाले लौकिक शरण हैं. तिनकी पूजा करके कोन बुद्धिमान संसारके कष्ट सहै? कोई नहीं. तातैं सम्यग्दृष्टि कि अपेक्षा अर्हत आदि पंचपरमेष्ठीही पूजनीक हैं. रागी-

द्वेषी चेतन नहीं; यह सम्यग् एकांत है. किंतु सर्वथा रागीद्वेषी हरिहरादि देव पूजनीकही नहीं ऐसा नहीं है.कथंचित रागीद्वेषी हरिहरादि देव लौकिक शरण होनेसे मिथ्या दृष्टियोंकी अपेक्षा पूजनीक भी हैं. ऐसा अनेकांत है.

अर्थात आप लौकिक शरण शासनदेवोंकी पूजा करके मिथ्या-दृष्टियोंकीही कोटिमें रहे. और लोकोत्तर अर्हंतादिकोंकी पूजा करने-वाले सम्यग्दृष्टियोंकी कोटिमें हुवे. आपके दिये हुवे श्रीराजवार्तिकके प्रमाणसे यह निश्चय हुवा.

और जो आपने लिखा है-(इस विषय सैंकडो उदाहरण जैन-सिद्धांतके संपादकजीने तथा अन्य अन्य माहाशयोंने भी सविस्तार दिये हैं.) समिक्षा. सो माहाशयजी शासनदेवकी पूजा करो इस मुख्य अर्थका प्रतिपादक वाक्य कोनसा? किस सिद्धांतका? किस माहाशयने? किस अखबारमें? किस पत्रकामें? प्रतिपादन किया है ? सो कृपा करके लिखयेगा. अथवा आपके पास मोजूद होहीगा सो भेजदिजियेगा. मैंने तो जितने लेख बांचे हैं सर्वमें यह ही देखनेमें आया है कि-प्रतिष्ठापाठके इस मंत्रसे उपलब्धि हो; श्री माहापुराणके इन मंत्रोंसे उपलब्धि होती है ऐसा कहीं किसीने नहीं लिखा. सव विद्वानोंने खैंचतानी करके लौ-किक शरणके अभिप्रायकोही पुष्ट किया है. तातैं सर्व मिथ्यात्वकोटिमेंही है.

और जो आपने श्लोक लिखा है.-(सर्वमेवहि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः यत्र सम्यक्त्व हानिर्न यत्र न व्रत दूषणमिति) इस श्लो-कके अनुकूल रागीद्वेषी देवोंकी पूजा करने करानेसे क्या आपकी स-म्यक्तमें दुषण नहीं आता है? क्या शासनदेव रागीद्वेषी नहीं हैं? क्या चतुर्थगुणस्थान वृतिसे अधिक कोई उनको गुणस्थान है? सो माहाराज जी प्रतिपादन किजियेगा. ॥ इति अपूर्णम्. ॥

तारीख २०।९।१९२२.

ह० बनवारीलाल, खेकडा (मेरठ)

उदासी और उदासीनआश्रम क्या है ?

पाठक महानुभाव कतिपय आधुनिक पंडितोंने निर्माल्य भक्षणमें दोष नहीं; शासन (व्यंतरादि) देवोंको अवश्य पूजना चाहिये; जो निषेध करे वह मिथ्यादृष्टि; भट्टारक (सग्रंथ) गुरु माननेवाले (वीसपंथी) सम्यग्दृष्टि हैं; तेरहपंथ महापापके भागी है; हिंदू और जैनियोंमें सामाजिक आचारविचार पहले सब एकसे थे फरक था तो केवल मूलतत्वोंमें; भट्टारकोंकृतत्रिवर्णाचारादि ग्रंथही प्रमाणिक हैं. (जिनमें गौ आदि १० कुदान देना बताया है, तिरपन क्रिया करना, मृतकोंका श्राद्ध करना कहा है) यही आर्षग्रंथ है.

अब धर्मगुरु-वस्त्रधारी भट्टारकोंकी बडी आवश्यकता है ! निर्माल्य भक्षण करनेवाले, श्रीजिनेंद्रके ऊपर तेलका अभिषेक आम्रादिक फलोंके रस व फलोंका अभिषेक, चना, मूंग अरहड आदिकी दालोंका अभिषेक मुसलमानादिके घरोंका पानीमिलाहुआ अमर्यादित दुग्धका अभिषेक; अशुचिस्थानमार्ग आदिसे आयाहुआ भात (पके चावल) आदि द्रव्योंसे पूजन करनेवाले ऐसे दक्षणकर्नाटक तरफके उपाध्यायब्राह्मणोंकेविना इस उत्तर हिंदुस्थान (राजपुताना दिल्ली आदि मध्यदेश) में जिनेंद्र पूजनकी बडी दुर्दशा है ! अष्टद्रव्यसे पूजन करनेसे नमस्कारका महत्व घटा है. [जो राजा माता पिता बडाभाई आदिकोभी नमस्कार करते हैं) ये भट्टारकही आचार्य ऋषि हैं इनोंके कहे शास्त्रोंको नहीं मानना मिथ्यात्व है. पंचामृताभिषेक, चरणोंपर केशर चढाना, त्रसयुक्त पुष्प चढाना शास्त्रोक्त है. इत्यादिक जनशासनके विरुद्ध अनेक बातें जैनसिद्धांत, व खंडेलवालजैनहितेच्छुआदि पत्रोंमें आंदोलन करके सच्चे श्रद्धानियोंका श्रद्धान बिगाडने,वा शिथल वा संशयरूप करनेमें बडी २ कुयुक्तियां लगाईजारही हैं.

ऐसा देख मैंने विचारा कि–धर्ममार्गका चलनेका अवलंबन पंडित और त्यागी [ब्रह्मचारी क्षुल्लक ऐलक मुनि आदि] योंपरही निर्भर होता है; सो त्यागियोंमें तो कोई २ ने यहांतक शिथिलाचार बढाया कि, मद्यमांसादिके अतिचार रहित शुद्ध भोजन कि जिसके विना पहलभी प्रतिमा नहीं होती सो वाजे २ मुनियोंतकमें लनेलगगए. जो ग्यारमी प्रतिमाका खास उद्देश और सार्थक नाम हैं; उदिष्टाहार त्याग तथा मुनियोंके ४६ दोषोंमें प्रथमही दोष उद्दिष्टाहार है सोही लेने लगगए अन्य आहार तो दूरकिनार! किंतु जलभीतो गृहस्थोंके घर विना उद्देशके मिलनाही कठिन है! जब जलादिक उष्ण मुनियोंके निमित्त किया गया तब २८ मूलगुणमें प्रथम और महाव्रतमें प्रथम अहिंसामहाव्रतही कैसे रहसकता? ऐसेही जो अन्य मतियोंके दंडी संन्यासी आदि भेषियोंकेसा भेष भगवा वस्त्रोंकाधारण जो किसीभी दिगम्बर जैनग्रंथोंमें ब्रह्मचारी सप्तमादि धारियोंको धारन करनेकों नहीं कहा वह भेष स्वमत परमतियोंके मानने पूजने और अपने मानकी रक्षाके अर्थ धारण किए है. जिससे कि अन्यमतका भेष पूजनेका गाढ मिथ्यात्व है.

इसही तरहसे उपरोक्त अनाचारोंका [शासनदेवपूजा आदिका] बीजवोनेवालेकतिपय पंडितगण हैं सो जो पंडित और त्यागीयोंहीने धर्मको गिराना चाहा; तब बताओ धर्म कैसे टिकेगा? जब रक्षकही भक्षक बनजाय, माताही पुत्रको खाजाय तब कहो रक्षा कैसे होसकती है? परंतु दैव बडा बलवान होता है. एक दृष्टांत है कि– चिडवा (पक्षी) एक वृक्षपर बैठाथा सो ऊपरसे उसको खानेको एक बाज (सिचान) आया और दूसरी तरफसे एक सिकारीने उसको मारनेको बान साध्या; वृक्षके नीचे एक बंबी थी उसमेंसे एक सर्पने मुख निकाला. ऐसी अवस्थामें वह पक्षीके प्राण कभी बचसकते हैं? अर्थात् ऊपर उडकर जाता है तो बाज भक्षण करता है, नीचें आता है तो सर्प डसेगा और वहीं बैठारहे तो पारधीके बाणसे घाता जाता है. परंतु किसी कवीने कहा है कि–, जि.

सको रक्खे साहीयां (देव) मार नसके कोय ॥ बाळ न बांका करसके जो जगवैरी होय ॥ सो क्याहुआकि— सर्प बंबीमेंसे निकलकर पारधी को डसा सो वह गिरपडा उस्के हाथमेंसे बान छूटा सो बाजके लगा सो बाज मरा और बान पीछा नीचे आकर सर्पके ऊपर पडा सो सर्पभी मरगया अर्थात् चिडवाके घातक तीनों ही आपसमें घातकरके मरगए और चिडवा वचगया.

इसहीतरहसे धर्म पंचमकालतक रहना है हालही डूबना नहीं है परंतु कलिकाल है इस्के घातक हमेशां [सदा] होतेही रहते हैं. देखिए-प्रथम तो श्रीआदिनाथस्वामीके समय श्रीआदीश्वरका पोता (नाती) हीने ३६३ पाखंड चलाए. फिर वैदिकधर्म पर्वत और काला सुरने चलाकर यज्ञोंमें पशु आदि हिंसा चलाई; फिर महावीर स्वामीका मोसाका बेटा पोता मस्तकपूरने मुसलमानी धर्म चलाया, फिर अर्द्ध-फाल श्वेताम्बरी ढूंढिया आदि भए, फिर काष्ठासंघ तारनपंथ [समैया] तथा शंकराचार्य हुए तथा केई बादशाह हुए जिनोंने धर्मोका विध्वंस किया. फिर भट्टारक हुए इन्होंने धर्ममें विपरीतता चलाई अर्थात् कुदेव पूजा, परीग्रहधारी गुरु आदिकी प्रवृत्ति करी इत्यादि बहुतसे हुए.

वर्तमानमें अन्यमतमें ब्रह्मसमाज आर्यसमाजादि अनेक मत प्रगट हुए और जैनमतमेंभी कुछ २ अंग्रेजी पढे तथा उनकी संगतिसे अन्यसंस्कृतज्ञोंनेभी आचारधर्म (चारित्र) को डबोना चाहा है.इत्यादिक तो बहुतही जनोंने अपने कर्तव्य किए. किंतु जैनधर्म इतनी २ आपत्तियां भोगते हुए अभीतक टिक रहा है. किंतु अब बाम (अस्तीनो) में सर्प घुसगया तब कैसे बच सके? इसमाफक त्यागी और पंडितोंकी कृतिसे जिनधर्म बचना कठिन है. परंतु जैसे तिन लोगोंकी घातसे चिडवा बच गया तैसेही पंचमकालके अंततक जैनधर्म बचेहीगा. ऐसा विचार करही मैंने कुछ साहस किया. यद्यपि मैं इन पंडित और त्यागिओंके सामने ऐसा हो जैसे (हाथी) के पावके नीचे १ चींटी. पंडितोंकी

तो कुयुक्तियोंका समूह और त्यागियोंके भोले भक्तोंके वाक्प्रहारोंसे कुच लगजाऊंगा परंतु क्या किया जाय डूबतेको एक छोटीसी लकडी काभी सहाय बहुत होता है. बस ऐसाही विचार करके कि– जे शिथलाचारी हैं वे तो शिथल होवेहीगे; किंतु जे श्रद्धानी हैं उनके श्रद्धान कदाचित संशयरूप होवे तो थोडा बहुत मेरे वाक्योंसे उनोंको सहारा मिल जाय तो अच्छा है. परंतु पहलेमें साधारण तोरसे लिखता रहा तब तो कुछ नहीं. परंतु जब 'खंडेलवालजैनहितेच्छु' जिसको मै पुरा धर्मका रक्षक समझताथा और इसके सम्पादक महाशय जब इंदोरमें थे तब ऐसे विचार मुझे विदित इनके नहीं हुए, और मै जानताथा कि– इनोंसे शुद्ध दिगम्बर आम्नायका अच्छा पोषण होवेगा. परंतु बंबईमें जाकर न जाने क्या हुआ? न जाने वह म्लेच्छ देशोंके समान वह नगर है जिससे उसमें रहनेसेही पंडितजीके विचार बदलगए हो!

सो जब वे शासनदेवपूजा आदिमें बहुत ऊंचे चढे तब मैने पांच सात लेख बडे २ लंबे चौडे लिखें. उनमेंसे दो तीनही लेख जैनमित्रमें कुछ काट छाटकर प्रकाशित किए; बाकीके योंही पडे होंगे स्यात् अब धीरे २ सम्पादकजी प्रकाशित करें या नहीं करें! परंतु एक लेख 'वॉलिस्टरी पंडिताईका' और दूसरा 'रक्षक भक्षक बनगए' का प्रकाशित होनेसे प्रतिपक्षीगण अब मेरे ऊपर टूट पडे हैं, प्रगटमें तो उनका कहना है कि– हमपक्षपात नहीं करते किंतु वस्तुत्व सिद्ध करना चाहते हैं. परंतु जो पक्षपात रहित होता है वह क्रुद्धित होकर यद्वातद्वा नहीं बोलता है; वे पंडित मुझसे क्या क्या पूछते हैं? और क्या क्या कहते हैं? सो उनका दिग्दर्शन इस प्रकार है–

प्रथम तो पंडित अजितकुमारजी शास्त्रीने एक लेख 'खंडेलवाल जैनहितेच्छु अंक १५।१६, पृष्ट ३७ में 'गोधाजी और विद्वत्समाज' इस नामका प्रगट किया है. जिस्के उत्तरका लेख मैने जैनमित्रमें प्रकाशनार्थ भेजा है. सो जब कभी सम्पादकजी प्रकाशित करेंगे तब पाठकोंके देख-

नेमें आवेगा किंतु उसमें जो मेरेऊपर आक्षेप और प्रश्न किए हैं उन्हीका संक्षेप लिखता हूं. शास्त्रीजी लिखते हैं—आपका अद्भुत (उदासीन) रूप हम किसी प्रकार सिद्ध नहीं करसकते. इस विषयमें हमारा दिमाग अशक्त है. इतनी कृपा अवश्य कीजिए कि—आपकी उदासीनता किस ग्रंथके आधारसे है? तथा उदासीनका अर्थ सिद्धपरमेष्ठी करके अपनी पूजा अष्टद्रव्यसे करालेंगे इत्यादि.

खं० जैनहितेच्छु अंक २०, पृष्ठ ९ में पं० अजितकुमार शास्त्रीजीनें फिर मेरेसे प्रश्न किया है कि— दिगम्बर जैनआर्षशास्त्रोंमें चार आश्रम बतलाए गए हैं. ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास. इन चारों आश्रमोंमेंसे आप किस आश्रममें हैं? क्यों कि हमको अनेक शास्त्र देखनेपर आपका उदासीनरूप कहीं नहीं मिला है; इत्यादि.

खं. जै. हितेच्छु अंक २१, पृष्ट १८ 'सम्पादकीय अनुमननमें द्वितीय सहायता' नामक लेख संपादकीय अनुमननमें लिखा है कि द्वितीय पुष्टि मित्रके ३९ वे अंकमें पन्नालाल गोधाके तरफसे हुई कि—विधवा विवाह आदिका उतना दोष नहीं मानते जितना कि अर्हंतादिक सिवाय अन्य देवोंकी पूजाका दोष समझते हैं. पाठक वर्ग गोधाजीने अंशतः क्या विधवा विवाहको अच्छा नहीं समझा क्या? इस वाक्यसे क्या सुधारकोंको सहायता नहीं दी है क्या ? अब आप विधवा विवाह को शुरु कराइए। आदि शब्दसे स्पर्शा स्पर्शकाभी इत्यादि.

फिर 'मस्तरामकी मस्ती' नामक लेखमें लिखा कि,—प्राचीन समय में वसुराजाका सिंहासन आकाशमें निरालंब विराजमान था; किंतु अजै-र्यष्टव्यम् इस वाक्यका अनर्थ करनेसे उसका वह उच्च सिंहासन धरा-तलशायी होगया. एवमेव आजकल पन्नालाल गोधाका उदासीननाम। सिंहपीठभी निरालंब है क्योंकि जैनधर्ममें बतलाए हुए चार आश्रमोंमें-से यह उदासीन किसीभी आश्रममें नहीं है, अत एव निराधार है. और नियमानुसार आपके सन्मुख 'इन्द्रायस्वाहा' वाक्यका क्या अर्थ है ? यह

प्रश्नभी उपस्थित हुआ है. देखें आपका आखरी उत्तर क्या है और प्रकृतीका अंतिम फैसला कैसा है.

अब मैं उपरोक्त वातोंका उत्तर तो आगे चलकर लिखुंगा किंतु यहां पाठकोंको यह दिखाता हूं कि–जो जो प्रतिपक्षी पंडितोंके तरफसे लेख चल रहे हैं वे केवल वस्तुत्व निर्णयके अर्थ है या अपनी वचन पक्ष पुष्ट करनेहीके अर्थ है? यों तो पाठकगण दुतरफा लेखोंके अवलो-कनसेही जानगए होंगे तो भी मैं और स्पष्ट करे देताहूं कि येही खुद लिखते हैं कि–शासनदेवोंको नहीं पूजेतो कोहीभी जैनधर्मका हर्ज नहीं है. और वास्तवमेंभी ऐसेही है कि इनोंके [शासनदेवोंके] पूज-नेसे न तो मोक्षमार्गकी सिद्धीही है. और नहीं पूजनेसे न हानीही है.

परंतु यह केवल वितंडावाद खडाहुआ है इससे सिद्ध हुआ कि केवल वचनकी पक्ष है. कदाचित् कोई हमसेही कहे कि यह खाली वितं-डावादमें तुम क्यों पडेसो इसका उत्तर यह है कि इस वितंडा वादमें हमने मोक्षमार्गमें अत्यंत हानी समझी है. क्योंकि शास्त्रोंने देवगुरुशास्त्रों के सिवाय मोक्षमार्गमें पूज्य नहीं कहा है. किंतु इसके विपरीत महान् तीव्रमिथ्यात्व कह रहे हैं. इसवास्ते भव्यजीवोंका श्रद्धान इन विपक्षी पंडितोंके लेखोंसे नहीं विचलित होवे यही हमारा उद्देश लिखनेका है.

दूसरें वचनपक्ष उनकी यह प्रत्यक्ष देखो कि–जब हमारे लेखोंसे शासनदेवोंकी पूजाका खंडन जोरके साथ होने लगा. तब ए पंडित घबडाकर मेरे ऊपर टूट पडे. नहीं तो क्या कारण है कि–इस उदासीन आश्रमको स्थापित हूए १० दशवर्षके अंदाज होनेको आया किंतु अभीतक किसी पंडितोंने उदासीनआश्रम होनेमें दोष नहीं बताया ? दोष तो क्या किंतु प्रशंसाही की है; और इन्होंनेही तो क्या किंतु इनोंके गुरु-ओंनेभी तो प्रशंसाकीथी और होनेके वास्ते सहायताभी अच्छी दीथी! फिर क्या कारण है कि अब इन पंडितोंको उदासीन आश्रममें दोष दीख पडा? और क्या एक यह इंदोरकाही उदासनि आश्रम है? इसके कुछेक

दिन पहलेका कुंडलपुरकाभीतो आश्रम है. इसका निषेध आपने क्यों नहीं किया? दूसरे आश्रमका मूलकर्ता मै नही हूं किंतु मूलकर्ता ब्र० गोकुलप्रसादजी हैं. उन्हीका उपदेश तथा उनके देखादेखी यहांके शेठोंने यह आश्रम स्थापन किया है. और इस्के प्रथम अधिष्ठाताभी श्रीमान् स्वर्गीय मास्तर दरयायसिंहजी थे मै तो पीछे आयाहूं. परंतु ब्रह्मचारी गोकुलप्रसादजी आदिसे अंततक अभी उदासीन आश्रमके धाता विधाता विद्यमान हैं इन पंडितोंने उनपर आक्षेप क्यों नहीं किया!

तथा औरभी सुनिए जब ये पंडित कहते हैं कि—चार आश्रमोंमेंसे किसीभी आश्रममें उदासीन आश्रम नहीं है केवल निराधार है.तो हम उनसे यहभी पूछते हैं कि चार पांच श्रावकाश्रम, महिलाश्रम, वीरबालाश्रमादिभी बहुत वर्षोंसे चले हैं. सो उनोंसे क्यों नहीं पूछा कि एभी चार आश्रमोंमेंसे कौनसा आश्रम है? अथवा उन चार आश्रमोंमेंसे पृथक् ए आश्रम कौन २ ग्रंथोंके आधारसे बनाए गए हैं? सो अभीतक किसी पंडित महाशयजीको नहीं पुछा केवल मुझसेही पुछते हैं! इससे स्पष्ट प्रगट होता है कि—शासनदेवपूजाके खंडनके लेख लिखनेसे मेरेही ऊपर टूट पडे हैं. इसवास्ते सिद्ध है कि सब प्रतिपक्षी पंडितगण मेरे ऊपर क्रुद्धहोकर वचनप्रहार करते हैं; सो मुझे तो कुछपरवाह नहीं है. मुझे तो बुरी भली कोही कुछ कहलो कुछ परवाह नहीं. परंतु अन्यश्रद्धानियोंको संशय उत्पन्न नहो इसवास्ते लिखना पडता है. अब मै ऊपर लिखे हुए प्रतिपक्षियोंके आक्षेप और प्रश्नोंका उत्तर लिखताहूं.—

प्रथम जो पं० अजितकुमारशास्त्रीजीके आक्षेप और प्रश्नका उत्तर यह है कि—उदासीनश्रावक यह शब्द प्रसिद्ध है जो कोई धर्मात्मा संसारसे विरक्त रहकर त्याग मर्याद अपनी शक्ति प्रमाणकरके धर्म साधन करता है उस्कोही उदासीनश्रावक कहते है. यह रिवाज आजसे तीस चालीस वर्ष पहले प्रचूरतासेथा एक समय सं० १९४८ की सालमें मै मुगावली गयाथा वहांपर पं० शांतिलालजी आगरेवाले जो की

पदमचंदजीके पिता मथुरादासजीके बडे भाई थे वे अछे पंडित थे उन्होंने मेरा अत्तर पानसे सत्कार किया. किंतु मैने स्वीकार नहीं किया क्योंकि उस दिन अत्तर तो मेरे १७ नियमोंमें मैने रक्खा नहीं था और पत्र मात्र हरी वनस्पतीके भक्षणका मेरे त्यागथा; सो उसी समयसे वे मुझे उदासीन श्रावकके नामसे संबोधन करने लगेथे. सो यह तो हुई परंपराय मार्गकी प्रमाणता.

अब आपको यदि शास्त्राधारही होना हो तो श्रीभावदीपकमें देख लीजिए-भावदीपक क्षयोपशम भावाधिकारमें क्षयोपशम सम्यक्त भावमें पाक्षिकश्रावक दानप्रकरणमें पात्रोंके ९ भेदोंमें जघन्य पात्रमें उत्कृष्टपात्र उदासीनश्रावक कहा है. तथा इससे आगे प्रथम प्रतिमा-धारीके वर्णनमें परिग्रह प्रमाणके विशेषमें आरंभपरिग्रह घटाते घटाते प्रथम प्रतिमाका उत्कृष्ट पद जो आरंभपरिग्रह कुटुंबादि छोड होय तिष्टे तहांपर्यंत है। ऐसा शास्त्रोक्त प्रमाण है अर्थात मिली सामग्रीमें संतोष है तातै पाई सामग्रीमें घटाय संतोपधारना ऐसा देशव्रती दर्शनीक श्रावक उदासीनका स्वरूप है. इत्यादिक बहुतसा वर्णन लिखा है.

परंतु वर्तमानके कोई २ पंडित महाशय ऐसाभी कह बेठते हैं कि– हम भाषा ग्रंथोंका प्रमाण नहीं मानते संस्कृत ग्रंथोंका प्रमाण दो? क्योंकि पूर्वके पंडित टोडरमलजी जयचंदजी आदिमें वर्तमान पंडितोंके समान विद्या व अनुभव व चारित्र व हटाग्रहता रहितपना व सूत्र विरुद्ध [अर्थात परिग्रहधारी गुरु भट्टारकादि के रचे ग्रंथोंके विरुद्ध] वचन रहित आदिगुण उनमें नहीं थे इत्यादि कहे

इसके वास्ते छोटासा प्रमाण यह है – पद्मपुराण इस समय यहां मेरे पास संस्कृतप्रति नहीं है सो पाठकगण देख लेवेंगे और भाषावाले भाषा देखलिवेंगे; क्योंकि भाषाग्रंथभी संस्कृतग्रंथके अनुसार ही लिखा है तथा बहुतसे महाशयोंने पद्मपुराणकी स्वाध्यायभी करी है उनोंकोभी याद होवेहीगा. मैं पता बताय देताहूं कि–जिस समय रावणने

राजा इंद्रको युद्धमें पकडकर वांध लिया था उस समय राजा इंद्रका पिता सहस्रार जो उदासीनश्रावक था वह इंद्रको छुडानेकी गरजसे रावणके पास गया तव रावण सिंहासनसे उत्तर सहस्रारका वडा विनय करके सिंहासनपर बैठाया; और कहा— आप उदासीनश्रावक है हमारे पूज्य है;आप जो आज्ञा करें वह मुझे स्वीकार है. इत्यादि कहा है। सो संशय होय तो ग्रंथ निकालकर पाठकगण देखलें.

अव पं० अजितकुमारजीसे प्रार्थना है कि— अव आप आपना दिमाग जो आशक्त होगया है सो ग्रंथोंको देखकर शक्तिशालीवना लीजिए और जो उदासीनका अर्थ सिद्धपरमेष्टी वनाकर उदासियोंकी पूजा करनेको हमको उपदेश किया सो यह श्रेय आपको या आपसारिखे-नकोही रहे जो अपूज्योंको पूज्य मानते हैं; हम लोग अज्ञानी अर्हता-दिक जो पूज्य हैं उनहीको अष्टद्रव्यसे पूजते हैं अन्योंको नहीं.

तथा दूसरी प्रार्थना औरभी आपसे है कि— आप आपनेको सर्वज्ञ मानते हैं क्योंकि आप लिखते हैं कि—हमने अनेक शास्त्र देखें परंतु आपका अद्भूत उदासीनरूप हमको कहीं नहीं मिला. सो महाशय इतना भारी अभिमान छोड दे; जो आपने अनेक शास्त्र अपने केवलज्ञानसे देख डाले परंतु जो पद्मपुराण जिसकों कि—जैनियोंके छोटे २ वालकोंने वाचा है वह ग्रंथ आपके ज्ञानसे अलग कहा रहगया सो कृपया देखलें. उपरोक्त इस आपके लेखका उत्तर मैंने अपने एक लेख पहले दिया है सामान्यतासे जिस्को कोई देड दो महिना होगे. और वह लेख अभी-तक जैनमित्रमें प्रकाशित नहीं हुवा इसवास्ते इस लेखमें फिर दिया है.

२ दूसरा प्रश्न शास्त्रीजीका कि— चार आश्रमोंमेंसे कौनसे आश्रममें आप हैं? हमको उदासीनरूप अनेक शास्त्रोंको देखनेपर कहीं नहीं मिला इस्का उत्तर— उदासीनका तो ऊपर होही चुका अव आश्रम पूछते है सो ९ नवमी प्रतिमातक गृहस्थाश्रम कहा है कदाचित मेरे लिखनेसे संतोष नहीं होवे तो चारित्रसार आदि ग्रंथोंमें देख लेना. नहीं मिले तव फिर

मुझसे पूछना और हम जब ७ सातमी प्रतिमा तकके अभ्यासी पाक्षिक है तो गृहस्थाश्रममेंही गिन लिजिए कदाचित कहोगे कि- जब तुमने गृह और स्त्री छोडदी तब गृहस्थ कैसे रहें ?

इसका उत्तर यह है कि-धर्म दो प्रकार शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है; एक तो मुनिधर्म दूसरा गृहस्थधर्म. गृहस्थधर्मके ११ ग्यारा प्रतिमारूप धर्म अर्थात् ७ सातमें प्रतिमासेही स्त्री छूट जाती है और यह प्रथम प्रतिमासेभी छोड सकता है. परंतु ११ ग्यारमी प्रतिमातकवालेको गृहस्थधर्मी शास्त्रोंमें कहा है इसही तरह हम लोगभी घर स्त्री राहित हैं; तोभी मुनिधर्मका नहीं पालनेसे गृहस्थधर्मके पालनेवाले गृहस्थाश्रमी हैं. तीसरे जो तीसरा आश्रम वानप्रस्थ है वह वनमें रहनेवाले क्षुल्लक ऐल्लक हैं. और प्रथम आश्रमके व्रत हैं सो विद्याभ्यासी हैं और वह गृहस्थाश्रमसेनीच दरजेका है सो उस्में हम नहीं. इसवास्ते दूसरा आश्रमही मानना चाहिये. चौथी बात यह है कि- इस समयमें आश्रमोंकी प्रवृत्तीभी नहीं रही; इनके पुरे भेदोंके ग्रंथभी नहीं देखे. आश्चर्य है कि-आपने संपूर्ण शास्त्र देखडाले यह आश्रम आपको कहीं नहीं पाया! स्यात् स्वप्नमेंही अनेक शास्त्रोंका आपने अवलोकन किया होगा !

३ तीसरा आक्षेप सम्पादक जैनहितेच्छुका मेरे ऊपर यह है कि मैंने यह लिखाथा कि-कुदेवादिक (शासनदेवादिक) के पूजनेमें महा मिथ्यात्व है; जो कि-दर्शनमोहके उदयसे होता है। और विधवा विवाहका कारण-चारित्रमोहका उदय है; इस अपेक्षा विधवाविवाहसे कुदेवोंके पूजनेमें महापाप है. [बृहद्द्रव्यसंग्रह और अनगारधर्मामृतमें शासनदेवोंको कुदेव कहा है.] रत्नकरंड श्रा० में कहा है कि-सम्यक्तके समान तो तीनलोक व तीनकालमें श्रेय नहीं; और मिथ्यात्व समान [अश्रेय] अकल्याण नहीं। ऐसा लिखनेपर संपादक खं. जै. हि. मुझे विधवाविवाहका पोषक बताते हैं. सो आश्चर्य है! जब दोनोंमेंही पाप बताया तो केवल समानताकी हीनाधिकता कहनेसे- पोषक कभी

कहा जासकता है? जैसे चमारसे भंगी (चांडाल) जादे अस्पृश हो ता हैं. ऐसा कहनेसे क्या ऐसा माना जाता है कि-चमारका स्पर्श करना श्रेष्ठ है? तैसेही यह कहना कि-विधवाविवाह (व्यभिचार) से मिथ्यात्व (कुदेवके पूजन) में जादे पाप हैं. इससे क्या विधवाविवाह अच्छा माना जाय? वाहवा धन्य है आपके तीक्ष्ण बुद्धिको ?

पाठक विचारें कि-यद्यपि हिंसादिक पांच बडे भारी पाप हैं तो भी क्या मिथ्यात्वके पापकी बराबरी पांचों पापोंमेंसे कोईभी कर सकता है? एकतो क्या किंतु पांचों पापोंका पाप एकत्र करके और उसको अनंतगुण करे तोभी एक मिथ्यात्वके पापके बराबरी नहीं करसकता. तब अकेला परस्त्री सेवनकाही पाप क्या मिथ्यात्वकी बराबरी करसकता है? यद्यपि हिंसादिक पंच पापोंमें कुशीलका पाप चाहे जो होय परंतु तोभी मिथ्यात्वकी बराबर नहीं; किंतु है पापही. ऐसे पाप बतानेपर विधवा विवाहको सहायता देना बताना आश्चर्य है! इसीहीको तो पक्षपात कहते हैं अर्थात् पक्षपातके वश होकर मनुष्यको योग्य अयोग्य बोलनेमें विचारही नहीं रहता !

४ चौथा आक्षेप यहांके उदासीनाश्रमपर है कि- यह निराधार वसु राजाके सिंहासन समान है; क्योंकि यह आश्रम चार आश्रमोंमेंसे किसीभी आश्रममें नहीं है. इत्यादि सो इसके उत्तरमें मै संपादक हितेच्छुजीसे पूछताहूं कि-पहलेके जमाने (चोथे काल) में अथवा आधुनिक समयमेंभी आप बता सकते हैं कि-चारों आश्रमोंके स्थान कहां कहां थे? और अब हैं? हां अलबत इस समय आप बतलायतो ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम नामका आश्रम है परंतु शास्त्रोंके अनुसार क्या वह है? क्योंकि-प्रथम तो शास्त्रोंमें पंच प्रकारके ब्रह्मचारी कहे हैं उनमेंसे शास्त्रोक्त एक प्रकारकेभी ब्रह्मचारी नहीं है; यहां कैसे नहीं है इसके दिखानेकी आवश्यकता नहीं. क्योंकि यहां तो केवल शासनदेव पूजाका खंडन मंडनका विषय है इसको छोडकर दूसरा विषय लेउठना अप्रसंग है.

पाठक विचार करसकेंगे कि–जो चार आश्रम शास्त्रोंमें कहे हैं वे कोई स्थानके नामसे नहीं कहे गए हैं. वे आश्रम व्यक्ति अपेक्षासे कहेगए हैं. जैसे चोथा आश्रम भिक्षु (सन्यास) अर्थात यह मुनियोंको कहते हैं सो क्या मुनियोंही एक स्थानमें रहतेथे? जिस स्थानको सन्यास आश्रम कहते होय ? सो कदापि संभव नहीं.इससे सिद्ध है कि–वे चार आश्रम व्यक्तिगत कहे जातेथे; स्थानगत आश्रमोंके नाम नहीं थे. और यह जो उदासीनाश्रम है वह स्थानकी अपेक्षासे है; अर्थात् जिस स्थानमें उदासियोंका समूह रहे उस्को उदासीनआश्रम कहिये. इसवास्ते उन चार आश्रमोंसे और इस आश्रमसे कोई संबंध नहीं. वे चार आश्रम तो व्यक्तिगत होतेथे और यह उ. आश्रम स्थानगत है.

भला आप इतने बडेभारी पंडित होकर आश्रमोंके स्वरूपकोही नहीं जानसके आश्चर्य है! और जो आपने वसुराजाके सिंहासनका दृष्टांत दिया सो एक प्रकारसे ठीकभी है क्योंकि–जबतक वसुराजा सत्य-वक्ता बनारहा तबतक सिंहासन अधर रहा और जिस समय वह झूठ बोला उसी समय धराशायी होगया. इसही तरहसे इस आश्रममें आप सारखेनका बताया हुआ मिथ्यात्व [शासनदेवादि– कुदेवादिपूजन] नहीं होगा तथा आपके पूज्य भेषियोंका इसमें अधिकार नहीं होगा तबतक तो यह निराधार (आकाशस्थित) रहेगा और जब इसमें मि-थ्यात्वी और भेषियोंका अधिकार होजायगा उसी समय यह धराशायी अवश्य होजायगा. इसवास्ते यह आश्रम मिथ्यात्व और भेषियोंसे बचा रहे एसी मेरी श्रीजिनदेवसे प्रार्थना है.

तथा जो ' इंद्राय स्वाहा' का अर्थ पूछा सो आपका पिष्टपेषणमें काले कागद आपकरें जैसे मैभी क्या करता बैठूं ? क्योंकी– आप खुदही पूजाके प्रकरणमें इंद्र शब्दका अर्थ मानचुके और हम लोगोंने केई लेखोंमें उत्तर दिए तोभी+++टेक नहीं छोडते, सो बलिहारी आपकी

है! अब लेख बहुत बढगया है इसवास्ते इस्को यहीं छोडता हूं और पाठक महानुभावोंसे क्षमा मागता हूं कि—उपरोक्त लेखमें कोई अनुचित शब्द लिखेगए हो तो आप मुझे अज्ञानी जानकर क्षमा करें.

पन्नालाल गोधा-इंदोर.

लेख नंबर २.

जबसे कतिपय पंडित भाइयोंने कुदेव (शासनदेव) देवोंकी पूजा करनेमें धर्म बताकर मिथ्यात्वकी प्रवृत्तिमें प्रचलित करनेका बीडा उठाया है; और उस्के खंडनरूप मैंने लिखना शुरू किया है; तबसे मेरे ऊपर क्रुद्ध होकर अनेक आक्षेपकर मुझको दबाना चाहा है. सो कदाचित् मुझसे वे चाहे जैसे अप शब्द कह देते, होते या अनहोते दोष लगाते तो मुझे कुछ चिंता नहीं थी किंतु मेरे ऊत्तर नहीं देनेसे अन्यसाधारण भव्य जीवोंको यह शंका होजाय की— पंडितजीका उत्तर किसीने नहीं दिया हो? इसवास्ते स्यात् पंडितजीका कहना सत्य हो. बस इसी अपेक्षासे मुझे उत्तर देना पडता है; यह बात मैंने पहलेभी सूचित करदीथी और फिरभी बार २ लिखनेका प्रयोजन यही है कि—पाठक भूल नहीं जाय!

एक लेख जैनसिद्धांत पत्र अंक ११ में "यज्ञोपवीतविधि" नामक पृष्ठ १४ में प्रगट हुआ है. उस्का सारांश यह है कि— यज्ञोपवीत व्रतधारणका चिन्ह है और विना व्रतके धारण नहीं किया जाता और व्रत बताए हैं श्रावकके मूलगुण। व्रत चाहे बहुतही अल्प प्रमाणमेंहो परंतु लेने आवश्य चाहिये सूक्ष्म दोष टल नहीं सकेंगे; बहुतसे अज्ञानी लोगोंकी समझ है कि—प्रतिज्ञा लेकर दोष लगाना पाप है. ऐसी समझ ठीक नहीं है; दोष लगने देनेकी सावधानी तो रखनीही चाहिए परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि—दोष लगनेके डरसे व्रतही न लिए जाय. सम्यग्दर्शनके साथ स्वरूपाचरणचारित्र तो होही जाता है; और मिथ्या-

त्व, अन्याय, अभक्षकी क्रिया उससे सहजही छूट जाती है इसलिए,
सूक्ष्म विचारसे वह व्रतवान या व्रतोन्मुखही ठहरता है.

दूसरे जैनकुलमें उत्पन्न होनेसे परंपरायसे कुलाम्नायसे चले आए व्रत नियम सहजमें होतीहै; इसलिए यज्ञोपवीत अवश्य लेना चाहिए. धर्ममें दृढ रखनेके लिये—बाह्य चिन्ह सहायक होते हैं; केवल तत्व चर्चा उपयोगी नहीं पडती.

केवल तत्व चरचाका धर्म वा समाजको घात करनेवाला परिणाम यहांतक पैदा होता है. देखो इंदोर उदासीन सरीखे व्रत और प्रतिमाओंके नामसे दूर भागने लगते हैं और उच्छृंखल बनने बनानेवालोंको यह अच्छा बहाना मिल जाता है. नहीं तो कोई कारण नहीं है कि- गृहस्थधर्मको पालनकेलिये तो घर छोडकर आश्रममें पहुंचें और उन्हें वहांके उदासीन अधिष्ठाता यह उपदेश देते कि—प्रतिमा पलेगी नहीं इसलिये प्रतिमाका नाम मति धराओ.

जिसने यज्ञोपवीत नहीं लिया उसे जिनपूजा करनेका अधिकार नहीं है परंतु इस व्याख्याके सामने हम लाचारभी हैं कि व्रत और यज्ञोपवीत इनका अर्थ अर्हंत कहांतक कहें जितने शब्द हैं वे अर्हंत वाचकही मानलिए जाय....इसलिये गोधाजी उदासीनोंको व्रतजंजालसे मुक्त करानेके लिए यह युक्ति जरूर काममें लावेंगे.

गोधाजी उदासीनोंके द्वारा उपदेश करानेका उपक्रम शुरू कर रहे हैं परंतु हमे एक वात खुलासा करनी है कि—अव्रतीको उपदेश देनेका कहीं अधिकार देखा हो तो जरूर बतावें? यदि उदासीनोंने यज्ञोपवीत नहीं लिया है तो उनके मुखसे वह श्रावक उपदेश सुने या नहीं? जिसने संस्कार पूर्वक यज्ञोपवीत लेरक्खा है यदी उदासीनोंने यज्ञोपवीत लेरक्खा है तो क्या वे व्रती बनगए हैं क्या? इत्यादि इसके पीछे यज्ञोपवीतकी क्रिया और ब्रह्मसूरी (गौ दानादि कुदानके उपदेश) के वाक्य लिखे हैं और मंत्रभी लिखा है इत्यादि.

उपरोक्त जैनसिद्धांत पत्र मैने मंदसोरमें श्रावणके महीनामें वाचा था उसपर मैंने जैनमित्र द्वारा प्रगट किया था कि–मेरे लेख कोई प्रकाशित नहीं करते; जैनमित्र कभी २ प्रकाशित करता है तोभी काट-छांट करता है. इसवास्ते कोई मेरा लेख अक्षरशः प्रकाश करनेकी स्वीकारता देवें तो मैं उत्तर दे सकताहूं. दूसरे यहभी थोडासा लिखाथा कि सम्पादक जैनसिद्धांत जो सामान्य अष्टमूलगुण धारियोंको तो व्रती मानता है; और जो अष्टमूलगुणके अतीचारोंके वचानेमें प्रयत्नशील है उनोंको अव्रती मानता और कहता है;यह स्ववचन वाध्यता है या नहीं? इस्के सिवाय १ वात और लिखीथी वह जैनमित्रके सम्पादकजीने प्रकाशित करी नहीं सो वह इस लेखमें प्रगट होगी.

इसपर किसी पत्रने स्वीकारता नहीं दी इस्केवाद प्रायव्हेट पत्रद्वारा संपादक खंडेलवार जैनहितेच्छुसे पूछाथा कि–मेरे लेख आप प्रकाशित किया करें तो मै भेजा करूं; जिस्का उत्तर आया कि–सौम्य शब्दोंमें आगमके अविरुद्ध होगे तो अवश्य प्रकाशित किए जावेंगे. इस्के उत्तरमें मैने लिखाथा कि–असभ्य शब्द तो मैभी नहीं लिखने चाहता परंतु कदाचित भूलसे कोई शब्द आभीजावे तो उस्का अर्थ नहीं विघडते; शब्दको शुद्धी आप करभी सकते हैं परंतु आपने जो आगमाविरुद्धके लिए लिखा सो भट्टारकादि कृत ग्रंथ–जिनमें शासनदेवपूजा आदि लिखी है उनको आप आगम मानते हैं; और हम दिगम्बर ऋषियोंकृत ग्रंथोंको आगम मानते हैं. जो शासनदेवपूजा आदि जिनग्रंथोंमें कहीये हम उस्का खंडन करते हैं इसवास्ते आपकी स्वीकारताही अस्वीकारता होसकता है. इसवास्ते आप स्पष्ट लिखे तो लेख भेज जावेंगे. इस पत्रका उत्तर १५।२० रोजतक न आया तव एक पत्र और दिया उस्काभी जवाब नहीं; तव यह लेख पृथक् सोलापुरवाले शंकरजीके मंगानेसे प्रगट किया है.

मै आपसे पूछताहूं क्या अंग्रेजी दवा जो प्रायःअनेक प्रकारके मद्य अनेक जीवोंके मांस रुधिर अनेक पक्षियोंके अंडोंसे वनती है,

और चरबी (वसा) सरेस चर्म हड्डी आदिवस्तुओंका औठनमें सम्पर्क होता है और भंगी कृस्तानोंका उच्छिष्ट पानी जो कृस्तान अंग्रेज दीर्घ बाधाजाकर गुदा शुद्ध जलादिकसे नहीं करते केवल कागद आदिसे पोंछकर उन्हीहातोंसे जल पी कर और पीए हुए बर्तनोंका जल उस दवामें नहीं डालते हैं? क्या तथा बडे बडे सफाखानोंमें हरेक काम दवाईयोंका भंगी आदि नहीं करते हैं क्या? अब ऐसी दवाखाने वाले क्या आपके समझमें अष्टमूलगुणधारी व्रती श्रावक सम्यग्दृष्टी है क्या ऐसे लोगोंने यज्ञोपवीत धारण नहीं किये हैं क्या? क्या आपके इष्टमित्रोंने वा आपने ऐसे लोगोंको यज्ञोपवीत नहीं दिये हैं क्या? और आपके परंपरासे कुलाम्नायसे व्रत नियम सहजही जैनकुलमें होते हैं; सो क्या उपरोक्त दवाखानेका प्रचार कुलाम्नायसे चला आया है? अथवा अब १०० में ९५ जैनी ऐसे नहीं है कि जिनके-ऐसी दवाका त्याग नहीं है. क्या यह सूक्ष्म दोष है? इससे अष्टमूलगुणका क्या घात नहीं होता है? जो आपने लिखा है कि- सूक्ष्म दोष टल नहीं सकते. इस वास्ते सर्वही जैनियोंको यज्ञोपवीत लेनेकी आपने घोषणा करदी है! वाह वाह धन्य है आपके व्रतोंको जो मद्य मांसादिकी बनी वस्तु खाता रहै! और व्रती सम्यक्दृष्टी भी बना रहै!

कदाचित् आप कहेंगे कि- वह तो दवाई है; जैनी मांस थोडे ही खाते हैं? तब हम भी कहेंगे कि- जो म्लेच्छादिक हैं जिनको अपन मांस भक्षी मानते हैं उनको भी मांसभक्षी मती कहो. क्योंकि वे भी कच्चा मांस नहीं खाते वे भी मांसकी तरकारी खाते हैं. जैसे मांसकी दवा खानेवालेको आपने मांस खानेवाला नहीं माना, तैसेही मांसकी तरकारी (साग) खानेवालोंको नहीं मानना चाहिये सो यह आपकी बात कौन बुद्धिवान मान सकता है कदापि नहीं.

नोटः—उपरोक्त जो अंग्रेजी दवा खानेवालोंको मांसका त्याग नहीं कहा जाता ऐसा लेख देखकर कोई मांसके लोभीयोंको मांस नहीं

खाने लगजाना चाहिये, जो वे कहे कि—डाक्टरी दवा वो हमसे छूटती नहीं, जिससे मांसके त्यागी तो हम हुये नहीं; तो फिर मांसही क्यों न खाने लगजाय? सो नहीं २. ऐसा छल नहीं ग्रहण करना जैसे भीलने एक कागका मांस छोडदिया था तो क्या वे मांसका त्यागी थोडा ही हुवा? परंतु प्रतिज्ञामें दृढ रहा; फिर इसने सर्व मांसका त्याग करादिया तो स्वर्गमें गया. इसही तरह जे मांस नहीं खाते हैं परंतु डाक्टरी दवा खाते हैं इससे वे मांसके त्यागी तो नहीं है, कि मांस खानेका त्याग है; और मांस खानेकी कदाचित् इच्छा नहीं है. बुरा समझते है वे मांस खानेवालोंसे बहुत अंसोंमें अच्छे है.

और जो आपने लिखा कि—केवल तत्वचरचाका परिणाम धर्म और समाजको घात करनेवाला होता है; सो यह आपका कहना जिन-वानीको महाकलंक लगाना है. क्या जो तत्वचरचाका अनुभवी है वह क्या कभी मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्षका सेवन करता है? कदापि नहीं. जिनके तत्वज्ञान होता है वह अभक्षादिकोंको पहले ही त्याग देते हैं. हां यह बात अलाहिदी है कि—जैसे उत्तम जलकी वृष्टि नींव व मूलधतुरादिवृक्षोंमें पडनेसे उनमें कटुक कंटक और विष आदि पैदा होजाय तो वह जलका दोष नहीं; किंतु उन वृक्षोंके स्वभावका ही दोष है. तैसे ही कोई ज्ञानावर्णादिके क्षयोपशमसे कुछ जैन तत्वोंके शास्त्रोंका जानकार हो जावे और विपरीत परिणतिवाले सूरजभानु, अर्जुन लाल आदि सरीखे हो तो क्या यह दोष तत्वचरचाका कहा जाय? कदापि नहीं. यह दोष तो उन व्यक्तियोंहीका है जो म्लेच्छविद्या और म्लेच्छ आदि संगतिसे हुआ है. और जिनोंने तत्वचर्चा सीखकर मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष नही त्यागा उनको तत्वज्ञान हुआही नहीं. जैसे मुसल-मानोंमें एक मसल है कि—गधेके ऊपर बहुतसी किताबे लाद दी जावें तो क्या वह किताबोंका जाननेवाला होसकता है? कदापि नहीं

तैसेही कोई बहुत किताबें पढजाय और उनपर अंमल नहीं करता तो वह आलिम नहीं होसकता.

आपने जो उदाहरण यहांके उदासीनाश्रमका दिया कि- व्रतके नामसे दूर भागने लगते हैं. सो यह बात आपने कैसे जाना ? क्या उदासी केवल तत्वचरचाही करते हैं? अपना आचरण उच्च नहीं बनाते? क्या कभीं आप यहां आकर जांच कीथी ? या और कहीं किसी उदासीसे पूछा था? नहीं तो वृथा असत्य लिखनेसे क्या आपकी कुछ शोभा होती है ? ऐसे उच्छृंखल तो लोगोंको आप बनाते हो ! अव्रतियोंको ग्यारमी प्रतिमातक वा मुनिव्रततक देनेका वीडा उठाया है ! जो कुदेवादिकोंको पूजा करे, अभक्षादिकोंका पुरा विचार नहीं; जैसा मिले वेसा शुद्धाशुद्ध ढूंडियों कैसा आहारादिक करें और व्रती दूसरी सातमी ग्यारमी प्रतिमाधारी व मुनि वन जाय! क्या इसको उच्छृंखल नहीं कहा जाय? क्या 'ऊंची दुकान फीके पकवान' की कहावत चारितार्थ आप नहीं करते ?

आप सारिखोंनेही श्वेतांम्बर रक्तांवर, पीताम्बरादिक जैनधर्ममें शिथिलाचार चलाया था; आप कोई चोथा पांचवा खिचडापंथ आप शास्त्रपारिषद् द्वारा चलाना चाहते हैं. आपने लिखा कि- घर छोडकर तो आश्रममें आवे और वहांके अधिष्ठाता उपदेश देवें कि- प्रतिमा पलेगी नहीं; प्रतिमाका नाम मतिधराओ. सो यह आपका लिखना चाल बाजीका है? क्या उ. आश्रममें यह उपदेश दिया जाता है कि- प्रतिमा धारण मति करो ? कदापि नहीं. उपदेश तो आश्रममें रहनेवालोंको नवमी प्रतिमातक धारनेका दिया भी जाता है; किंतु क्या करैं जो वह पूरी पहली प्रतिमाभी न पाले और नाम ११ प्रतिमा का धराले. यह तो आप सारिखेनका ही उपदेश है, जो पले तो एक भी नहीं और नामधराही लें; अथवा प्रतिमाकी तो पहले दीक्षा देही दो फिर चाहे प्रतिमा पले या न पले! प्रतिज्ञा भंगका तो दोष आप तुच्छ गिनते

हो; क्योंकि आप लिखते ही हैं.— व्रतभंग तो होगा जब होगा परंतु अव्रती रहना योग्य नहीं. सो ऐसी प्रतिज्ञाभंगका दोष तो तुच्छ आपही जाने; हम तो यहां दोष समझते हैं. और प्रतिज्ञाभंगका फल निगोद कहा है. पंचमकालमें साडेसात क्रोड मनुष्य व्रतधारण कर भ्रष्ट होकर नरक निगोद जांयगे ऐसा आगममें लिखा है; सो इस आगमवाक्यकी पूर्ति आप सारिखोंसेही तो होनी है.

श्रीमान् पंडित टोडरमलजीनें मोक्षमार्ग प्रकाशमें कहा है कि— एक बार पेट भर भोजन कर एकभुक्तव्रत करे वह तो धर्मात्मा, और जो उपवासका नाम-धराय एक बूंद भी जलकी ग्रहण करे वह पापी. तैसेही बने जितना धर्म साधे सो तो धर्मात्मा इसमें दोष नहीं. जितना धर्म साधे उतना पद धारे. और जो पद तो ऊंचा धराय और क्रिया नीची करे तो यहां पापी होता है. जो क्रिया नहीं सधती थी तो नीचाही पद धरना था. इत्यादि.

अब आपके उपदेशका फल देखिए—जो ११ मी प्रतिमा जिसका नामही उद्दिष्टत्याग प्रतिमा है. अर्थात् जो अपने निमित्तक्रिया भोजनादिक नहीं ग्रहण करे, सो अब देखो. अन्य भोजन की तो क्या चली किंतु गृहस्थियोंके घरमें प्राशुक जल भी तो नहीं मिलता. वह भी तो जब व्रती आते हैं तब ही तो उन्हीके वास्ते किया जाता है. सो भी एक घरमें नहीं अनेक घरोंमें होता है. एक घरमें हो तो उनके निमित थोडाही आरंभ होय, परंतु एक त्यागीके वा मुनिके वास्ते घर २ आरंभ होता है. मुनीके ४६ दोषोंमें भी पहला दोष उद्दिष्टाहार है. और यह व्रतोंमें पहला अहिंसा व्रत जिसमेंही यह मुख्य दोष !

और परिग्रहत्याग होनेपर लाखोंका परिग्रह एकत्र करना ? यथार्थ सुननेमें आया है कि— गत वर्ष जैपुरमें चातुर्मास हुआ था. वह रुप्या तो एकत्र कराएही थे; किंतु एक गृहस्थने आहारको पडगाहे. और उसके घर भीतर चढेगए, उसने नवकारको भी कही इतनेमें

दूसरा गृहस्थ आया और उसने २ दो अंगुली दिखाई सो तत्कालही उसके यहांसे जिसने पडगाहे थे वहांसे विना आहार लिए चलेगए! और जिसने दो अंगुली दिखाई थी उसके घर आहार लिया और रु. २०० दोसौ उसके लिए. यद्यपि कोई यह कहे कि- वो तो हाथमें रुपयोंको छीतेतक नहीं झूठा दोष क्यों लगाया जाता? जिसका उत्तर इतनाही है कि- जो लखपती किरोडपती होते हैं वे क्या कुल रुपए अपनी कमरसे बांधे रहते हैं. बाजी २ ऐसी दुकाने अन्य २ देशोंमें हैं कि- जहां उनका मालिकने सूरत भी नहीं देखी है; परंतु उनका हिसाब किताब आता रहता है. सेठके हुकमसे दुकानोंका काम होता है. तैसेही त्यागी लोग भी केवळ हिसाबही नहीं देखते किंतु वहां जा २ कर उनकी सर्व व्यवस्था कराते हैं!

यहां फिर कोई कहे कि—वे कोई सांसारिक विषयकषायोंका कार्य थोडाही करते हैं? वे तो सरस्वतीभवन, औषधालय, विद्यालयादिके वास्ते परोपकारके अर्थ करते हैं, कुछ अपने अर्थ थोडेही करते हैं? सो ठीक है; परंतु क्या यह आरंभपरिग्रहके त्यागियोंका कर्तव्य है या आरंभपरिग्रहधारी गृहस्थोंका कर्तव्य है?

इसही तरहसे अपनी चली प्रतिमाधारियोंकी हकीगत सुनलीजिए—

जो प्रतिमाधारी पर घर भोजन करते हैं, उनसे निम्न लिखित दोष टल नहीं सकता.

(क) प्रायः वहुत लोग पानीछान नहीं जानते. किसी२ के तो नातना (छन्ना) ही पूरा यथोक्त नहीं रहता, जीवानी कर नहीं जानते. यहांतक की—मंदिरजीमें भी तो पूजनका जल वहूतसी जगह यथार्थ नहीं छनता हैं जहां कि अछे २ धर्मात्मा जनवनकर पूजनादि करते हैं तव साधारण गृहस्थियोंके घरोंकी तो वातही क्या हैं?

(ख) वीधाअन्न अछे २ गृहस्थ जो विलकुल अवीधान्न खाने वाले हैं अथवा त्यागियोंको शुद्ध भोजन बनानेवाले हैं. वह लोग भी

जो सौ दोसौ दानोंमें एकदो वींधादाना अथवा एकदो जंतू निकले हुए आंखसे देखले तो भी उस धान्यको अवीध शुद्ध समजते हैं. बाकी साधारण गृहस्थोंकी तो वातही अलग है.

(ग) शास्त्रोंमें प्रथम प्रतिमावालेको दो घडी या चार घडी पिछला दिन रहे जवसे उतनी घडी दिन (सूर्य) चढेतक रात्रीमानी गई इस रात्रीकी कोई भी चीज वनी हुई खाना मना है. सो गृहस्थोंसे तो इसका पालन कदाचित् ही किसीसे होता होगा. परंतु जो त्यागिके अर्थ भोजन वनाया जाता जो दिनका पिसा आटा कहा जाता है वह सूर्योदयसे कितनेही पहले जब कुछ उजाला होने लगता है उस समय पीसा जाता है. और जो दूध लाया जाता है वह तो और भी पहले इसही तरह दाल आदि भिगोई जाती है. वह या एक दिन पहले सामको या रात्रीको या लडके अंधेरेमें इत्यादि वहुत वस्तु रात्रीमेंही प्रायः वनाई जाती है.

(घ) जल छने हुएकी मर्यादा दो घडीकी है उपरांत त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होती है. और भोजन वनानेमें कमसे एक प्रहर तो अवश्यही लगता है, नहीं तो दो प्रहर पूरे लगते है; परंतु जल तो वही प्रथम एक वारका छना हुआ वरता जाता है. कोई विरला महां भाग्य प्राशुक जलसे भोजन वनाते होगे; नहीं तो वोही कचा अन छने अमर्यादित जलसे त्यागियोंको भोजन वनता है. हां अव दो एक वर्षोंसे उदासिलोग विचरने लगे हैं जहां २ वे गये वहां २ कोई २ लोग समझने लगे है वोतो भलाईसे क्रिया करते होंगे नहीं तो पोलही पोल देखिए.

इत्यादिक वहुतसी अक्रिया युक्त जिसमें त्रसघातका संभव होता है तव मांसादिके अतीचार कैसे टले? तव प्रथम प्रतिमा कैसे पले?

(ङ) शास्त्रोंमें अव्रती मिथ्यादृष्टि कुदेवोंके पूजनेवालोंके हाथका स्पर्श किया भोजन मने किया है. किया हुआ तो क्या किंतु अंतराय माना है परंतु अनेक घरोंमें जादा तर स्त्रियोंमें चंडी मुंडी पीरपैगंवर

भेरोभोपा पूजे जाते हैं. वहुतसे स्त्री पुरुष मधु (सहत) को खाते हैं; और डाक्टरी दवाई तो एक कुलधर्म होगया है; सो प्रायः ऐसेही स्त्री पुरुषोंके हातका भोजन खाना पडता है.

(च) जिनके वहु आरंभादिक हिंसक व्यापार हैं उनोंका संसर्ग करना कोई तरहका संवंध करना देना लेना व्यवहार करना साधारण गृहस्थोंको मना लिखा है, तव उनोंके घरका भोजन या द्रव्य वस्तु लेनी कैसी? जव उनोंकी वस्तूही नहीं लेनी तव उनका स्पर्शकिया भोजन प्रतिमाधारी क्या लेसकता है? परंतु लेतेही है !

(छ) तथा हरिवंश पुराणादि ग्रंथोंमें शिल्पिकर्म करनेवालो को शूद्र संज्ञा कही है परंतु विशेष करके जैनियोंके शिल्प व्यापारकीही मुख्यता है.

(झ) देखिये जरासा अग्नीके आरंभका धंदा सुनारके होता है इस से उसको अस्पर्शशूद्रोंमें कहा; परंतु अव उससे हजार लाख क्रोड गुनाकी क्या गिनती? किंतु संख्यात गुणे अग्नीका आरंभ इसही तरह जुलाही कोलियोंसे संख्यातगुण वुनाईका धंदा धोवियोंका छीपोका आदि अनेक नीच पुरुषोंके धंदे हमने लेलिए हैं; औरतो क्या किंतु हजारो लाखो सैनी पंचेंद्री गाय भेस सूर आदि जानवरोंको मारमारकर चरबी आती है वह सव धंदे [मीलो] के काममें आती है वस उसीका धारण (द्रव्य) हम लोगोंके उदर देवकी पूरतीमें लगता है. यहां हमारी उच्च प्रतिमाधारण करनेका नमुना है!

(ञ) इसके सिवाय घृतकी क्रिया और देसी शकर [खांड] गुडकी क्रिया इस कालमें होती है जिससे त्रस जीवोंका रसका अंश हमारे उदर देवके पूर्ण करनेमें और जिव्हाको राजी करनेमें आता है इसकी तो वातही जुदी है इसका तो पंडितोमे नाम लेनेसेही हम महा मूर्ख कहे जाते हैं !

इत्यादिक कहांतक लिखाजाय सारी वाते लिखी जाय तो एक

बडोभारी ग्रंथ वनजाय. अव और सुनो. अव्रत सम्यक्दृष्टीके ६ छहो लेश्या कही है. किंतु प्रथम प्रतिमासेही ३ शुभलेश्या कही गई; सम्यक्तके २५ मलदोषोंका अभाव कहा है. पंच अतीचार सप्तभयरहित संवेगादिक अष्टगुण तथा श्रावकके २५ गुणसहित तीन शल्यरहित इत्यादि गुण प्रथमप्रतिमाके पहले ही लेते हैं; जिस पीछे प्रथमप्रतिमा होती है. परंतु इसकी हकीगत देखिये कि-वात्सल्यभाव तो इतनाकि जो हमको एकले नहीं रहना जब कि सामान्य मुनियोंकोही एकलविहारी रहना निषेध किया है; तब हम सारिखे कच्चे हृदयवाले हीन संहननके की क्या चलाही? परंतु कषायोंकी इतनी तीव्रताकी मुनी, ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी, उदासी, त्यागी आदि सर्वेही स्वछंद होकर एकलविहारीही होना पसंद करते हैं. कदाचित् कभी मिलभी जायतो वना वही नहीं वने सर्वेही अपनी २ डेढ२ चावलकी खिचडी पकाते हैं! उपगूहन अंग इतना जो वह वाके औगुन हेरे वह वाके! परंतु अपने औगुनोंपर दृष्टि कौन डाले क्रोध मानादिक इतना कि-हमारे कोई जरासे दोष बतावें तो हम औगुन वुला होकर उस्को आडे हात ले डाले. इत्यादि अनेक बातें ऐसी है कि-जिनका उल्लेख किया जाय तो हजारोंही पृष्ठ भर जाय.

३ हमारे सामायकका ए हाल है कि-जिनके भावोंको तो भगवत जाने परंतु जब रेलके डब्बोंकी धूमधाममें हम वैठे २ सामायक करते हैं तब द्रव्य क्षेत्रकालकी शुद्धता व आसनकी शुद्धता तो कोसों दूर भग जाती है!

४ प्रोषधोपवासका यह हाल है कि-एक स्थानमें रहनेके वजाय हम जगे २ भागते है; रेल, मोटार, वगी, घोडा, वेलगाडियोंमें हम वैठे वैठे फिरते हैं आर्तरौद्रादिकका तो प्रमाणही क्या?

५ सचित्तका त्याग इतना कि-अचितकरके खाए विना हमारी जिव्हादेवी प्रसन्नही नहीं होती! जिस वनस्पतीमें संसारमें जितनी जीव राशि है उसकी वो एक खानही है जिस्को अनंतकायभी कहते है उसके घात करनेमें हमको सीसाटाभी नहीं आता.

६ दूसरी प्रतिमाकी तो हजारोंही बातें हैं परंतु एक अहिंसा अणुव्रत भी कैसे पाला जाता है, सो भी हम नहीं जानते. सामान्य हिंसा दो प्रकार है—संकल्पी और आरंभी. इनके दो दो भेद कर चार हुए हैं. व्यवहारमें दो नामोंसेही पालन किया जाता है. संकल्पीका भेद दूसरा विरोधी हिंसा है; आरंभीका दूसरा भेद उद्यमी है. इस प्रकार हिंसाके चार भेद हो जाते हैं. सो दूसरी प्रतिमाधारी विरोधी का भेद जो संकल्पी हिंसा है उसका त्याग करदेता है. और कृषी आदि वह आरंभादि है एभी संकल्पीहिंसा समान है इनका भी त्याग करदेता है. और वह त्याग मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदन सहित होता है. अर्थात् गृहस्थी जब दूसरी प्रतिमाधारण करता है तो प्रथमही अपनी गृहस्थीका भार अपने पुत्रादिकोंको सोंपकर आप बहुतही अल्प आरंभ और अल्प परिग्रह रखकर धर्मध्यान करता है; और अपनी शेषायूकोव्यतीत करता है. और ज्यों ज्यों द्रव्य क्षेत्रादिकी योग्यता अनुकूल मिलती जाती है. त्यूंत्यूं उपरकी प्रतिमा चढता २ मुनीव्रत भी धर लेता है. परंतु हमारे पंडितजी तो बहु आरंभपरिग्रहधारी संपूर्ण गृहस्थीके कार्य करनेवालोंकोही दूसरी प्रतिमाकी दीक्षा देही देते हैं !

अब जो पंडितजीने मुझसे प्रश्न पूछा है कि—उदासीनोंसे उपदेश करानेका उपक्रम तुम कर रहे हो. उदासीनोंने यज्ञोपवीत नहीं धारण किया हो और जिन्हें यज्ञोपवीत संस्कारपूर्वक [त्रिवरणाचारके अनुसार] यज्ञोपवीत धारण किया हो तो वह उपदेश उदासीयोंके मुखसे सुनने नहीं. इसका उत्तर इतनाही है कि वह त्रिवरणाचारके अनुसार शासनदेवादि (कुदेवादि) पूजनेवाला गौ दानादिसे पुण्यबंध माननेवाला, मृतकोंके श्राद्ध तर्पण करनेवाला ऐसा अश्रद्धानीको शास्त्र न तो सुनना योग्य है और नासुनानाभी चाहिए. क्योंकि नीमादि वृक्षोमें उत्तम जलवर्षा हुआ कटुक भावको प्राप्त होनेके समान परणवेगी.

७ उदासीलोग प्रतिमाधारण करनेमें उद्यमवंत हैं; दोषोंको छोडनेमें प्रयत्न करते हैं; ज्यो ज्यो वे दोष छुटते जायगे त्यो त्यो प्रतिमा होती जायगी. जैसे ज्यों ज्यों परिणाम निरमल होते जाते ज्यों ज्यों कषायोंका क्षयोपशम उपशम क्षय होता जाता है त्यो त्यो गुणस्थानोंका चढना होता चला जाता है कहनेकी क्या आवश्यकता ?

८ अब हम पंडितजीसे एक प्रश्न करते हैं कि–आपने यज्ञोपवीतको इतना महत्व दिया सो क्या यह यज्ञोपवीतकी प्रवृत्ति विदेहक्षेत्रमें इस समय है ? अथवा इस भरथ क्षेत्रमें जब २ कर्म भूमि प्रवृत्त होती है तब २ अनादिसे यज्ञोपवीतकी प्रवृत्ती होती है क्या ? जो कहो कि–नहीं तो फिर इसकी इतनी मुख्यता क्यों ? और जो कहो कि–नहीं २ यहतो अनादि कालसेही प्रवृती है तो श्रीऋषभदेव भगवानने क्यों नहीं चलाई ? जो कहोगेकी चलाई तो महापुराणमें प्रथम चलानेवाले भरत चक्रीकों क्यों कहा ? और जो परीक्षार्थ भरथजीने श्रावकोंको नोतेथे.

उनमें जो सच्चे व्रती श्रावकथे जो सचित्त मार्गसे नहीं आए थे तो क्या उनके गलेमें यज्ञोपवीत था? जो कहो कि था तो फिर उनको भरथजीने यज्ञोपवीत देकर ब्राह्मण ठहराये सो क्या यह बात झूट हुई ? बस इससे यह बात सिद्ध हुई कि– यह यज्ञोपवीतकी प्रथा अनादिकालीन नहीं है और न विदेह क्षेत्रमें है; तथा जब ब्राह्मणको स्थापनेके बाद भरथजी श्रीआदीश्वरके समवशरणमें जाकर पुछा तो श्रीभगवानने इसप्रथाको अछी नहीं बताई. यद्यपि श्रीजिनस्वामीके वाक्य होनेसे हम इस्का सर्वथा निषेधभी नहीं करते परंतु हमको शंका है सो पंडितजी इसका उत्तर देवेगें.

९ दूसरा प्रश्न हमारा एक यहभी है– आदिपुराणमें यज्ञोपवीत ७ सात तारका कहा है तथा आपके सोमसेन त्रिवरणाचारमेंभी ७ सात तारका लिखा है. फिर यह जिनसेनस्वामीकी आज्ञा के विरुद्ध आप ३

तीन तार अथवा २७ सताईस तारका यज्ञोपवीत क्यों धारण करते हैं सो कृपाकर बताइए ?

१० खबरदार बार बार आगमकी द्वाही हरेक लेखमें देकर जैन सिद्धांत व खंडेलवाल जैनहितेच्छु और जैनबोधकवाले यह दरसाते हैं कि—शासनदेवचर्चामें हम आगमानुकूल लिखते हैं और हमारोविरुद्ध लिखनेवाले आगमको लाथ मारते हैं; आगमकी अवहेलना करते हैं; मिथ्यादृष्टि हैं; सो यह उनका लिखना बडा ढीट और वेसरमाईका है. क्यों कि— हम कई वार लिख चूके कि जैनऋषि (आचार्यो) के धर्म पद्धतमें सरागियोंकी पूजनको मिथ्यात्व वतलाया है और वीतराग पंच परमेष्ठीआदिकी पूजाकोही धर्म कहा है.

वस, इन वाक्योंसे मिलते हुए वाक्य होंगे वेही आगम वाक्य है. और जो सरागीयोंकी पूजाका जिसमें प्रतिपादन किया होवे वह किसी प्रकारभी आगम माना जाता नहीं. वस कोई तो इसवातको सिद्धी करदे कि जिन आगमोंमें वीतरागियोंकी पूजन कही वह आगम नहीं है, किंतु जिनमें सरागियोंकी पूजन कही है वेही आगम है. अर जो यह नहीं वतलातेहो और कहो कि—वीतरागीही पूज्य है सरागी पूज्य नहीं है, तो फिर इसबातको बतलावे कि शासनदेव-वीतरागी होते हैं सरागी नहीं होते ?

वस, जबतक इन दो बातोंमेंसे कोई एक बात सिद्ध करके नहीं बताओ तबतक आप लोगोंको आगमकी धुआई देनेमें लज्जा आना चाहिये; जादे क्या लिखे? आप शासनदेवोंकी पूजामें ऋषिवाक्य वत-लातेहो परंतु ऋषियोंके वाक्य पूर्वापर विरोध लिए कदापि नहीं होते एक नामके कई व्यक्ति होते हैं; तैसेही पूर्व आचार्योंके नामधारक अनेक भट्टारक हुए हैं.

अथवा कई धूर्तोंने बनावटी ग्रंथ बनाकर अपना नाम छपाकर बडे बडे आचार्योंके नाम रखकर लोगोंको धोके दिए हैं. जैसे भद्रबाहु संहिता, कुंदकुंद श्रावकाचार, उमास्वामिश्रावकाचार, भगवज्जिनसेन

त्रिवर्णाचारादिकके नमूना प्रत्यक्ष हो गए है. फिर आप किस मुखसे ऐसे ग्रंथोंको आगम बताते हो? और जराभी तो शरम आना चाहिये।

देखिए आपका नेमिचंद्रप्रतिष्ठापाठ जिसमें एक मंत्र लिखा है उसको तो मैंने पहले लेखमें लिखाही है; यहां केवल उसका अर्थही लिख देताहूं. पहलेतो ३ वीजाक्षर है इस्के पिछे पीतवर्ण कुवेर कैलाशपर्वतपर रेहनेवाला ऊंचा शरीरकर शोभित मेघकेसी गर्जना करनेवाला वृषभ (वैल.) पर वैठनेवाला जटाकाधारी जिसकी पिंगलवर्णकी जटा वहुतसी है, नागोको धारण करनेवाला अर्द्धचंद्रमा करके जाज्वल्य पार्वतीका पती, तीन नेत्रका धारी, जिस्के त्रिशूलका आयुध शोभायमान, इत्यादि विशेषणसहित जो कि अन्य शैवमतियोंके महादेवके जितने विशेषण है वे सव दिए हैं. अव केवल एक नाम वदल दिया है.

कहिए पाठक जनहो, क्या जिनमें ऐसे २ वाक्य होय क्या वे आगम होसकते हैं? क्या यह ग्रंथ हमारे दिगम्बराचार्य श्रीनेमिचंद्रजीका वनाया हुवा है? जादे क्या इसहीप्रकार कई धूर्तोंने आचार्योंके ग्रंथोंमें क्षेपक श्लोक और गाथा लिख दिए जिससे आचार्योंके वचनोंमें भ्रम होने लगा. परंतु परीक्षक होता है वह भ्रममें नहीं पडता है, जान लेता है कि–ए आचार्योंके वाक्य नहीं! क्यों कि दिगम्वराचार्योंके वाक्य पूर्वापर विरोध लिए कदापि नहीं होते.

जैसे जैनधर्मका मूल सिद्धांत अहिंसालक्षणधर्म है. और कोई किसी प्रकार हिंसामें धर्म स्थापन करके वतावे कि–एसी दिगंवर ऋषियोंनेही कहा है तो परीक्षक तो कदापिही नहीं मानेगा. तैसेही संरागियोंको पूज्यभी दिगम्बरी श्रद्धानी होगा वह कदापि नहीं मानेगा.

११ दूसरे जो हम लोगोंके जहां जहां पूज्य वाक्य होते हैं तहां तहां अर्हंतादिकोंकाही अर्थ करते हैं. और किसी अपूज्य पुरुषका खास अर्हंत नामभी होगा तिसको हम अर्हंत सर्वज्ञ भगवान कदापि नहीं मानेंगे, और उसको अर्हंत नाम होनेपरभी पूजेंगे नहीं. ऐसी बातें

हमने कई वार लिखी है. परंतु देखिये इनोंकी धृष्टता कि–हरे फले सो-थे आक्षेप किया करते हैं यज्ञोपवीत अर्हंत, उदासी अर्हंत, आश्रम अर्हंत, इंदोर अर्हंत जितने संसारमें शब्द है उन सबोंका अर्हंतही अर्थ होता है. तो देखिए पाठकों कितनी पक्षपात है जो असत्य लिखनेमें रंचमात्रभी भय नहीं. अब इस लेखकों मैं यहांही खतम करताहूं.

और लेख बहुतसे मेरे ऊपर था. शासनदेवपूजाके विषे जैन-सिद्धांत पत्र व खंडेलवाल जैनहितेच्छु और जैनबोधकमें लिखे हैं परंतु मेरी रुग्ण अवस्था, और वृद्धपनासे और नेत्र आदिक इंद्रियोंकी शिथलताके कारण अब लेख मेरेसे अब ज्यादेकर लिखे नहीं जाते इसवास्ते प्रतिपक्षी महाशयसे क्षमा चाहताहूं. असलमें अरहंत देव, निर ग्रंथ गुरू, और जिननिर्मित शास्त्र, येही उत्कृष्ट पुज्य हैं. इनके सिवाय धर्ममार्गमें अन्य देवादिक पूज्य नहीं है येही सर्वज्ञकी आज्ञा और पूर्वाचार्योंके वाक्य हैं.

अब इनके विरुद्ध अन्य चंडी, मुंडी, कालीदेवी आदि शासन देव, तथा सूर्य चंद्र आदिग्रह, तथा तिथी आदि देवोंकी पूजा जिनशा स्त्रोंमें कही हो तथा गऊ कन्या आदि दस प्रकारके दान जिनमें वरणन किया हो तो वे शास्त्र आगम नहीं है; क्योंकि आचार्योंके पूर्वापर-विरोधलिये वचन नहीं होते. जैसें अहिंसाही धर्म है हिंसा कदापि धर्म नहीं यह सम्यक् एकांत है. इसीतरहसे अरहंतादिकके विना और कोई पूज्य नहीं है, अब कोई चाहे जैसी नय लगाके पूजा अन्य देवोंकी सिद्धि करे परंतु वे सब मिथ्या नय है. और जो कोई पूजा सत्कार सामान्य वचन लेकरि अन्यदेवादिकोंकी पूजादिक सिद्धि करे सो सत्कार शब्द तो नीचसे नीच चांडाल तथा पशू तथा एकेन्द्रियकोभी होता है. परंतु उत्कृष्ट सत्कार अरहंतादिकोंकाही होता है. वह उत्कृष्ट सत्कार अष्ट द्रव्यकी पूजा है. सो यह पूजा अरहंतादिकोंके सिवाय दूसरोंकी नहीं होती.

और धर्मात्मा देव गुरु शास्त्रके श्रद्धानी पाठकोंसे निवेदन है कि-इस विषयके लेखोंका संग्रह हीराचंद नेमीचंदजीने करके सोलापूरमें छपाया है जिनको देखना हो वहांसे मंगाले तथा विद्वज्जन बोधकमेंभी इस विषयका वर्णन बहुत है. देखकरिके अपना संशय निकाललें, और फिरविशेष पूछनाहो तो मुजसे वा बनारसीदास आदि पंडितोंसे पत्र द्वारा पूछसकते हैं. क्योंकि अब लेख लिखनेकी या वाचनेकी शक्ति बहुतही कमहो चली है इससे क्षमा चाहताहूं इतिशुभं.

पन्नालाल गोधा.

—:०:—

शासन-देव चर्चा.

वर्तमान समयमें कितनेही दिनोंसे यह चर्चा चल रही है, कितनेही विद्वानोंके लेख सपक्ष या विवक्षमें आ रहे हैं.साधारण जनताभी इस विषयका अंत देख रही है. परंतु निष्पक्षरीत्या विना विचार किये किसीभी विषयका निर्णीत हो जाना अत्यंत असंभव है.

आश्विन शुद्ध के जैनबोधकमें ज्यो कुछ प्रश्न आप्पाशास्त्रीने लिखा है उसपर मैं मेरे विचार प्रगट करताहूं. शासनदेवता अर्थात जिनमतमें माने गये देवता अरहंतादिक परमेष्ठिही है-शासने जिन शासन देवता अर्हता दयः सर्वज्ञत्वादि गुण विशिष्टत्वात् ये तु न सर्वज्ञत्वादि गुण विशिष्टा ते न देवाः हरिहरादिवत् नामनिक्षेपापेक्षया शासन देवता अर्हतादिकही है. अगर यदि द्रव्यगुण कर्म जाति निरपेक्ष लोक संव्यवहारार्थ नामनिक्षेपसे किसीका नाम शासनदेव रखदिया होय तो वह नाम ऋषभदेव की तरह पुज्यताकू प्राप्त नहीं होसक्ता. गुण शुन्यत्वात् स्थापना निक्षेपसे अचेतन पाषाणादिकोंमें अर्हतादिकोंकी स्थापना तु तद्गुणारोपणात्भवत्येव द्रव्य निक्षेपसे अर्हतादिक अवस्था

योग्य द्रव्य नैगमादि नयापेक्ष संकल्पमें भावस्वरूप गुणस्मरण करनेसे पूज्यता सुतरां सिद्ध है. भावि तीर्थकरादिवत् ऐसे सत्यार्थ शासनके देवताकूं छोडकरि रागद्वेषादिविशिष्ट चक्रेश्वरी आदिदेवियोंमें पूज्यता स्थापन करना वीतराग मतसे परान्मुखता है.

चतुर्निकायके देवोंमें जिस प्रकार इंद्रादि दश भेद शास्त्रकारोंने किया है. उसी प्रकार देवपर्यायमें शासनदेव ये भेद आर्षग्रन्थोंमें नहीं है. जबकि शासन देव एसा भेदही सिद्धान्तमें नहीं है, तब शासन देवता पुजनीय या अपूजनीय इत्यादि विकल्पही आगम विरुद्ध होनेसे सर्वथा अनुचित है.

शास्त्रीजी लिखते हैं, प्रथम प्रतिमा और पाक्षिकाचारसे भी न्यून रा० शंकर पंढरीनाथ वा तेरापंथीजन हैं इत्यादि. इस आपके लेखसे मालूम होता है प्रथमप्रतिमावाला शासन देवताकूं नहीं पुज्य मानसक्ता. और पंडित आशाधरजीभी लिखते हैं—आपदाकुलितोपि दार्शनिकः शासनदेवतादीन् कदाचिदपि न भजते पाक्षिकस्तु भजत्यपि. अत्रचिन्त्यते. जबप्रथम प्रतिमावाला प्रतिष्ठादि कार्य करता है तब शासन देवोंकूं नहीं मान सक्ता क्योंकि जब आपदासे आकुलीत होकरिभी नहीं माने तब धार्मिक कार्योंमें माननेकी आवश्यकताही नहीं. यदि साधर्मिके सत्कारवत् इनकूं मानना ऐसा अर्थ है, तो दार्शनिक के माननेका निषेध किस लिये? प्रथम प्रतिमाधारी श्रावककूं प्रतिष्टादि करानेका निषेधभी नहीं है, प्रत्युत विधान ही है. पाक्षिक श्रावककेलियेभी पंडित आशाधरजी भजत्यपि यहां 'अपि' शब्द देते है. इसालिये इनके मतसेभी अपिशब्दात् अव्युत्पन्नसम्मक्ती अर्थात मिथ्यादृष्टी इनकूं मानसक्ता है. सम्यग्दृष्टी पाक्षिक नहीं. जैसे कन्यादानादिकमें धर्म मिथ्यादृष्टी पाक्षिकही मानसक्ता है, सम्यग्दृष्टी पाक्षिक नहीं. सिद्धान्तापेक्षयातु शासनदेवता इतिपक्षोप्रसिद्धत्वेव इतिपूर्वमेव दर्शितं. किंच यदि शासनदेवता इस पक्षकूं छोडकरि इंद्रादिक देव पूज्य है. ऐसा मानोगे तो स्वामी

समंतभद्राचार्यके कथनानुसार रागद्वेष मलमिस देवोंकी उपासना करनेसे देवमूढतादिदोष प्राप्त होंगे. जिससे मिथ्यात्वहीका प्रसंग आवेगा. पाक्षिक श्रावककूं नियमित सम्यग्दृष्टीही मानोगे तो आपदासे आकुलित होकरिभी रागद्वेषी देवोंको नहीं मान सक्ता. क्योंकी रत्नकरंड श्रावकाचारे स्वामिश्री समंतभद्रदेवैः निषेधनात्–भयसे और आशासे तथा स्नेह लोभसे कुदेव कुआगम कुलिंगियों को सम्यग्दृष्टी प्रणाम और विनय नहीं करसक्ता. एतेनयाल्लिखितं आप्पा शास्त्रिणा कलियुग प्रवर्तित राजसभाधिष्टित जज्ज कलेक्टरेत्यादि तदपि अपास्तं.

राजादिककूं मानना चारित्र मोहोदयसे है. रागादि विशिष्ट देवोंको मानना दर्शनमोहोदयसे है. राजादिकोंके माननेका सम्यग्दृष्टीके लिये निषेधभी नहीं है. राजादिक कुदेव कुआगम कुलिंगी नहीं है. यदि राजादिकके भयादिकसे कुदेवादिककूं माने तो मिथ्यात्वही है. यथा चारित्रमोहोदयजन्यवांछासे आजीविकादिद्वारा धनादिककी वांछा करना निःकांक्षित गुणका घात नहीं है. परंतु धर्मसाधनद्वारा इंद्रादिक पदवीकी वांछा करना भी निःकांक्षित गुणका घात है. वर्तमान पीडा न सही जानेके सम्बंधसे भयादिक उत्पन्न होते है जिनका इलाज चारित्रमोहोदयसे बाह्य पदार्थोंसे करता है; परन्तु संसारावस्थामें सुखके कारण समझकरि इंद्रादिक पदकी वांछा करता नहीं.

और कोईभी प्रत्यक्ष राजादिककी तरह देवता आय करि प्रतिष्ठादिकार्योंमें विघ्न दूरभी नहीं करते. किंच ज्यो सम्यग्दृष्टी देवता है वेतो अर्हदादिककी उपासनासे ही प्रसन्न होंगे. मिथ्यादृष्टी तीव्र कषायीका अधिकार ही क्या? तथा वे धार्मिक कार्योंमें शान्ती प्रदान ही क्यों करेंगे? रामचंद्र अष्टमबलभद्रकूं जब वज्रकर्ण कुशल पृच्छा करि बैठगये और नमस्कार नहीं किया तब उन्होंने वज्रकरणके श्रद्धानकी प्रशंसाही करी.

तैथा जज्ज कलेक्टरादिकको माननां कोई तेरापंथी पुण्यभी नहीं समझता; इसीतरह आपभी शासन वा इंद्रादिक देवोंको मानना पुण्य नहीं समझते है क्या? तथा श्री अर्हतकी प्रतिमाके बराबर इनकी मुर्ति (हाकीमादिक) बनाकरी कोईभी नहीं पूजता. आपतो अर्हंत प्रतिमाके बराबर मुर्ति बना करि जलादिकसे पूजन करना बताते हैं. इसलिये आपका यह विषम दृष्टान्त क्या अद्भुत है इसकुं जरा आपही विचारे!

श्रीजिनेन्द्रकी सभामें स्थित होनेसेही पूज्य नहीं होसकते! क्या समवसरणमें तिर्यञ्च नहीं है? वे भी जिनसभास्थित हैं. उनकूं भी पूजना चाहिये. यदि पूजा करने लायक जिनसभास्थित पूज्य है तो भी गणधरदेव मुनीश्वर आर्यिकादि वीतरागही पूज्य होसकते हैं. आप जिन-कूं चक्रेवरी पद्मावती आदिककूं शासनदेवता मानते हैं उनके विषयमें अर्थात् धरणेंद्र पद्मावतिके विषयमें श्रीमत् गुणभद्रस्वामी श्रीउत्तरपुराणा-न्तर्गत श्रीपार्श्वनाथ पुराणमें इस प्रकार लिखते हैं– ये धरणेंद्र पद्मावति स्वभावहीसे क्रूर है तो भी भगवान् पार्श्वनाथ स्वामीका उपकार स्मरण करिके उपसर्ग दूर करणार्थ आये; तो आर्द्र है चित्त जिनका ऐसे पुरुष क्या उपकार स्मरण नहीं करे? अपितु करेहि.

अर्थात् धरणेंद्र और पद्मावतीकूं स्वामीगुणभद्राचार्य स्वभावही से क्रूर बतलाते हैं. और क्रूर देवता नहीं मानने,त्यागने योग्य है ऐसा स्वामी जिनसेनाचार्यने आदि पुराणमें लिक्खाही है अतः यह सिद्ध होता है–शासनदेवतान्तर्गत पद्मावतीकी पूजा निषिद्ध होनेसे आर्ष-ग्रन्थोंमें किसी भी रागद्वेषादि सहितकी पूजाबताना महान् अज्ञानता है. इसीसे जो आपने रक्तांबरादि जैनाभासोंद्वारा रचित प्रतिष्ठापाठके प्रमाण दिये हैं वह सर्वथा अनुचित है. आर्षागमविरुद्धत्वात् अन्यथा.

पहले आप इन ग्रन्थोंकोही आर्षानुकूल सिद्ध कीजिये. और ज्यो श्रीत्रिलोकसार राजवार्तिकादि ग्रन्थोंमें अकृतिम चैत्यालय वरणनकी गाथादि आपने लिखी है इसमें शासनदेवता ऐसा शब्दभी

नहीं है. यदि देवोंकूं निकटवर्ती सिद्ध करनेके हेतु यह गाथा आपने लिखी है तो इसका उत्तर अर्थात् निकटवर्तित्व और पूज्यत्वमें व्यभिचार है आदि पूर्व लेखमें दिया गया है.

आगे आप दिव्यास्त्रदेवता अग्नि वाणादिक कार्योंके अधिष्ठाता-देवताओंको शासनदेवता वतायाहै यह भी स्वरुचित कल्पनाही है! और इनकी आराधना विधानसे करना ऐसा जो श्रीस्वामि जिनसेनाचार्य लिखते हैं वह विधान क्या है जरा विचार कीजिये– आराध्याः संतोष्टव्याः अस्त्रदेवताःकैः परमेष्टिवाचकमन्त्रैः पूजनैः वा। क्योंकि मंत्रके आश्रय वे देवता हैं इसलिये परमेष्टीवाचक मन्त्रोंकरिके ही वह देवता आधीन होते हैं.

भरतचक्रवर्तीनेही कई जगह उपवासादि धारण करि पुरोहितके साथ परमेष्टीवाचक अपराजितमन्त्रादिक करिकेही देवोंकूं सिद्ध किये हैं. कहीं भी किसी देवकी पूजा भरतचक्रीनें करी ऐसा आदिपुराणजीमें नहीं है.

आगे आप लिखते हैं– सर्वविघ्न सर्वदुःख शोक संताप शांतिकै हेतु तो अर्हतादिक हैं अर शासनदेवता केवल विघ्नशान्तिहेतु है. अत्र विचार्यते–अर्हतादिक वीतरागविज्ञान स्वरूप होनेसे पूजकके वीतरागताके कारण और यथार्थ शुद्ध आत्मस्वरूप प्रदर्शनार्थ प्रतिविंबसादृश होनेसे विघ्न कारणभूत अन्तरायादि कर्मनाशक उपचारात् माने जाते है.

भावार्थ—निश्चय नयसे तो स्वात्माके शुद्ध परिणामही ज्ञानावर्णादि सर्व दुःख शोक विघ्नजनक कर्मोंके रस अनुभाग शक्तिआदि घातनेवाले हैं. तदुक्तं श्रीराजवर्तिके– आत्माके परिणामसेही मिथ्यात्वादिकोंका रसघात होता है; और व्यवहार नयसे शुद्ध परणतिके निमित्त अर्हतादिक हैं. अतः अर्हतादिक भी सर्व दुःखादि दूर करनेवाले हैं यह युक्ति और

आगम उभयथा सिद्ध है. परन्तु-शासनदेवता विघ्नशान्तिहेतु जो आप लिखते हैं यह असंगत है.

क्योंकि विघ्नादिक होना अन्तराय कर्मोदयजन्य है. वह अन्तराय शासनदेवोंकी उपासनासे नहीं छूट सक्ता. इसका खुलासा मैंने जैनमित्रमें "शासनदेवता विचार" शीर्षक लेखमें किया है. पाठकगण अवलोकन करें !

आगे आप श्रीआदिपुराणजीके मंत्रोंसे यह सिद्ध करना चाहते हैं सो भी अविचारित रम्य है; इनका उत्तर भी प्रायः होचुका है. बारम्बार पिष्टपेषण करनेसे क्या लाभ? जब आचार्य स्वयं लिख रहे हैं कि-इन मन्त्रोंसे सिद्धभगवानकी पूजा करें तथा सिद्धप्रतिमाके सन्मुख इन मंत्रोंका अष्टोत्तरशत जाप्य करें; तब इन मन्त्रोंसे इंद्रादिकोंकी पुजा बताना कितना आश्चर्य है! श्रावक या चक्रवर्तीआदिककी प्रतिमा भी वहां बनती है क्या ? तथा चमरादि न होनेसे सिद्ध प्रतिमाके निकट तो सर्वाण्हयक्षादिककी मूर्ति भी नहीं होती. ऐसी अवस्थामें श्री सिद्ध प्रतिबिम्बके सन्मुख तो जाप्य करें और इंद्रादिक स्वर्गवासी देवोंको पूज्यमान करि स्मरण करें, यह सर्वथा असंभव है!

अहमिंद्र शब्दके अर्थमें आप लिखते हैं 'अहं' इति शब्दो मानार्थवाचकः इत्यादि लिखकरि अर्हंत और सिद्धमें यह अहं इंद्र यह घटित नहीं होसक्ता ऐसा लिखते है. यहां श्री आपने बहुत भूलकी है!

समयसारमें श्रीकुंदकुंदस्वामी अहं (मैं एक हूं, शुद्ध हूं, दर्शन ज्ञानमयी हूं.) इत्यादि आत्माचिन्तवनका उपदेश देते हैं यह भी मानार्थ होनेसे संसारका कारण होय जायगा. 'अहं' शब्द स्वात्माका वाचक है. स्वात्माका ज्ञान अर्हत्सिद्ध अवस्थामें भी है. स्वार्थ निश्चायक जब ज्ञान होता है तब केवलज्ञानमें आत्मा या स्व अनंत सुखादिकोंका ज्ञान भी सुतरां सिद्ध है. क्योंकि ज्ञानतत्व अर ज्ञेयतत्व इनमें ज्ञेय तो ज्ञान और ज्ञानातिरिक्त सर्वही है. भावार्थ— ज्ञान ज्ञानकूं भी

जानता है इसलिये अर्हतादि अवस्थामें 'अहं' में इंद्र अनन्तज्ञानादि ऐश्वर्य संयुक्त हौं ऐसा ज्ञान सम्भव है. परवस्तुमें अहं बुद्धि तथा परजन्य ज्ञानादिकोंसे अपनेकूं वडे मानना यह अहंकार है. सो वीतराग अवस्थामें सम्भव नहीं है.

वस्तूके यथार्थ ज्ञानमें अहंकारादि नहीं होसक्ते. अन्यथा सम्यग्ज्ञानाभाव होजायगा जातें यथावस्थितार्थ वस्तु स्वात्मा या इतरकूंही जानना तो सम्यग्ज्ञान है. केवलज्ञान सम्यग्ज्ञान है स्वापूर्वार्थ निश्चयात्मक होनेसे प्रमाण है. अशेष सर्व द्रव्यगुणपर्यायोंका होनेसे सर्ववित् है. ऐसा ऐसे केवलज्ञानमें ज्ञायकके अपने अपने आत्माके अनन्त गुणपर्याय सर्वही ज्ञेय हैं

इसी प्रकार 'अनुचर' शब्दके अर्थमें सर्वज्ञत्वाभाव नहीं होता है. 'अनु' शब्दके अनेकार्थ हैं. अनुत्वनुक्रमे हीने पश्चादर्थसहार्थयो । आयामेऽपि समीपार्थे सादृशे लक्षणादिषु । केवलज्ञान भी चैतन्यगुणकी पर्याय होनेसे अनुक्रमरूप अर्थात् समय समय परिणमनशील है. सर्व द्रव्यों के परिणमनमें कालद्रव्यकी परिणतिकी सहकारिता है. इसलिये समय रिवर्तनस ही सर्व द्रव्योंकी पर्याय परिवर्तित होती है. क्रमवर्तित्व, व्यतिरेकित्व पर्यायका लक्षण है; और केवलज्ञान भी पर्याय है. इसलिये अनुक्रम भी केवलज्ञान पर्यायमें है. एककूं जानकरि पश्चात् अन्यकूं जानना ऐसा केवलज्ञानमें होता नहीं; जिससे सर्वज्ञत्वाभावप्रसंग होय. जैसा केवलज्ञान प्रथम समयमें है वैसाही केवलज्ञान दूसरे समयमें भी है ऐसा सादृश्यार्थवाचक 'अनु' शब्दभी घटित होता है. अनु-आयामार्थ विस्तारस्वरूप अशेष वस्तुमें विस्तर रह्या. ऐसा 'चर' ज्ञान इत्यादि अनु शब्दके अर्थोंमें कोई भी बाधा नहीं है.

कलकत्ता,
ता. ११।१०।२२

अलमिति विस्तरेण,
द. जयदेव.

जैनसिद्धान्त आगस्ट १९२२ मेंके पं० अनंत तनयके
"पूज्य और पूजक" शीर्षक लेखका खण्डन.

शासनदेव-चर्चा.

(लेखक-श्री. पं. जयदेवजी, कलकत्ता.)

जैनसिद्धान्त पत्र अंक १ वर्ष तीसरा दृष्टिगोचर हुवा. जिसमें इस विषयपर कितने ही विद्वानोंके लेख हैं. 'पूज्य और पूजक' इस शीर्षकमें लेखक महाशय लिखते हैं कि-केवली भगवानमें अचिंत्य अव्याबाध ऐसी एक उत्कृष्ट अलौकिक शक्ती मौजुद है. इत्यादि लिख कर तीर्थंकरके कल्याणमें सब देवेंद्र मिलकर अपनी दैविक शक्तिसे समवशरण आदि बनाकर लोकोत्तर चमत्कार दिखलाते हैं. और जैनधर्मकी प्रभावना करते हैं. वह प्रभावक शक्ति जिनमें मौजुद है वे देवेन्द्र साधारण मनुष्यसे श्रेष्ठ और पूज्य भी ठहरते हैं.

इस लेखसे यह अभिप्राय प्रगट होता है कि-साधारण शक्तिवान् विशेष शक्तिवालेको पूजें. केवली भगवानमें जो अनंत ज्ञानादि शक्ति हैं तत् सज्जातीय शक्ति इंद्रादिकोंमें नहीं है. केवली भगवानका ज्ञानसुख परापेक्षरहितस्वात्मजनिततया बंधका हेतु नहीं है. इंद्रादिक देवोंका ज्ञानादि मोह समाहित होनेसे बंधका कारण है.

संसारपर्यायमें जो सातावेदनीयादि कर्मोंके तीव्र अनुभागादिसे सुख गुणकी वैभाविक अवस्थारूप सुखाभास विषम पराधीनादि दोष सहित कथंचित् सुख शब्दवाच्य सुखाभास इंद्रादि पर्यायोंमें है, वह हेय है; इसीलिये इंद्रादिक पदवीकी वांछा करना निःकांक्षित गुणका घात है. सोही स्वामीसमंतभद्रने रत्नकरंडमें कहा है- कर्मके परवश, अन्तसहित, दुःखरूप दुःखसे उत्पन्न, व्यवधानसहित पापका बीज ऐसे सुखको सम्यग्दृष्टी सुख ही नहीं समझता; तो वांछा कैसे करें ?

वास्तवमें जितना इंद्रियजन्य सुख है वह वेदनाका प्रतिकार है. अतः सम्यग्दृष्टी वर्तमानमें वेदनाका इलाज मात्र रोग दूर करणार्थ कटु औषधिवत् सेवन करता है; परन्तु जिसप्रकार रोगी पुनः मेरे रोग होय और मैं औषधि सेवन करूं ऐसी वांछा नहीं करता. इसी प्रकार संसार अवस्थामें इंद्रियादि प्राप्त होय और तज्जन्य पीडा शमनार्थ विषय प्राप्त होय ऐसी वांछा सम्यग्दृष्टीके नहीं होती. सो ही श्रीअमृतचंद्राचार्य कहते हैं–चक्रवर्ति नारायणादि पदवीकी वांछा सम्यग्दृष्टी नहीं करता. अतः यह सिद्ध हुवा कि– आत्मस्वरूपको प्राप्त सर्वथा कर्मकलंकादि रहित सिद्धपरमेष्टी तथा असाधारण ज्ञान दर्शन सुखादि गुणोंकी पूर्णतारूप अघातिकर्मोदयजन्य शरीरादि विशिष्ट अर्हंत परमेष्टी आचार्यादि गुरुओंकरिभी पूज्य हैं. आत्मगुणोत्कर्षता साधन होनेसे अर्हंत् अपेक्षा सिद्धोंके अव्यावाधादि गुण विशेष प्रगट होनेपर भी प्रयोजनाभावसे मोहजन्य इच्छादिकोंके अभावसे तथा अनंत सुखादि गुण प्रगट होनेसे अर्हंतके नमस्कार्य नहीं है. आत्मानुभव दशामें नय प्रमाणादि विकल्प रहित होनेसे वंद्य वंदकादि भावके अभावसे अद्वैत नमस्कार लक्षण लक्षित स्वात्मसुखादि अनुभवरूप ही है. इसलिये अर्हंत सिद्ध सर्वथा सर्व जीवोंके उपास्य हैं, और आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु दिगंवर अवस्थाके धारक रत्नत्रयकी परिपूर्णतामें यथा संभव परिपूर्ण यत्नवान् गुरुत्वेन उपास्य हैं. कथंचित् सामान्यता होनेसे तीनोंमें परस्पर वंद्य वंदक भाव भी है. आचार्योंको जब शिष्यमुनि नमस्कार करते हैं तव आचार्य भी शिष्य मुनीकूं प्रतिवंदना करते हैं. क्योंकि साधुत्वकी अपेक्षा समानता है. इसलिये यह सिद्ध हुवा कि–आचार्य उपाध्याय साधु पूजक अर पूज्य भी हैं.

इसी ही प्रकार दार्शनिक आदि उद्दिष्टत्यागप्रतिमा पर्यंत पंचम गुणस्थानधारीश्रावक परस्पर सत्कार करते हैं. पंच परमेष्टीके पूजक

है ! परन्तु सम्यग्दष्टी मनुष्य असंयमादिरूप होनेसे देवपर्यायकूं नहीं चाहता !

आगे आप लिखते हैं—भविष्यकाल तीर्थंकरके जीव अभी नरकमें पडे हैं, तो भी भाविनैगमनयसे क्या उन्हें आप पूज्य नहीं समझते ? सौधर्मेंद्र भी एक भव धारणकरके क्या मोक्ष जानेवाला नहीं ? इत्यादि. यहां भी लेखकने सिद्धांतकूं नहीं समझा है. नरकपर्यायमें नारकीका आकार बनाकर क्या भाविकालके तिर्थंकर पूजे जाते हैं ? या नैगम संकल्पकूं ग्रहण करनेवाली नयसे अर्हतादि अवस्था संकल्पकर पुजे जाते हैं ? यह नारकी तिर्थंकर होंगे ऐसा जानकरि नरकपर्यायमें इंद्रादिक देव पुजा करनेकुं जाते हैं क्या ? इसही प्रकार भाविनैगम नयसे इंद्रही क्या कोई भी हो मोक्षपर्याय संकल्पकरि पूजाकरी जाती है ? यदि मोक्ष जानेवाले वर्तमानमें कुछ भी करते हो पूज्य माने जाय तो बडा अनर्थका प्रसंग आवेगा !

कलहप्रिय नारद, पार्वती सहित रुद्र, तथा उसी पर्यायसे मोक्ष जानेवाले हिंसादि पापाचरण करते हुवे भी सीता संगलिये रामचंद्र, हनुमान, जम्बूकुमारादिकों को भी मानिये; फिर तो अन्य मत और जैनमत इनमें कुछ भी अंतर नहीं ! आगामी पर्यायमें मोक्ष जानेवाले निगोदिया पंचेंद्रि तिर्यंच, चतुर्थ नरक पर्यंत नारकी मनुष्य देव कितनेही होसक्ते हैं; उनकी भी उसी पर्याय सहितकी पूजा करिये! आगे आप लिखते हैं— संसारमें ऐसी एक दिव्यशक्ति० इत्यादि लिखकर ज्वालामालिनी आदिकी आराधना बताते हैं यह भी ठीक नहीं है.

पंचपरमेष्ठीवाचक मन्त्रोंसेही विद्यादेवता वशमें होती है. क्या विद्यानुवाद पढनेवाले साधु किसी देवीका आराधन पूजन करते हैं ? जिससे पांचसौ रोहिणी आदि महाविद्या क्षुल्लकाविद्या सिद्ध होती है. अक्षरोंकी सामर्थ्यसे अचेतन सचेतन पदार्थ नानारूप परिणमन करते हैं तथा द्वादशांगमें स्वरूप कथनकी अपेक्षा विष अमृत मारण ताडन

उच्चाटन, वशीकरण, अग्निप्रवेश, जलप्रवेश, आकाशगमनादि सर्व पदार्थोंके स्वरूप कारण बताये गये है. वर्तमान मंत्रशास्त्रोंमें भी यह विषयपाया जाता है. परन्तु यह विधिवाक्य नहीं है. ग्रहण और त्याग चरणानुयोगादिकोंसे मालुम होता है. क्या मांस खानेसे पेट नहीं भरता? या मधु मद्य जीवोंके मांसरूप औषधियोंसे रोग निवृत्त नहीं होता ? परन्तु सम्यग्दृष्टी योग्य उपाय करता है अयोग्य नहीं.

देखिये रावण, कुंभकरण, बिभीषण इन तीन भाईयोंने विद्या साधनकरी सब परमेष्ठिवाचक मंत्रोंसे. पद्मपुराणमें ऐसा नहीं लिखा है कि– विद्या सिद्ध करनेके लिये उन्होंने किसी देवीकी पूजा करी; यदि लिखा हो तो प्रगट करें. अतः यह सिद्ध होता है कि– सम्यग्दृष्टी परमेष्ठिवाचक मंत्रोंसे ही विद्या आदि सिद्ध करते हैं. किंच मंत्रशास्त्रमें अक्षरोंकी शक्ति भिन्न भिन्न निरूपणसे बहुतसे नाम होजाते हैं; उससे उस नामधारीकी पूजा करना यह तात्पर्य नहीं; किन्तु अक्षरोंकी शक्तिसे ही वह कार्य होता है. इसका सविस्तर खुलासा आगामी प्रगट किया जायगा.

आगे आप श्रीराजवार्तिकजीके अशरणानुप्रेक्षाके कथनको अधूरा उद्धृत करके ग्रंथके भावको छिपाया है. 'लौकिकशरण' अर्थात् शरीरादि परद्रव्यके बाह्य घातक जैसे– डाकू चोर आदि हैं उसी प्रकार बाह्यरक्षक राजा, वैद्य, देवादिक हैं; लौकिक अजीवशरण महलादिक हैं; ग्राम नगरादिक मिश्रशरण है. लौकिकशरणत्वेन उपास्यता होय तो ग्राम नगरादिक सर्वही उपास्य हुये. स्वयं स्वामीअकलंकदेव लिख रहे हैं– मृत्युको प्राप्त होताके इंद्रादिक भी शरण नहीं हैं. लोकोत्तर शरण सम्यग्दृष्टी के उपास्य आत्मशुद्धि के हेतु पंचपरमेष्ठी और उनके प्रतिम्बिंब निर्वाण क्षेत्रादि हैं. किंच यहां–शासनदेवता शरण है ऐसा विशेष शब्द भी नहीं है, मुख्यतया रक्षाका कारण स्वोपार्जित पुण्य-

कर्म है; जो अपनेकूं अन्य जीव सुख दुःख जीवन मरणको देनेवाले समझते हैं वे मिथ्यादृष्टी है. यदि दूसरा देनेमें समर्थ हो तब अपना किया कर्म निरर्थक होजाय. पूर्व कालमें मुनियोंने तथा श्रावकोंने जो प्रभावना करी है वह सब आत्मबलसे पंचपरमेष्टीकी भक्तिसे; न कि लौकिक शरणवाले देवताकी भक्तिसे. देखिये, प्रभावनामें अमृतचंद्राचार्य क्या लिखते हैं– आत्माका प्रभाव तो रत्नत्रय तेज करि प्रगट करना यह निश्चयप्रभावना है, अर व्यवहारप्रभावना दान देकर तपश्चरण कर जिनेंद्रकी पूजा सम्यग्ज्ञानादि कर जिनधर्मकी प्रभावना करें. अतः यह सिद्ध होता है कि– सम्यग्दृष्टीके उपास्य पंचपरमेष्ठी, जिनवाणी, जिनधर्म, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर ये सिद्धांत कथित नवदेवता हैं.

अब इसी अंकमें पं. पन्नालालजी सम्पादक– सं. जैन हि. के लेखपर विचार करते हैं. आप लिखते हैं– हम शासनदेवोंको अर्हंतके बराबर नहीं मानते. तो आप किसके बराबर मानते हैं? आचार्य, उपाध्याय, साधु, पंचमगुणस्थानवर्ति श्रावक, ऐलक, क्षुल्लक पर्यंत इनसे शासनदेवताको आप बराबर मानते हैं या ऊंचा नीचा? तथा शासन देवताका लक्षण संख्या भी आप क्या मानते हैं? सो भी लिखें तब उस पर विचार किया जाय.

आगे आप लिखते हैं– दामादके नाईको दामादका नाई समझकर वही भोजन दिया जाता है. इत्यादि यह दृष्टान्त भी पंडितजीने विषम ही दिया है. दामादके साथ नाई आदि आते हैं ऐसे अर्हंतके साथ कोई देवता आते है क्या? दामादके यहां श्वशुर जावें तब वे नाई आदि उनकी सेवा करते है; वैसे ही आपके माने हुए शासन देवता जब आप लोग नाईकी तरह भगवानके साथ उनके यहां जाते होंगे तब आपका भी सत्कार वे अवश्य करते होंगे.

यहां जंवाई अर नाईका सम्बन्ध कैसा सो पाठकगण विचार करें.

– –

आप लिखते हैं -शासनदेवोंका सत्कार इसलिये करना चाहिये कि-वे जिनेंद्रके भक्त हैं; जिनेंद्रभक्तत्वेन उनका सत्कार करते हैं. न कि व्यंतरादिदेवत्वेन. इससे यह अभिप्राय मालुम होता है कि-व्यंतरादिदेवत्वेन पूज्य नहीं; अर्थात् देवपर्यायत्वेनाति जिनेन्द्रभक्त हो वेही पूज्य नहीं देवपर्यायमें विशेषता नहीं. जिनेन्द्रभक्त सत्कारके पात्र हैं. तो इससे जिनेन्द्रभक्त देव हो, या मनुष्य हो, या तिर्यञ्च हो, कोई भी हो, जिनेन्द्रभक्तत्वेन सत्कारके पात्र हुये! यह सत्य साधन है; किंच जितने व्यवहारात्मक निश्चयात्मक सम्यग्दृष्टी हैं वे सर्व ही जिनेन्द्रभक्त हैं.

आगे आप श्रीत्रिलोकप्रज्ञप्तिग्रंथकी गाथा देकरि लिखते हैं.— शासनदेव जिनभक्त हैं. यद्यपि ऊपर गाथामें शासनदेव ये शब्द नहीं हैं. परन्तु पंडितजीने शासनदेव जिनभगवानके भक्त हैं ऐसा लिखही दिया है. तथा जिनभक्त अतएव सम्यग्दृष्टी है. गाथामें - सम्यग्दृष्टी हैं ऐसा शब्द नहीं है. परन्तु भक्त है अतएव सम्यग्दृष्टी है ऐसा हेतुनिर्देशात्मक वाक्यद्वारा पंडितजी जिनेन्द्रभक्ति और सम्यक्त इनमें हेतु हेतुमद्भाव स्थापन करते हैं, सो यह भी नियम नहीं है. जिनेन्द्रभक्त मिथ्यादृष्टी भी होसक्ते हैं. यदि आप निश्चयनयापेक्षया जिनेन्द्रभक्ति और सम्यग्दर्शनमें हेतु हेतुमद्भाव माने तो कोई दोष नहीं, परन्तु एतावता इंद्र, लौकांतिक, सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्रादिवत् निश्चयसम्यग्दृष्टी सिद्ध नहीं होसक्ते; निश्चयनयसे जिनेन्द्रभक्ति सिद्ध नहीं होनेतैं आप पंडितजी खुद जब इंद्रादिककूं साधर्मी मानते हैं. तब प्रत्यक्षाभावमें सत्कार कैसा? तथा साधर्मिका सत्कार जैनी जैनियोंका सामान्यताकूं लिये होता है जैसे- पंडितजीको यदि कोई "जुहारु" आदि शब्द कहते होंगे तब पंडितजी भी तो बदलेमें कहते हैं. इस प्रकार देवपर्यायमें सम्यग्दृष्टी देवोंको मनुष्यसम्यग्दृष्टी आहुति देवें तब देवसम्यग्दृष्टी मनुष्यसम्यग्दृष्टिकूं आहुति- यज्ञभाग भी देते हैं

क्या? यदि नहीं तो साधर्मिवत् सत्कार कहां रहा ? आगे आप लिखते हैं —महामुनि भी भूत, यक्ष, नाग आदिकोंको पूछकरि मठ चैत्यालय आदिमें प्रवेश करें, और वहांसे उसही शब्द द्वारा उनसे पूछकारि बाहर निकले. यह प्रमाण भी आपने मुनियोंके सत्कार करनेका असंबद्ध ही दिया है !

प्रथम तो आप लिखते हैं— जिनेन्द्रभक्तत्वेन सत्कारके पात्र हैं, यहां दृष्टांत सामान चर्याका दे रहे हैं ! क्या जहां जहां महामुनि जाते हैं, ध्यानादि करते हैं, वहां निवास करनेवाले सबही यक्ष भूत नाग आदि देव जिनेन्द्रभक्त हैं ? जिससे मुनि उनसे पूछकरि आते जाते हैं. वहां तो भाव यह है कि– मुनीश्वर शून्य गृहादिमें ध्यान करते हैं वहां व्यन्तरादिकोंके रहनेका भी संभव है; इस लिये उस व्यंतरको किसी प्रकार बाधा न होय इस ख्यालसे पूछकरि उस स्थानमें ध्यानादि करते हैं.

आगे आप लिखते हैं कि– त्रिलोकसार, आदिपुराणादि ग्रंथोंको कौन माईका लाल अप्रमाण कहनेके लिये कमर कसता है ? सो पंडितजी साहब त्रिलोकसार आदिपुराण आदि मूलसंघके दिगंबर ऋषियोंकरि प्रणीत ग्रंथोंको कोई भी जैनी अप्रमाण नहीं कहता; यदि नाम मात्र जैनी कहे तो वह जैनत्वसे सर्वथा बाह्य है. परन्तु आपलोगोंके किये अर्थोंको नहीं मानकरि ऋषिवाक्योंको माननेवाले मिथ्यादृष्टी नहीं होसक्ते ! आहुति प्रकणान्तिर्गत इंद्रादि शब्दोंके अर्थ जिनेंद्रही होते हैं, यह कईदफे लिखा जाचुका है फिर भी आप अपना हट न छोडे यह आपकी इच्छा.

आगे आप लिखते हैं– अग्निको पूजना आदिपुराणमें बताया है. यह ठीक परन्तु स्वयं स्वामी जिनसेनने तीर्थंकरादिकके कल्याणककी

हेतु आदि बताकरि समर्थन किया है. इस प्रकार उन्होंने इंद्र, चक्रवर्ति, श्रावक आदिकोंमें भी हेतु बताकरि पूज्यपणा स्थापित क्यों नहीं किया? करते तो जब उनको इनकी पूजा इष्ट होती किंतु वे तो स्वयं लिख रहे हैं कि– इन मंत्रोंसे सिद्धभगवान्का पूजन करें. ग्रंथोंके अर्थकूं पूर्वापर संबंध सहित विचारें. आप लिखते हैं– पंडित टोडरमलजीने जिन ग्रंथोंको प्रमाण माना है उन ग्रंथोंको पं. पन्नालालजी संघीने अप्रमाण कोटिमें डाल दिया है. आपने यह नहीं बताया कि–किस किस ग्रंथको पंडित टोडरमलजीने प्रमाण माना है? और पन्नालालजी संघीने अप्रमाण माना है?

देखिये पंडित टोडरमलजी मोक्षमार्गप्रकाशमें क्या लिख रहे हैं–व्यवहाराभास पक्षके जैनाभासोंके निरूपणमें कालदोषतें जिनधर्म विषै भी पापीपुरुषनिकरि कुदेव, कुगुरु, कुधर्म सेवनादिरूप वा विषय कषाय पोषणादिरूप विपरीत प्रवृति चलाइ होय ताका त्याग करि जिनआज्ञानुसार प्रवर्तना योग्य है. इहां कोई कहै–परम्परा छोडि नवीन मार्गविषै प्रवर्तना योग्यनाहीं. ताकूं कहिये है–जो अपनी बुद्धि नवीन मार्ग पकडे तो युक्त नाहीं; जो परंपराय अनादिनिधन जैन धर्मका स्वरूप शास्त्रनिविषैं लिखा है ताकी प्रवृत्ति मेटी बीचमें पापी पुरुषां अन्यथा प्रवृत्ति चलाई तो ताकूं परंपरा मार्ग कैसे कहिये? और ताकूं छोडि पुरातन जैनशास्त्रनिविषै जैसा धर्म लिख्या था तैसे प्रवर्तें तो ताकूं नवीन मार्ग कैसे कहिये?

और भी कई पापी पुरुषां अपना कल्पित कथन किया है अर तिनकूं जिनवचन ठहराया है. तिनकूं जैनमतका शास्त्र जान प्रमाण न करना; तहां भी प्रमाणादिक ते परीक्षा करि वा परस्पर शास्त्र नितैं विधि मिलाय वा ऐसे संभव है? कि नाहीं? ऐसा विचार करि

विरुद्ध अर्थको मिथ्याही जानना. जैसे— ठग आप पत्र लिखि तामें लिख-नेवालेका नाम किसी साहूकारका धऱ्या तिस नामके भ्रमते धनकूं ठिगावें तो दरिद्री ही होय; तैसे पापी आप ग्रंथादि बनाय तहां कर्त्ताका नाम जिनगणधर आचार्यनिका धऱ्या तिस नामके भ्रमते झूठा श्रद्धान करैं तो मिथ्यादृष्टी ही होय.

पाठक गणोंको यह ख्याल रहे कि—श्वेतांबर मतका खंडन पहले कर चुके हैं. हम पंडित पन्नालालजी सोनी आदिका ध्यान भी इस और आकर्षित करते हैं. आप सबही धान बाईस पसेरीवाली कहा-वतकूं चरितार्थ न करैं; मूलसंघके दिगंबराचार्यकृत ग्रंथोंको अर रक्ताम्बरादि जैनाभासोंद्वारा रचित ग्रंथोंको एक न करें. पंडित टो-डरमलजीके उपर्युक्त वाक्योंको गहरी दृष्टिसे विचारें. आगामी अंकमें चक्रेश्वरी आदिके विषयमें पंडित टोडरमलजीके वाक्य भी लिखे जां-यंगे तथा और भी इस विषयकूं खुलासा करेंगे.

कलकत्ता.
ता. २७।१०।२२

अलमिति विस्तरेण—
द॰ जयदेव जैन.

जैनमित्रके इसी अंकका क्रोडपत्र.

आगस्ट व सप्तंबर १९२२ के जैनबोधकमें श्री. पं. आप्पाशास्त्री उदगांववालेका "इंद्राय स्वाहा पर अभिप्राय" शीर्षक लेख प्रसिद्ध हुवा है उसका उत्तर—

शासनदेव--चर्चा.

[लेखक—श्री. पं. वनवारीलालजी, खेकडा—मेरठ.]

श्रीमत् आप्पाशास्त्री उदगांव निवासीके तरफसे जो लेख जैन-बोधकके द्वितीय तृतीय अंकोंमें प्रकाशित हुवा है, तिसमें प्रथम आप लिखते हैं—इंद्राय स्वाहा इसका अर्थ क्या करेंगे ? "एतन्नाम्ना एकोऽति दीर्घलेख १९ पृष्ठभरितः" इत्यादि संस्कृतमें है; तिसकी भाषा मैं सर्व साधारणके समझनेनिमित्त लिखता हूं. —

"इंद्राय स्वाहा इसका अर्थ क्या करेंगे इस नामकी एक अति दीर्घ १९ पृष्ट करके भरी हुई पंढरीआत्मज शंकरजीने हिंदी भाषामें प्रसिद्ध करी तिसके अंतमें— इस लेखपर विचार करके आपका अभि-प्राय भेजनेकी कृपा करें. ऐसा लिखकर मेरे पास भेजी है. तिसका विचार करके अपना अभिप्राय यथामति संस्कृत भाषाके विषय पूर्व आचार्य कृत शास्त्रोंके अनुकूल महाराष्ट्र भाषामें भावार्थ सहित लि-खता हूं सो प्रथम—'विघ्नेश्वरादयः' इसका निर्णय करके पश्चात् इंद्राय स्वाहा इसका अर्थ आगे लिखूंगा."

समीक्षा—उक्त १९ पृष्टकी पत्रिकामें "एतैः सिद्धार्चनम् कु-र्यात्" यह महापुराणके पर्व ४० श्लोक ७८ का चतुर्थ पाद है. इस-का अर्थ इन मंत्रोंकर सिद्धोंका पूजन करो. और 'इंद्राय स्वाहा' यह मंत्र भी सुरेंद्र मंत्रोंमें पृथक् मंत्र नहीं है. इन दो प्रश्नोंका उत्तर आज

तक आपके पक्षके विद्वानोंने किसीने भी नहीं दिया. क्योंकि मैंने जितने लेख पढे हैं मेरे देखनेमें नहीं आया और आपने भी नहीं लिखा किंतु १९ पृष्ठकी पत्रीमेंसे ८ पृष्ठ छोडकर ९ पृष्ठ पर जो ' विश्वेश्वरादयः ' का उन विद्वानोंके वाक्यसे निर्णय किया है कि जिन विद्वानोंके वाक्योंको प्रतिवादि अप्रमाण मानते हैं. क्योंकि अष्ट पृष्ठोंकी पत्रिकामें रा. रावजी सखारामजी दोषीने लिखा है--श्री सोमदेव और पं॰ आशाधरजी दोनों ग्रंथकार व्यभिचारके पोषक हैं इनके ग्रंथ विद्यार्थियोंके पठनक्रममें न रखने चाहिये इत्यादि.

एवं शंकरजीका किसी वक्तका लिखा हुवा लेख प्रकाशित किया है तातैं सिद्ध होता है कि--उक्त वक्ताओंके रचित ग्रंथोंमें इस शासन देव चर्चासे पहले ही प्रमाणताका संशय है.

किंतु इस दूषणकी निवृत्ति नहीं करके अपने पक्षकी पुष्टिके अर्थ उक्त विद्वानोंके रचे हुवे प्रतिष्ठापाठोंका प्रमाण ही दे रहे हैं. और प्रतिवादी उक्त विद्वानोंके ग्रंथोंमें दूषण दे रहे हैं तथाही श्री सोमदेव सूरीका वाक्य "वधू--वित्तस्त्रियौ मुक्त्वा" इत्यादि. इसका अर्थ ब्रह्मचर्याणुव्रती भी रंडी रख सकता है. और उसका समर्थन करनेवाले पं॰ आशाधरजी और ' इत्वरिका--गमन ' अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्रीके साथ संभोग करनेसे ब्रह्मचर्य खंडन नहीं होता. इत्यादि पूर्व कई लेखोंमें प्रकाशित होचुका है. सो आपने भी अवश्य पढे होंगे. सो तिनका उत्तर नहीं देकर उक्त विद्वानोंके रचे हुये प्रतिष्ठापाठोंके आधारसे ही निज पक्ष सिद्ध करनेकी चेष्टा की है.

और उक्त विद्वानोंके रचे हुये श्रावकाचार ग्रंथ प्रसिद्ध हैं. और गृहस्थके षट् कर्मोंमें प्रथम देवपूजा है. और श्रावकाचार ग्रंथोंका मुख्य विषय भी विवादस्थ देवपूजा ही है. किंतु आपने उक्त विद्वानोंके रचे हुये श्रावकाचारोंके प्रमाणसे भी शासनदेवपूजा पुष्ट नहीं की. तातैं निश्चय होता है कि-- उक्त श्रावकाचारोंसे भी शासनदेवपूजा

सिद्ध नहीं होती. और मुझे भी यह निश्चय है कि- श्रावकाचारोंमें शासनदेवोंको मुख्य अर्थ करके कहीं भी पूज्य नहीं कहे.

प्रश्न- क्या तुमने सर्व श्रावकाचार अवलोकन किये हैं ? उत्तर—नहीं किये; किंतु द्रव्यागमका विशेष्य श्रावकाचार सिद्धांत भाव आगमका निमित्त होनेसे उपचार कर प्रमाण है, निश्चय प्रमाण स्वरूप भावागमका विषय शासनदेवपूजा प्रतिषेध सो स्वार्थानुमान सिद्ध है सो प्रकाशित प्रतिवादियोंके लेखोंका उत्तर लिख कर पश्चात् प्रयोग स्वरूप परार्थानुमान कर निश्चय करूंगा तब विवाद शांत होगा. और जब तक शासनदेवपूजाकी विधिका प्रतिषेध और प्रतिषेधकी विधि शब्द आगमके प्रमाणसे प्रवर्ते है, तब तक विवाद शांत होना असंभव है. क्योंकि- शब्दआगममें अर्थ विवाद होता ही रहेगा. इति

अथवा प्रतिवादी विद्वानोंमेंसे किसीने भी अबतक श्रावकाचार ग्रंथोंके श्लोक या वार्तिक या पंक्तिके मुख्य अर्थसे यह पुष्ट नहीं किया कि- अमुक श्रावकाचारमें अमुक स्थानमें शासनदेवपूजा करना योग्य है. सर्व प्रतिष्ठाआदिकोंके मंत्रादिकोंसे उपलब्धिरूप अर्थकी खेंचातानी कर रहे हैं. तैसे आप भी ' विघ्नेश्वरादि शांतिहेतवः ' इस वाक्यके ' आदि ' शब्दसे शासनदेव भी ' शांतिहेतवः ' यह अर्थ निकालते हैं. क्या जिस सिद्धांतका यह वाक्य है तिसमें पूर्व किसी वाक्यका शासनदेव शांतिहेतवः यह मुख्य अर्थ है या नहीं है ? और जो है तो तिस वाक्यका ही आपको प्रमाण देना था; अन्य प्रतिष्ठापाठोंका प्रमाण क्यों दिया ? और जो नहीं है तो विना मुख्य अर्थके आपको उपलब्धि क्योंकर हुई ? और प्रतिष्ठापाठोंके भी प्रमाण वाक्योंके अर्थ आपने यथार्थ नहीं किये सो लिखिये.

प्रथम " विघ्नेश्वरादयः " शब्दका अर्थ जिनेश्वरादय, पंचपरमेष्ठी महापुराणकी टिप्पणीके आधारसे रा. शंकरजीने प्रकाशित किया था. तिस पर आपने 'शांतिहेतवः विघ्नेश्वरादयः ' इसका अर्थ विघ्नेश्वर शब्द

करके पंचपरमेष्ठी और ' आदि ' शब्द करके शासनदेवभी शांतिके हेतु हैं ऐसा किया है. तिसकी पुष्टिके अर्थ द्वितिय अंकमें श्रीमत् पं० आशाधरजी रचित प्रतिष्टासारकी पंक्ति लिखकर स्पष्टिकरणसें यह सिद्ध किया है कि-शासनदेवभी शांतिके हेतु हैं. सो पंक्ति यह है 'ॐ विश्वदेवताधिष्टितमहायंत्रप्राणभूतमूलमंत्रस्याभिधेयस्वरूपा अर्हत् परमेष्ठिनः सिद्धाः सूरयः पाठकेंद्राः सर्वसाधवश्च:। एते महानुभावाः समिद्धोमैराराधिताः प्रसन्नवंतो भवंतु तत्प्रसादादस्य यजमानस्य शांतिर्भवतु" इत्यादि.

समीक्षा-इन पंक्तियोंके स्पष्टिकरणमेंतो आपने 'तत्प्रसादात्' इस पदमें जो तत् शब्द करके " विश्वदेवतानाम् विश्वेश्वराणां वा " यह अर्थ किया हो व इसही अर्थको प्रमाण मानकर इस लेखमें ही रा. रावजी सखारामने जो नोट दी है सो अयुक्त है ! क्योंकि- यहां 'विश्वेश्वर' शब्द तो हैही नहीं! और जो 'विश्वदेवता' शब्दका पर्यायवाचि 'विश्वेश्वर' शब्द है ऐसा आपका अभिप्राय है; सोभी किसी कोशादिके प्रमाणसे सिद्ध नहीं किया! और 'विश्वदेवता' शब्दभी समासांतर्गत है तिसका भी ग्रहण नहीं होसक्ता. किंतु महामंत्रका अभिधेयस्वरूप जो पंचपरमेष्टी हैं तिनकाही वाचक तत् शब्द है. क्योंकि- समिधा होमकर आराधित पंचपरमेष्ठीही प्रसन्न होउ यह प्रार्थना है. सो तिनकेही प्रसादसै शांति होना युक्त है ! अर्थात् तत्प्रसादात् महामंत्रके अभिधेयस्वरूप जो अर्हतादि पंचपरमेष्टी हैं तिनके प्रसादसे यजमानादिकी शांति हो ऐसे यह प्रार्थना है.

सो इस प्रमाणसे तो यह निश्चय होता है कि- पंचपरमेष्ठीही शांतिके हेतु हैं. आपके पक्षका बाधक यह पमाण आपने स्वपक्षकी सिद्धिके अर्थ किस बुद्धिसे दिया? कारण यह है कि- न्यायशास्त्र अवलोकन नहीं किये ! प्रमाणसे पदार्थोंकी सिद्धि न्यायशास्त्रका विषय है इस प्रमाणसें ' विश्वेश्वर ' शब्दका अर्थ पंचपरमेष्ठी है यह निश्चय नहीं

होता. क्योंकि—महामंत्रका अभिधेय पंचपरमेष्ठी इस सूत्रमें मुख्यतासे कथन किये हैं. सो इन कुयुक्तियोंसे जनताको भ्रम उपजाना आप सारखे विद्वानोंको योग्य नहीं है !

आगे आपने यह प्रश्न लिखकर शासनदेवता शांतिके हेतु हैं. यह कहां कथन किया है ? उत्तरमें श्रीवसुनंदिरचित प्रतिष्ठापाठका श्लोक लिखा है. तिसका अभिप्राय यह है- 'सर्वे शासनदेवताः जिनप्रभोः प्रसादात् शांतिप्रदाः संतु' सो निश्चयमें सातावेदनीका उदय और व्यवहारमें जिनप्रभूके प्रसादसे सर्वही जड चेतन पदार्थ जीवोंको शांतिके हेतु होजाते हैं. तातें व्यवहारमें मुख्यता करके जिनभगवानही शांतिके हेतु हैं. सो मुख्यता करके जिनभगवानही शांतिके हेतु आपके उक्त प्रमाणसे सिद्ध है.

आगे आपने श्रीमत् आशाधर विरचित प्रतिष्ठापाठके आधारसे 'विश्वेश्वरादयः, अर्हदादयः' यह अर्थ करके 'आदि' पदसे सत्ताईस मंत्र लिखकर सबही चतुरनिकायके देवोंका पुजन करना पुष्ट किया है वे सत्ताईस मंत्र ये हैं— ओं ह्रां अर्हद्भ्यःस्वाहा १२ ओं ह्रीं सिद्धेभ्यस्वाहाः। ३ ओं ह्रूं सूरिभ्यःस्वाहा। ४ ओं ह्रौं पाठकेभ्यः स्वाहा। ५ ओं ह्रः सर्वसाधुभ्यः स्वाहा। ६ ओं ह्रीं जिनधर्मेभ्यः स्वाहा। ७ ओं ह्रीं जिनागमेभ्यः स्वाहा। ८ ओं ह्रीं जिनचैत्येभ्यः स्वाहा। ९ ओं ह्रीं जिनचैत्यालयेभ्यः स्वाहा। १० ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनाय स्वाहा। ११ ओं ह्रीं सम्यग्ज्ञानाय स्वाहा। १२ ओं ह्रीं सम्यक्चारित्राय स्वाहा। १३ ओं ह्रीं जयाद्यष्टदेवताभ्यः स्वाहा। १४ ओं ह्रीं रोहिण्यादिषोडशविद्यादेवताभ्यः स्वाहा। १५ ओं ह्रीं चतुर्विंशतियक्षेभ्यः स्वाहा। १६ ओं ह्रीं चतुर्विंशतियक्षीभ्यः स्वाहा। १७ ओं ह्रीं दशविधभवनवासिभ्यः स्वाहा। १८ ओं ह्रीं अष्टविधव्यंतरेंद्रेभ्यः स्वाहा। १९ ओं ह्रीं ज्योतिरिंद्रेभ्यः स्वाहा। २० ओं ह्रीं द्वादशकल्पवासिभ्यः स्वाहा। २१ ओं ह्रीं अष्टदिक्कन्यकाभ्यः स्वाहा। २२ ओं ह्रीं

दशदिक्पालकेभ्यः स्वाहा । २३ ओं ऱ्हीं अग्नीन्द्राय स्वाहा । २४ ओं स्वाहा । २५ भूः स्वाहा । २६ भुवः स्वाहा २७ । इन सत्ताईस मंत्रों करके चतुरनिकायके देवोंमें कोई क्रूरदेव अथवा मिथ्यादृष्टि देव शेप नहीं रहा जिनका पूजन न हो ! इन सत्ताईस मंत्रों करके पूजन करनेवाले पंचम गुणस्थानवर्ती सागार श्रावक प्रतिष्ठाचार्य नैमित्तिक पूजन करते हैं. शासनदेवोंकी भक्तिके वश होकर आपको ' क्रूरास्तु देवता हेयाः ' इस पादका स्मरण नहीं हुवा ! खेद है कि, प्रसिद्ध जो प्रतिष्ठापाठ हैं सो किस बुद्धिसे रचे हैं ? मुझे मंद बुद्धिको यह समझमें नहीं आता. मुझे तो रत्नकरंड श्रावकाचार और पं० मेधावीकृत धर्मसंग्रह श्रावकाचारके कथनानुसार प्रतिष्ठापाठ अप्रमाणही प्रतीत होते हैं.

आप भी पक्ष छोडकर विचार करें. क्योंकि—धर्मसंग्रह श्रावकाचारके अध्याय ९ श्लोक ३४ में जो पूज्य देवका लक्षण कहा है सो श्लोक यह है—पुज्योर्हन्केवलज्ञानदृग्वीर्यसुखधारकः । निःस्वेदत्वादि नैर्मल्य मुख्यकैः संयुतो गुणैः इति—इस लक्षण रहित प्रतिष्ठापाठोंमें जो शासनदेवोंको पूज्य कहा है सो कैसे प्रमाण माने जावे ? अथवा प्रतिष्ठापाठोंमें जो मंत्र कहे हैं और प्रतिष्ठाचार्य उक्त मंत्रो करके विघ्नोंके नाश करनेके अर्थ पूजन करता है सो विघ्नोंका विध्वंस मंत्रत्व शक्तिसे होता है या मंत्रों करके आव्हानन करनेसे शासन देव प्रसन्न होकर विघ्नोंका नाश करते हैं ? जो मंत्रत्व शक्तिसे विघ्नोंका विनाश होता है तो मंत्र वाक्योंके प्रमाणसे शासनदेवोंको पुज्य पुष्ट करना व्यर्थ है, और जो शासनदेव विघ्नोंका विध्वंस करते हैं तो मंत्र वाक्योंमें मंत्रत्वशक्तिका मानना व्यर्थ ठहरेगा. और जो कहो कि—मंत्रत्वशक्तिके प्रभावसेही शासनदेव आकर विघ्नोंकी शांति करते हैं तो अर्हतादिकवाचक मंत्रवाक्योंके प्रभावसेही अर्हतादिक आकर विघ्नोंकी शांति करते होंगे; ऐसा मानना होगा सो असंभव है. और

प्रतिष्ठापाठोंका इष्ट प्रयोजन विघ्नोंकी शांतिपूर्वक प्रतिष्ठासमाप्त होनेका है.

शासनदेवोंकी पुजा करनेका उपदेश नहीं है. प्रतिष्ठापाठ उपदेशकशास्त्रोंकी कोटिमें नहीं. उपदेशकशास्त्र–श्रावकाचार आदिही हैं. तिनका उपदेश देना और आचरन करनाही सम्यक् आचरन है. और संबंधाभिधेय शक्यानुष्ठान इष्टप्रयोजन समझकर ही शास्त्रोंके चिंतवन मनन श्रवण करनेसेही सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होती है यह आज्ञा ग्रंथकारोंकी है, अन्यथा नहीं. तातैं जो प्रतिष्ठाचार्य प्रतिष्ठाकी निर्विघ्न समाप्तिके अर्थ मंत्रोंको शुद्ध उच्चारणा करते हुये अर्हंतोंकी पुजा करते हैं. और मंत्रवाक्योंकि अभिधाशक्तिपर ध्यान नहीं देते तिनके मंत्रत्वशक्तिके प्रभावसे निर्विघ्न प्रतिष्ठाकी समाप्ति होती हैं.

देखो श्रीभक्तामरस्तोत्रकी ४८ काव्योंमें अभिधाशक्तिसे स्तुति तो एक श्रीआदिनाथ भगवानकी ही है और मंत्रत्वशक्तिके प्रभावसे भिन्न २ विधान करके जाप करनेसे भिन्न २ कार्यके साधक होते हैं. तातै उपदेशक शास्त्रोंमें अभिधाशक्तिकी मुख्यता है. और मंत्रवाक्योंमें मंत्रत्व शक्तिकी मुख्यता है. किसी पदार्थकी सिद्धिमें मंत्रवाक्योंसे प्रमाण देना अयुक्त है! और श्री भक्तामरस्तोत्रमें दोनों शक्तिकी मुख्यता है जिस समय पाठक जिनबिंबके सन्मुख उपस्थित होकर अंजुली जोडकर पाठ पढता हुवा श्रीऋषभदेव भगवानकी स्तुति करता है, अर्थ गुणोंका स्मरण चिंतवन करता है, तब अभिधाशक्तिकी मुख्यतासे पुण्यका बंध होता है.

और जिस समय मंत्रसाधक इष्टप्रयोजनकी सिद्धिका कारण विशेष्य काव्यका विधिपूर्वक अनुष्ठान करता हुवा शुद्ध शब्दोंका उच्चारण करता हुवा किसी विशेष्य काव्यका जाप्य करता है, तब मंत्रत्वशक्तिकी मुख्यताकरही मंत्र सिद्ध होता है. तातैं भाषा भक्तामर पाठसे स्तुतिही भगवानकी कीजाती है, क्योंकि संस्कृत भक्तामरकाही

अर्थ तिसमें है. मंत्रत्व शक्ति नहीं है. तातैं मंत्र नहीं कहिये है और न विधि पूर्वक जपे हुवे मंत्रकी सिद्धि करसक्ते हैं. तातैं श्रीमत् जिनसेनाचार्यने माहापुराणमें शब्दनिर्देश करकेही मंत्रोंका कथन किया है. देखो पर्व ४० श्लोक ५ का अर्थ चतुर्थी अंत 'नीरज' शब्दको नमः शब्द सहित पढकर जलसे भूमी शुद्ध करनी. भूमीकी शुद्धि होना इष्टमंत्रका फल है. " नीरजसे नमः " इस मंत्रका कर्ममल रहित अर्हतके अर्थ नमस्कार यह अर्थ समझकर भूमि शुद्ध नहीं है अचेतन होनेसे और प्रतिष्ठाचार्य अर्थ समझें और भूमि शुद्ध हो ऐसा भी नहीं होसक्ता क्योंकि जो समझता है तिसकोही ज्ञान होता है सो ज्ञान भूमीकी शुद्धिका कारन नहीं किंतु मंत्रत्व शक्तिकाही शुद्धिका कारन है.

जैसे विषवेदनाके दूर करनेको जो मंत्रवाक्य उचारण किये जाते हैं तिन वाक्योंमें जो विषवेदना दूर करनेकी शक्ति है तिस शक्तिके प्रभावसेही विषवेदना दूर होती है. न तु अभिधाशक्तिके प्रभावसे. जैसे—कोई चतुर वैद्य जिस व्याधिकी निवृत्तिके लिये जो नुसखा प्रयोग बनाता है तो जिन २ औषधियोंके संयोगसें व्याधि निवृत्त होती है तिन२ औषधियोंकाही संयोग करता है. तिन कटुक मिष्ट रसभर या आस्वादपर कुछ ध्यान नहीं रखता. और जो रोगी भक्षण करता है वो भी रोगकी निवृत्तिके अर्थही सेवन करता है. न कि तिन आस्वादनके अर्थ! तैसेही जो विद्वान जिसकार्यके अर्थ जो मंत्रवाक्य रचता है सो कार्यकी साधक मंत्रत्वशक्ति जिन२ अक्षर पदोंके संयोगमें व्यक्त होती है तिन२ पदोंको मिलाकर पद या वाक्य रचता है तिसकी अभिधाशक्तिपर कुछ ध्यान नहीं देता. और जो साधक मंत्रके फलकी प्राप्तिके अर्थ मंत्रोंका जाप्य करता है, सोभी मंत्र वाक्योंकों शुद्ध उचारण करता है. अर्थका चिंतवन मनन नहीं करता. सोई स्वामी समंतभद्राचार्यनेभी रत्नकरंड श्रावकाचारमें—अक्षरन्यूनमंत्र विषवेदनाको दूर करनेको समर्थ नहीं हैं ऐसाही कहा है.

और श्रीमज्जिनसेनाचार्यनेभी महापुराण पर्व ४० में मंत्रोंका शब्द निर्देश करकेही कथन किया है अर्थपर ध्यान नहीं दिया सो पर्व ४० श्लोक ३२ वां यह है—स्वाहांतं सत्यजाताय पदमादावनुस्मृतं। तदंतमर्हज्जाताय पदं स्यात्तदनन्तरम् ॥ भावार्थ-श्रीभरत महाराजने जो उपासकाध्ययन सप्तम अंगके मंत्र जो श्रावक ब्राह्मणोंको अपने मुखारविंदसे उपदेश किये हैं तिन मंत्रवाक्योंका शब्द निर्देशही किया है. कैसे सो कहिये— स्वाहांतम् तज्जाताय पदम् आदौ अनुस्मृतं इस प्रकार पूर्वार्द्धके पदच्छेद हैं सो तिनमें स्वाहांतम् इस पदका 'स्वाहा' शब्द है अंतमें जिसके ऐसा बहुव्रीहि समास हुवा. सो बहुव्रीहि समासमें अन्य पुरुष प्रधान होता है. सो 'स्वाहा' शब्द तो प्रकृतमें जो द्रव्य होमये हैं उसका वाचक है. और 'अंत' शब्द आखिरका वाचक है. सो दोनों अर्थोंसे अन्य सत्यजाताय स्वाहा इस मंत्रके अंतमेंही 'स्वाहा' शब्द है सो बहुव्रीहि समासमें प्रधान है. किंतु और मंत्रोंके अंतमें भी स्वाहा शब्द है तिनकी निवृत्तिके अर्थ सज्जातायपदम् आदौ ये पद हैं अर्थात् जिस स्वाहा शब्दकी आदिमें सज्जाताय पद हो सो 'सज्जाताय स्वाहा' यह ही मंत्र हुवा. और 'अनुस्मृतं' इस पदमें जो अनु शब्द है तिसका अनुकूल अर्थ है सो उपासकाध्ययन सप्तम अंगके अनुकूल सुमरण करो. अथवा श्रीभरत महाराजके वचनोंके अनुकूल सुमरण करो.

इस प्रकार सर्व मंत्रोंका शब्द निर्देश करके ही आचार्योंने कथन किया है. शब्द निर्देश करके मंत्र वाक्योंके पदोंका स्वरूप दिखानेसे आचार्यका यह ही अभिप्राय व्यक्त होता है कि-मंत्रवाक्योंका उच्चारण करके सिद्धोंको आहुति देनेसेही आधानादि क्रियाओंकी सिद्धि होगी. पर्व ४० में जो मंत्रवाक्य हैं सो श्रीमत् भरत महाराजने उपासकाध्ययन नामा सप्तम अंगकेही निज मुखारविंदसे उच्चारण किये हैं सो मंत्रवाक्य द्वादशांगके अवयव हैं. और श्रीमत् कुंद-

कुंदाचार्यवरके पश्चात् अंग ज्ञानकी व्युच्छित्ति हुई. तातैं मंत्रोंके भी अर्थका ज्ञान प्रमाणभूत नहीं होसक्ता तातैं किसी भी पदार्थकी सिद्धी-में मंत्र वाक्योंका प्रमाण देना युक्त नहीं है. किंतु प्रमाणभूत जो सकलादेश विकलादेश वाक्य हैं तिनकर ही अर्थकी सिद्धी करनी युक्त है. यद्यपि विभक्ती अंत पदोंका समुदाय ही मंत्रवाक्य हैं और शुभ ध्यानकी प्रवृत्तिके अर्थ विद्वानोंने शब्द शास्त्रोंकी आम्नाय अनुकूल मंत्रवाक्योंके अर्थ भी किये हैं और तिन अर्थोंके चिंतवन मनन करनेसें स्वाध्याय नामा शुभ ध्यान होता भी है.

और ध्यानका ध्येय पंचपरमेष्ठी हैं शासनदेवता नहीं सो आपने जैनहितेच्छुके द्वितीय अंक पृष्ठ २५ पर लिखा है--- अनगार धर्मामृते इति कथितं तत्तस्मात्कारणादनगाराणां मुनीनां वा परमात्म ध्यानं कुर्वतां अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधवं एव न तु शासनदेवताः परमात्मध्यानहेतवः स्पष्टमिदम्। अर्थ—अनगारधर्मामृत नामा शास्त्रमें यह कथन किया है सो तिस कारणसे अनगार श्रावकोंके और मुनिश्वरोंके परमात्माका ध्यान करते संते अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधुही ध्यानके हेतु हैं, शासनदेवता ध्यानके हेतु नहीं हैं; ये स्पष्ट हैं उक्त पृष्ठपर यह भी लिखा है– अर्हदादयः पंचधेयाः अर्हतादि पंचही धेय हैं इस हेतुसे पूर्व विद्वानोंने मंत्रवाक्यस्थ सौधर्मादि पदोंका प्रसिद्ध अर्थ त्याग कर शब्दोंकी अभिधालक्षण व्यंजना शक्तिकी मुख्यता करके अर्हतादि अर्थ किये हैं सो ही परंपराय मोक्षका कारण शुभोपयोग स्वरूप इष्ट प्रयोजनकी सिद्धीके हेतु हैं.

आपके वचनानुकूल प्रसिद्ध अर्थ करनेसे शुभ ध्यान नहीं होता शासनदेवोंको ध्यानके हेतु नहीं होनेसे अत्र एवकारः अन्ययोग्य व्यवच्छेदबोधकः विशेष्य संगतत्वात् अयोग्य व्यवच्छेदोनामः विशेषभिन्नतादात्म्यादि व्यवच्छेदः प्रकृतेविशेष्यम् पंचपरमेष्ठि तद्भिन्नशासनदेवतादिः तन्नैवकारणे पंचपरमेष्ठि भिन्नतादात्म्याभावः परमात्मध्यान

हेतौ बोध्यते इति प्रकृतेच कार्यस्य कारणे उपचारात् तस्मात् पंचपरमेष्ठि एव ध्येयाः तथा च तत्रैवपृष्टे तव लिखितम् भवान् अर्हदादयः पंचध्येयाः अस्य यथार्थ निर्णय इत्थम्— अर्हदादयो अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधवः एते पंचध्येया ध्यातुं योग्या इति। भावार्थ ये है कि— परमात्माके ध्यानके हेतु पंचपरमेष्ठि हैं और ध्यानके हेतु होनेसे ही व्यवहारनयसे पंचपरमेष्ठि ध्येय हैं. अर्थात् परमात्माका ध्यान करनेवाले उत्तम प्रतिमाधारी श्रावक—अनागार और अनागार—मुनिकी अपेक्षासे पंचपरमेष्ठी भी ध्येय हैं.

तातैं पूर्वविद्वानोंने जो महापुराणोक्त मंत्रोंके अर्थ किये हैं सो पंचपरमेष्ठिके ध्यानकी सिद्धिके अर्थ किये हैं. तदनुकूल मंत्रोंका अर्थ चिंतवन मनन करनेसे परमात्म ध्यानका हेतु पंचपरमेष्ठिका ध्यान परंपरायमोक्षका कारण सिद्ध हो है. और आपके कथनानुसार उक्त मंत्रोंका शासनदेव अर्थ करनेसे शासनदेवोंकी ऐश्वर्य सुख संपदा भोगोपभोग अप्सरा इंद्राणी आदिकोंका सुमरण चिंतवन मनन होनेसे संसारके कारण आर्त रौद्र ध्यानहीकी वृद्धि होगी. तातैं आत्महितके इच्छुक विद्वानोंको आपके किये हुये अर्थ अनादरणीयही हैं. इस प्रकार करके स्वपक्ष बाधित प्रमाण आप किस बुद्धिसे देते हैं? इसका कारण पक्षपातही है. !

और आपने हरएक प्रतिष्ठापाठोंसे शासनदेवोंको शांतिके हेतु पुष्ट किये हैं सो प्रकरण विरुद्ध है! क्योंकि प्रकरण विवादस्थ यह है कि—श्रावकोंको शासनदेवकी पूजा करनी चाहिये या नहीं? और शांतिके हेतु होनेसे भी शासनदेव पूज्य नहीं होसक्ते; परम्परायमोक्षका कारण जो धर्मध्यान हेतु होनेसे श्री अर्हंतादि ९ देवही पुजने योग्य हैं. सो अनुमान सिद्ध है अर्हंतादयः ९ देवा पूजनीया ध्यानहेतुत्वात् यत्र न ध्यानहेतुत्वं तत्र न पूजनीयत्वम्। यथा हरिहरादयः तथा च ध्यानहेतुत्वाभाववान् शासनदेवास्तस्मात् न पूजनीया इति अत्र

सपक्षाभावतः केवल व्यतिरेका एव परार्थानुमान प्रयोगाः शासनदेवेषु ध्यानहेतुत्वाभावः न तु शासनदेवाः इति उक्तवचनादेवसिद्ध इति। इस प्रकार अनुमानसिद्ध ९ देवही पूजनीय हैं. सो कौन—अर्हतादयः पंच, जिनबिंब, जिनसिद्धांत, जिनगृह, जिनधर्म सो प्रसिद्ध हैं. और इनसे भिन्न कुलिंगी कुदेव पुजने योग्य नहीं हैं, सो आपने पं० आशाधर सूरिविरचित अनगार धर्मामृतका श्लोक जैनबोधकके द्वितीय अंक पृष्ट २८ पर लिखा है किन्तु तिसका अर्थ संस्कृतटीकाकारोंने स्पष्ट किया है सो आपने लिखा है; तथापि आप मूल और टीकासे विपरीतही पक्षपातके वश होकर अर्थ करते हैं. सो पूर्व 'इंद्राय स्वाहाके अर्थपर विचार' इस शीर्षकके लेखमें रा. शंकरजीने यथार्थ निर्णय किया है सो आपने अवश्य पढा भी होगा, किन्तु फिर भी आप विपरीतताको नहीं त्यागते !

अब मैं भी उक्त श्लोक और टीकाका भावार्थ लिखता हूं. श्लोक यह है—श्रावकेणापि पितरौ गुरू राजाप्यसंयताः। कुलिंगिनः कुदेवाश्च न वंद्या सोऽपि संयतः॥ इति अस्य टीका न वंद्याःके पित्रादयः केन श्रावकेणापि यथोक्तानुष्टाननिष्टेन सागारेणापि किं पुनः अनागारेणेत्यपि, शब्दार्थः—माता च पिता च पितरौ, गुरुश्च गुरुश्च गुरू दिक्षागुरु शिक्षागुरुश्च, राजापि किंपुनरमात्यादिरित्यपि शब्दार्थः। कुलिंगिनः तापसादयः पार्श्वस्थादयश्च। कुदेवाःरुद्रादयः शासनदेवतादयश्च। तथासोपि शास्त्रोपदेशाधिकारी श्रावकोपि न वंद्यः कैः संयतैः इति। कुलिंगिनः कुदेवाश्च। मूल श्लोकके इन दो पदोंका आपने यह भाव व्यक्त किया है.। कुलिंगिनः तापसाः, कुदेवाः रुद्रादयः मिथ्या आगमेवर्णिता अर्थात् मिथ्याशास्त्रोंमें कहे जो गजचरमके धारी तापस और रुद्रादि वाराहादि कुदेव और च शब्दका पर अर्थ मानके तिनसे परः जिनशासनदेवता आदिके श्रावकोंकु भी वंदने योग्य नहीं है। फिर संयमके धारी मुनि-

जन अनागार एकादश प्रतिमाधारी श्रावक तिन कुलिंगी और कुदेव जिनशासनदेवताकी कैसे वंदना करे ? अर्थात नहीं करें. इति। और टीकाकार उक्त पदोंका अर्थ करते हैं कि—कुलिंगिनः तापसादयः पार्श्वस्थादयश्च। कुदेवा रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च इति। सो रा० शंकरजीने टीकाकारके पदोंको 'च' शब्दका समुच्चय अर्थ करके यह अर्थ किया कि—रुद्रादिक कुदेव हैं; च पुनः शासनदेवतादिक कुदेव हैं. तिसपर तो आप लिखते हैं कि—रा० शंकरेण कृतोऽर्थोऽनर्थकः अर्थात् रा० शंकरजीका किया अर्थ अनर्थ है. नहीं २ आपका किया मूल श्लोकका अर्थही अनर्थ है. !

क्योंकि मूल श्लोकमें जो कुलिंगिनः कुदेवाश्च इन पदोंमें जो 'च' शब्द है तिसका संबंध न वंद्याः क्रियाके साथ है. जिसका यह अर्थ होता है कि— कुलिंगी वंदने योग्य नहीं हैं. च पुनः कुदेव वंदने योग्य नहीं है. और टीकामें— कुदेवाः रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च इनमें जो च शब्द है तिसका संबंध 'कुदेवाः' इस पदके साथ है; तिसका यह अर्थ होता है कि— रुद्रादिक कुदेव हैं, च पुनः शासनदेव कुदेव हैं.

इस प्रकार टीकाकारके अभिप्रायके अनुकूल जो रा० शंकरजीने अर्थ किया है सो यथार्थ है. और आपने जो टीकाकारके अभिप्रायको छोडकर मूल श्लोकके कुलिंगिनः कुदेवाश्च इनमें 'च' शब्दका पर अर्थ करके यह अर्थ किया है कि— कुलिंगिनः तापसादयः कुदेवाः रुद्रादयः तिनसे परः जिनशासनदेवतादयः सो ये तिनों पदोंका संबंध एक 'नवंद्याः' क्रियापदकी साथ विना 'च' शब्दके कैसे होसक्ता है? नहीं होसक्ता. क्योंकि— जब तीन कर्तावाचक पदोंका एक क्रियावाचक पदकी साथ अन्वय करोगे तब दो 'च' शब्दोंकी या 'अपि' शब्दोंकी कांक्षा रहेगी. कैसे सो कहिये है— कुलिंगिनः न वंद्याः। च पुनः कुदेवा न

वंद्याः । च पुनः शासनदेवाः न वंद्या इति. सो मूल श्लोकमें दो 'च' नहीं है. तातैं आपका अर्थही अनर्थ है ! जो आपकी बुद्धिमें टीका अप्रमाण है तो आपको लिखना नहीं था; और जो प्रमाण है तो तिसके अनुकूल अर्थ करते अथवा मूलका ही यथार्थ अर्थ करते. !

पुनः उक्त अभिप्रायका खुलासा करता हूं. उक्त श्लोक और टीकाका जो आपने स्पष्टिकरण लिखा है तिसमें यह पंक्ति है- कुदेवाः रुद्रादयः अस्य पदस्य शासनदेवतादयः इति रा० शंकरेण कृतोऽर्थोऽनर्थकः । अर्थ- ' कुदेवा रुद्रादयः ' इस पदका शासनदेवतादिक यह अर्थ रा. शंकरजीने किया है सो अनर्थ है. सो शास्त्रीजी ! रा. शंकरजीने उक्त पदोंका अर्थ निज पत्रिकाके पृष्ट ३० में इतने विस्तारसे टीकाकारके अभिप्रायानुकूल लिखा है कि, जिसको मूर्ख भी यथार्थ समझ सक्ता है कि- कुदेवाः रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च । यह टीकाकी पंक्ति है. इसका यह अर्थ लिखा है कि- रुद्रादिक कुदेव हैं च पुनः शासनदेवतादि कुदेव हैं. इस पंक्तिका आप यह अनर्थ समझकर 'कुदेव शासनदेव हैं ऐसा दूषण देते हैं' सो यह आपका छल है! अभिप्रायान्तर करके कथन किये हुये शब्दोंका अर्थान्तर करके दूषण देना आप सरिखे विद्वानोंको योग्य नहीं है ! कारणकि- शासनदेव कुदेव हैं यह टीकाकारके अनुकूल रा० शंकरजीका अभिप्राय है; सो योग्य है.

किंतु 'कुदेवाः' इस पदका अर्थ शासनदेवही है यह नहीं करते; कुदेव रुद्रादिकभी हैं और शासनदेवतादिक भी हैं यह अर्थ करते हैं. और आपने उक्त श्लोकमें 'श्रावकेणापि' यह पद दिया है सो टीकाकार इसका यह विवेचन करते हैं- श्रावकेणापि यथोक्तानुष्ठाननिष्ठेनापि सागारेणापि । अर्थ- पहले जो नौ प्रतिमाका स्वरूप कह आये हैं तिसको पालन कर्ता संवा सागार दशमप्रतिमाधारी श्रावकों करके भी माता-

पिशादि वंदने योग्य नहीं है. अर्थात् श्रावक पदका अर्थ तो टीकाकारके अनुकूल किया और उक्त मूल श्लोकोंके कुलिंगिनः कुदेवाश्च इन पदोंका अर्थ टीकाकारके अर्थको छिपाकर निज अभिप्रायके अनुकूल किया! सो पंक्ति यह है— कुलिंगिनः तापसाः । कुदेवाःरुद्रादयः मिथ्यागमे वर्णिता च परं जिनशासनदेवतादयोपि न वंद्यास्तर्हि संयतैः कथं वंद्या इति । अर्थ—मिथ्याआगममें जिनका वर्णन है कुलिंगि तो तापस और कुदेवरुद्रादिक च परं कहिये मिथ्या आगममें जिनका वर्णन नहीं है सो 'च'पदकर ग्रहण किये जिनशासनदेवतादिक उक्त श्रावकके वंदने जोग नहीं हैं तो संजमीयोंके वंदने योग्य कैसे हों?

और मूल श्लोकमें 'सोऽपि' यह पद है तिसका अर्थ टीकामें लिखा है. तथा सोऽपि शास्त्रोपदेशाधिकारी श्रावकोपि नवंद्यः कैः संयतैः अर्थ— शास्त्रोंके उपदेशका अधिकारी जो श्रावक है, सो भी संयमीयोंके वंदवे योग्य नहीं है. सो यह अर्थ मूल और टीका दोनोंमेंसे उडा दिया! अर्थात् प्रथमतो मूलका अर्थ नहीं लिया! टीकाका लिया! दूसरे टीकाका अर्थ लीया मूलका नहीं लिया! और तीसरे दोनोंका नहीं लिया! सो शासनदेवोंकी भक्तिरूपी पिशाचनीकी साहायतासे आपने निज पक्ष यह दृढ किया कि— पंडित आशाधर सूरीने इस श्लोकमें शासनदेवतावोंके कुदेव नहीं कहा. शास्त्रीजी उक्त श्लोकके अर्थकी खेंचातानीकरके आपने यह ही तो निश्चय किया है कि— शासनदेव कुदेव नहीं हैं! किंतु विवादस्थ जो शासनदेवोंमें पुज्य भाव तिसका तो मुख्य अर्थ करके निषेधकही है आपके अभिप्रायके अनुकूल कुलिंगि और रुद्रादिक कुदेव 'च' शब्द कर शासनदेव सागार श्रावक और अनागार श्रावक और मुनिजनोंकरके वंदवे योग्य नहीं हैं. !

इस प्रकार आपके वाक्योंके मुख्य अर्थसे उक्त श्लोक आपके मूल पक्षका बाधक है. सो निजपक्षकी सिद्धिके अर्थ प्रमाण देना कितनी भूल है! और शास्त्रीजी! एक सिद्धांतके माननेवाले साधर्मि जनोंकी परस्परमें–विजिगीपुकथा योग्य नहीं किंतु वीतरागकथा होनी चाहिये जिससे वात्सल्य अंगकी वृद्धि होकर सम्यक्त निर्दोष हो! ॥ इत्यऽपूर्णम् ॥

खेकडा (मेरठ)
पौष शु. १ वीर नि. २४४८ } ह. बनवारीलाल जैन,

क्या विना कलह धर्मचर्चा नहीं होसकती ?

शासनदेवताओंका पूजन करनेमें दोष है या नहीं ? और कौन करता है ? और कौन न करें ? इस वावतकी चर्चा अखवारोंमें चली है. उसमें कोई कोई लेखक करडे शब्दोंका वर्ताव करने लगनेसे वह चर्चा कलहरूप दीखने लगी है ! जिससे हाथरसके मासिक पत्र 'जैनमार्तण्ड' ने इशारा भी दिया है कि- यह चर्चा वंद होनी चाहिये. और उसका इशारा देना भी योग्य है; क्योंकि— धर्म चर्चामें जव झगडा खडा होजाय तो ऐसी धर्मचर्चा भी न होनी अच्छी ! लेकिन् धर्मचर्चा करते समय झगडा जो होता है सो भाषासमिति तरफ दुर्लक्ष करनेसे असभ्य शब्दोंका वर्ताव करके सामनेवालेपर कटाक्ष भाषामें आक्षेप किये जाते हैं जिससे होता है. उदाहरणार्थ— " क्या मुनि झख मारते हैं. ? " " शासन देवताओंको ठोकरोंसे ठुकरा रहे हैं " " हजार वार सिर पटकनेपर भी अर्थ नहीं वदलता. " " वीसपंथीयोंने अपनी निंदा अपने ही मुखपत्र [जैनमित्र] में सुनकर ढकनीमें नाक डुवोकर सो जाना चाहिये " इत्यादि असभ्य शब्दोंका प्रयोग पण्डित लोक जव करते हैं तव यह झगडा वढ जानेका भय पैदा होता है ! यदि कपायवश न होकर और ज्ञानमदको छोडकर सभ्य शब्दोंमें चर्चा करते रहें तो कलहका संभव ही नहीं. जैसे— " क्या मुनि झख मारते हैं ? " इसके जगे " मुनि क्या करते हैं ? " और शासनदेवताओंको ठोकरोंसे ठुकरा रहे हैं. " इसके जगे " शासनदेवताओंका आदर सत्कार नहीं करते. " तथा " हजार वार सिर पटकने पर भी अर्थ नहीं वदलता " इसके एवजमें " व्याकरण न्यायसे अर्थ नहीं वदलता " इत्यादि सभ्य शब्दोंके

वाक्य देनेसे काम चल सकता था ! ऐसा इशारा पण्डित लोगोंकू देनेके हेतुसेही श्रीयुत जयकुमारजी चवरेने बंबईप्रांतिक सभाके नातेपुतेके अधिवेशनमें सभापतिके भाषणमें दो शब्द कहे थे. उसके ऊपर खं. जै. हि. में पं. धन्नालालजीने— पंडितोंके कौनसे असभ्य वाक्य हैं सो बतलानेकी मांग कीई थी. जिसपर चवरे साहबने अलग अलग पंडितोंके पंद्रह वीस वाक्य बताये थे.

यद्यपि श्रीयुत जयकुमारजी चवरे बी. ए. बी. एल. वकील हैं, तो भी उनका अभिप्राय पंडित दलके अभिप्रायोंके अनुकूल जितना है उतना बाबू दलके अभिप्रायोंके अनुकूल नहीं है. वे विधवाविवाहके निषेधक हैं; शासन देवताको पूजनेवाले हैं; पंचामृताभिषेक करनेवाले हैं; भट्टारकोंको माननेवाले हैं; जातिभेदका पालन करनेवाले हैं; इत्यादि बातोंपरसे पण्डितदलके अभिप्रायानुकूल उनको विचार होनेपर भी पं. पन्नालालजी सोनी और पं. वंशीधरजीने उनके इशारे ऊपर कुछ ध्यान नहीं दिया; और उलटा उनके ऊपरही टूट पडे ! जिससे निराश होकर उनको आखिरमें लिखना पडा कि—" पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम् ॥ " यह श्लोकार्ध मूर्खोंके लिये है ऐसा इसका पूर्वार्ध— " उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शांतये ॥ " ऐसा देखनेसे मालुम होता है. सो उनको पंडितोंके वास्ते लेना पडा !

' जैनसिद्धांत ' व ' खंडेलवाल हितेच्छु ' आदि जैनपत्र तो धर्मचर्चाके लिये ही जारी किये हैं उनके संपादक भाषासमिति तरफ दुर्लक्ष करके असभ्य शब्दोंका उपयोग करेंगे तो समाजने उनको इशारा देना चाहिये; यदि वे नहीं मानेंगे तो संपादक बदल देना चाहिये. परंतु धर्मचर्चा जारी रहना चाहिये. क्योंकि— धर्मोपदेशके वास्तेही सभाओंकी स्थापनाएं किई है, और सभातरफसे उपदेशक

लोक दौरा करते हैं. गांव गांव जाकर सभा करते हैं; व्याख्यान देते हैं शास्त्र सुनाते हैं; और नेम आखडी देते हैं. नेम आखडी देते समय और शास्त्र सुनाते समय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका वर्णन करना पडता है, उस वखत सच्चे देव-गुरु-शास्त्रका स्वरूप समझाना पडता है. कुदेव कौन है ? व्यंतरादि शासनदेवता कुदेव हैं या नहीं ? वे रागद्वेषमलीमस हैं या नहीं ? उनको पूजना या नहीं ? उनको पूजनेमें देवमूढताका दोष लगता है या नहीं ? वे रागीद्वेषी हैं या नहीं ? उनको 'ॐ ह्रीं 'इत्यादि मंत्र कहकर अर्पण करनेसे पूजन होता है या सत्कार ? दर्शनिक उनकी वंदना करते हैं या नहीं ? वंदना नहीं करते हों तो विना वंदना सत्कार किस वजेसे करते हैं ? इनका सत्कार तो प्रत्यक्ष मिलनेपर करते हैं या परोक्ष भी करते हैं ? सूर्यचंद्रादिक प्रत्यक्ष दीखते हैं उनका सत्कार कोई जैनी करता है क्या ? पाक्षिक श्रावक उनकी उपासना किस हेतुसे करता है ? पाक्षिकको देवमूढताका दोष लगता है या नहीं ? शासनदेवोंका सत्कार किस किस श्रावकोंने [वे प्रत्यक्ष मिलनेपर या परोक्ष] किस वजहसे किया जिसकी कथाएं पुराणोंमें मिलती हैं क्या ? इत्यादि प्रश्न होते हैं. उनके उत्तर उपदेशकोंको देना पडता है तब उसके उपदेशकी श्रोताओंपर असर पडती है !

इस वास्ते अखबारपत्रोंमें इस विषयकी चर्चा सभ्य शब्दोंमें होती रहे तो उपदेशक लोकोंकूं प्रश्नोंके समाधान करनेको सामग्री मिलेगी. नहीं तो वे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका स्वरूप कैसा बता सकेंगे ? और यथार्थ स्वरूप नहीं बतावेंगे तो उपदेश कौन मानेगा ? धर्मोन्नति कैसी होगी ? इसलिये समाचार पत्रोंमें धर्म-चर्चा अवश्य होनी चाहिये ! परंतु वह कटाक्ष रहित सभ्य शब्दोंमें होनी चाहिये *माने भाषासमिति ऊपर पूरा ध्यान रखकर होनी चाहिये !*

दक्षिणमहाराष्ट्र और कर्नाटक तरफ उपाध्याय लोकोंने क्षेत्रपाल पद्मावतीके पूजनका बंड मचाया है ! वे श्रावकोंकू वर प्राप्तीकी लालुच बताकर उनको देवमूढताके दोषमें खैंचते हैं सो उन्होंने ऐसा नहीं करना चाहिये. ऐसा जैनबोधकके संपादक रावजी सखाराम और न्या. पं. जिनदास व पं. बनसीधर लिखते हैं. सो यह देवमूढताका बंड मिटानेके वास्ते भी विद्वानोंके लेखोंकी जरूरत है ! देवमूढता शब्दका अर्थ क्या है ? मूढता माने मूर्खता सो देवताके संबंधमें कैसा श्रद्धान रखनेसे मूर्खता होती है ? पाक्षिककी मूर्खता क्या है जो दर्शनिक नहीं करता है ? पाक्षिककी मूर्खता छुडानी चाहिये या नहीं ? यदि छुडानी चाहिये तो उसको क्या क्या उपदेश देना चाहिये ?

प्रतिष्ठापाठ और पूजापाठोंमें आपत्ति मिटाने वास्ते और वर प्राप्ति वास्ते जो शासनदेवताओंका पूजन लिखा है सो पाक्षिकके वास्ते है या दर्शनिकके वास्ते है ? यदि दर्शनिक श्रावक शासनदेवतादिकोंका पूजन नहीं करता है ऐसा पं. आशाधरजी लिखते हैं तो फिर प्रतिष्ठापाठोंमें और पूजापाठोंमें शासन देवताओंका पूजन लिखा है उसको दर्शनिक श्रावक वर्जे करैं या नहीं ? यदि वर्जे करैं तो सने शास्त्राज्ञाका भंग किया अथवा शास्त्राज्ञाका पालन किया कहना चाहिये ? चारित्रकी मुख्यतासे शासनदेवतासे पाक्षिक और दर्शनिक श्रेष्ठ है या नहीं ? पाक्षिकसे दर्शनिक श्रेष्ठ है या नहीं ? श्रेष्ठ दर्जेवाला कनिष्ठ दर्जेवालेकी पूजा करैं या कनिष्ठ दर्जेवाला श्रेष्ठ दर्जेवालेकी पूजा करैं ?

त्रिलोकसारमें अकृत्रिम चैत्यालयोंका वर्णन लिखा है. उसमें यक्षोंकी मूर्तियां भगवानके मूर्तियोंपर चमर ढारती लिखा है, इससे उन यक्षोंकी मूर्तियोंका पूजन करना चाहिये ऐसा अर्थ निकलता है क्या ? अकृत्रिम चैत्यालयोंमें सौधर्म, ईशान, चमर, वैरोचन पूजन

करते हैं सो भगवानके मूर्तियोंका करते हैं ऐसा त्रिलोकसारमें लिखा है तो भी वे यक्षोंकी मूर्तियोंका पूजन करते हैं ऐसा अर्थ निकलेगा क्या ?

गृहस्थाचार्य विधवा-विवाहकूं संमति दे सक्ता है क्या ? और उपाध्याय मारफतसे विधवा-विवाहकूं पुण्याहवाचनके मंत्रसे शुद्धि कराकर सव्वा रुपया विधवा-विवाह करनेवालेके पास लेकर मंदीर-जीके भण्डारमें देता है सो शास्त्राज्ञानुसार है क्या ? व प्रतिष्ठादि धार्मिक कार्योंमें स्वतःके लिये अडाके रुपये लेना यह इनकूं क्या योग्य है ?

वस्त्रधारी भट्टारकोंकूं पंचम कालके मुनि कहा जायगा क्या ? और उनको मुनिके माफक अष्ट प्रकारसे पादपूजा करनी चाहिये क्या ?

सोमदेवसूरीने-" वधू-वित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्रतज्जने ॥ मातास्वसा तनूजेतिमतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे ॥१॥ [यशस्तिलक उत्तरखण्ड] ब्रह्मचर्याणुव्रतके लक्षणमें यह श्लोक दिया है उसका अर्थ क्या करना ? उसमें कुछ गलती है या नहीं ? यदि गलती है तो पाठ सुधारना चाहिये या नहीं ? यदि सुधारना आवश्यक हो तो " वधू-वित्तस्त्रि-यौमुक्त्वा " इस जगह " विवाहित-वधूं मुक्त्वा " ऐसा पाठ सुधा-रनेमें क्या दोष होगा ? ब्रह्माणुव्रती वित्तस्त्री माने रण्डीसे मैथुन कर सक्ता है क्या ? क्या ब्रह्माणुव्रत ग्रहण कराते समय उसको वित्तस्त्री-का त्याग कराना या नहीं ? ब्रह्माणुव्रती यदि वेश्या सेवन करें तो वह अनाचारी (भ्रष्टाचारी) कहा जावेगा या नहीं ?

और इसही विषयमें इससे भी अधिक बढकर व्यभिचारपो-षक ऐसा पं० आशाधरजीने अपने सागारधर्मामृत चतुर्थ अध्यायमें जो—" अन्ये त्वपरिगृहीतकुलांगनामप्यन्यदारवर्जिनोऽतिचारमाहुः ।"

व " अपरिगृहीता स्वैरिणी, प्रोषितभर्तृकाकुलांगना वा अनाथा । " ऐसा कहा है सो इन वाक्योंसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि— जिसका पति मौजुद है ऐसी सधवा जो प्रोषितभर्तृका [जिसका पति परदेशमें गया है] कुलांगना अथवा विधवा कुलांगना इनके साथ संभोग करनेसे भी उस ब्रह्मचर्याणुव्रतीका वह व्रत नष्ट न होकर सातिचार मात्र होता है ! माने ऐसी ऐसी कुलांगना [न कि इत्वरिका-वेश्या] सेवन करनेवाला भी ब्रह्मचर्याणुव्रती होसक्ता है ? यह बडी आश्चर्यकी बात है ! !

और भी यहां दूसरी शंका यह है कि—जिसका पति मौजुद है ऐसी सधवा अथवा जो विधवा है ऐसे स्त्रीको अपरिगृहीत सदरेमें शामिल करना जिससे श्रुतसागरी टीकाकारके- " एकपुरुषभर्तृका या स्त्री सधवा वा विधवा सा परिगृहीता संवद्धा कथ्यते । " इस वचनको प्रत्यक्ष विरोध होगा या नहीं ?

ऐसेही—" इत्वरिकागमन " इस पदमें जो " गमन " शब्द पडा है इसका श्रुतसागरीटीकाकार और स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाके टीकाकार इन्होंने जो- " गमने इतिऽकोर्थः- जघनस्तनवदननिरीक्षणं संभाषणं पाणिभ्रूचक्षुरंतादिसंज्ञाविधानमित्येवमादिकं निखिलं रागित्वेन दुश्चेष्टितं गमनमित्युच्यते । " इस प्रकार पूर्वाचार्योंके अभिप्रायानुसार खुलासा किया है इस पर भी विचार करना क्या योग्य नहीं है ?

इत्यादि प्रश्न महत्वके हैं सो आगम और युक्तियों द्वारा हल होने चाहिये. इस समय समाचारपत्रही धर्मचर्चा करनेके साधनरूप समझे जाते हैं. मात्र लेखकोंने भाषासमिति तरफ ध्यान रखकर अपनी कलम चलानी चाहिये; यह हमारे लेखकोंकू आग्रहपूर्वक प्रार्थना है.

सोलापूर
ता. २५।४।२३

आपका कृपाभिलाषी

शंकर पंढरीनाथ रणदिवे.

पढ़नेयोग्य पत्र व्यवहार—

शासनदेव चर्चा.
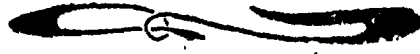
[जैनमित्र, गुरुवार कार्तिक वदी ११, ता. २७ अक्टूबर १९२१]

श्रीयुत जैनमित्रके संपादक महाशयजी, जयजिनेंद्र ।

पं० न्यायतीर्थ जिनदास शास्त्रीने अप्रेल १९२१ प्रथम वर्ष अंक ८-९ के ' जैनसिद्धान्त ' में " शासनदेवता चर्चा ' शीर्षकका लेख लिखा है उसमें महापुराण पर्व ३९, श्लोक २७ जो इस मुजब है—

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शान्ति हेतवः ॥
क्रूरास्तु देवता हेया यासां स्याद्वृत्तिरामिषैः ॥२७॥

इस श्लोकके बारेमें उनका कहना यह है कि— " ऐसी अवस्थामें स्त्रीलिंगी देवता शब्दका कैसे जोड बैठ सकता है इस बातको सेठजीही जानें " इत्यादि ऐसा कहकर उन्होंने ' विश्वेश्वरादयो ' के जगह ' विश्वेश्वर्यादयो ' ऐसा स्त्रीलिंग पाठ फेर दिया ।

और पं० न्यायतीर्थ बनसीधरजी भी अपने जून १९२१ के ' जैनसिद्धांत ' पत्र ३६ में कहते हैं कि— " उसे पुल्लिंग पाठ मान लेनेसे कैसे संबंध बैठेगा ? सिवा, वहां ' आदि ' शब्द और है; ' इत्यादि इन दोनों न्यायतीर्थोंका ऊपरके श्लोकमें ' विश्वेश्वर्यादयो ' ऐसा पाठ होना चाहिये ऐसा अभिप्राय है, इसलिये बाहरगांवके विद्वानोंकी इस बारेमें क्या सम्मति है वह पत्रोंसे हमने मंगाई है सो प्रसिद्ध करनेके लिये आपके पास भेजा है कृपा करके प्रसिद्ध करें.

पं० कल्लप्पा भरमप्पा निटवे लिखते हैं कि— " मूले विश्वेश्वरादयो, टिप्पण्याम् तीर्थंकरादयः ॥ कानडी हस्तलिखित प्रत जुनी २५० वर्षां पूर्वी लिहिलेली. कल्लप्पा भरमप्पा निटवे.

* * *

उद्गांव ता० १७-७-२१

श्रीयुत रा० रा० शंकर पंढरीनाथ रणदिवे यांस—

जयजिनेंद्र कृतानेक आशिषः । आपलें पत्र पोहोंचलें. आपण लिहिले प्रमाणें हस्तलिखित पुरातन ताडपत्री ग्रंथ महापुराणे पर्व ३९ श्लोक २७ वा पुढें लिहिल्याप्रमाणें आहे व वरतीं अन्वय अंक घातले आहेत.

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शांतिहेतवः ।
क्रूरास्तु देवता हेया यासां स्याद् वृत्तिरामिषैः ।२७।

हा ग्रंथ प्रायः शुद्ध आहे. लिहून ४०० वर्षे झालीं फार जुनाट ताडपत्री वर लिहिलेला आहे व सर्व ग्रंथावर अन्वय अंक घातले आहेत. कठीण शब्दास टिप्पणहि आहे. यावरून "विश्वेश्वर्यादयो" हा पाठ चुकीचा आहे. आणखी कांहीं शंका आल्यास लिहून पाठवावे. यथामति इकडून उत्तर पाठवीन कळावें सुज्ञास फार काय लिहिणें लोभपूर्ण असावा.

आपला,

आप्पा शास्त्री; मु० उद्गांव,
पोस्ट शिरोल रोड, जि० कोल्हापूर.

हेच शास्त्री आणखी आपल्या ता० २५-७-२१ मध्यें वरील श्लोकावर त्याच जुनाट प्रतींत असलेल्या कांहीं टिप्पणी कळवितात त्या येणेंप्रमाणें— विश्वेश्वरादयः—जिनेश्वरादयः । यासां—देवतानाम् । धृति=संतोषः ॥

* ❀ ❀

Mysore 21—7—21.

महाशयजी जुहारु

आपका पत्र मिला ताडपत्रका महापुराण निकालकर देखा । पर्व, ३९ श्लो० २७ " विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शांति हेतवे ॥

क्रूरास्तु देवता हेया यासां स्याद्वृत्तिरामिषैः ॥२७॥ इस प्रकार श्लोक है " धृति " शब्दका अर्थ संतोष है।

भवदीय-ए. शांतराजय्या शास्त्री।

* * *

कटनी, ता० १४-७-२१

श्रीयुक्त शं० पं० रणदिवे धर्मस्नेह पूर्वक जुहारु। अपरंच आपका पत्र पं० गणेशप्रसादजी वर्णीके नामपर आया सो आदिपुराण निकालकर देखा। पर्व ३९, श्लोक २७ उसमें " विश्वेश्वरादयोज्ञेया " ही पद दिया है और टिप्पणीमें तीर्थंकरादयो लिखा है सो जानना।

आपका—दीपचंद परवार।

* * *

श्री० पं० लालारामजी, अपने सार्थ हिंदी महापुराण पर्व ३९, श्लो० २७, पृ० १३९४ में लिखते है कि " विश्वेश्वरादयो० " इत्यादि जिसका अर्थ इस प्रकार है-" तीर्थंकरादि देव ही शान्ति करानेवाले देवता हैं। जिनकी जीविका मांसपर निर्भर है ऐसे क्रूर देवता सदा छोडने योग्य हैं।"

* * *

श्री० पं० शंकर पंढरीनाथ रणदिवे मु० सोलापूर यांस जयजिनेंद्र। वि० वि० आपलें ता० ५-७-२१ चें पत्र पोहोंचलें आमचे येथील भांडारांत महापुराण संस्कृत हस्तलिखित जीर्ण झालेली अपूर्ण एक प्रत आहे त्यांत तपासतां-" विश्वेश्वरादयो ज्ञेया " असा पाठ स्पष्ट आहे. " विश्वेश्वर्यादयो ज्ञेया " हा पाठ नाहीं. या प्रतींत कोठें ग्रंथ लिहिलेला संवत् पाहतां सांपडत नाहीं व दुसरी प्रत नाहीं. कळावें हे विनंति।

दहीगांव ता० १५-७-२१

आपला कृपाकांक्षी

गणपति भाऊ कस्तुरे, मुनीम-दहिगांव।

* * *

श्रीमान् मान्यवर शेठ हीराचंदजी नेमचंदजी योग्य रांचीसे जयदेवका सादर जुहारु वांचियेगा जी। उभयत्रशम्। श्री आदिपुराणजीके ३९ वें पर्वमें दीक्षान्वय क्रियामें "विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शान्ति हेतवे ॥" इत्यादि श्लोक है उसका अर्थ मेरी रायमें ऐसाही विश्वस्य ईश्वरः विश्वेश्वरः अर्हन्नः। विश्वेश्वरः आदिर्येषां ते विश्वेश्वरादयः अर्हन्दादयः। अर्हन्दादयो देवाः शांतिहेतवे देवताः ज्ञेयाः ऐसा अन्वय करना चाहिये क्योंकि वेद स्मृति आदि जो नव बाते हैं उसमें देवता शब्द है. इसलिये ऐसा अर्थ होता है। अर्हन्तादिक देव तो शांतिके लिये देवता है। अर जिनकी आमिषकर वृत्ति है ते क्रूर देवता त्याज्य हैं ऐसा ही अर्थ ऊपर वेदादिकोंमें किया है। देव शब्द ऊपरसे लगानेसे अन्वय ठीक हो जाता है। जैसे अन्य मतके वेदादिकका निषेध करीके जैनमतके द्वादशांगका स्थापन किया है।

विश्वेश्वरा देवी मानी जाय तो अर्हन्तादिकका कथन कहां? जो कि प्रकरण संगत है। तथा जैन मतमें आभिषवृत्तिवाली देवियां कोई मानी भी नहीं। परमत अपेक्षा मानो तो अर्थमें न्यूनता हुई। परमती यज्ञमें भाग लेनेवाले सब ही देवोंको मानते हैं। कोई देवी नियत नहीं। किंच विश्वेश्वरादयो इसका अर्थ देवी करनेसे शांतिके लिये वे क्या कर सक्ती है। तथा यहां शांतिका अभीष्ट है। इत्यादि दुर्निवार शंकाएं उपस्थित होती हैं।

ज्येष्ठ वदी १ विक्रम सं० १९७८.

भवदीय—जयदेव जैन, मु० रांची (कलकत्ता)

रतनलाल सूरजमलजीकी दुकान।

और भी अपने ता० ३१–७–२१ के पत्रमें कहते हैं कि—श्री आदिपुराणजी यहां संवत १९७९ के लिखे हुये मौजूद हैं उसमें "विश्वेश्वरादयो" ऐसा ही पाठ है।

भवदीय—जयदेव, मु० कलकत्ता।

* * *

श्री० पं० उदयलालजी काशलीवाल अपने संशयतिमिर प्रदीप पृ० १५७ में ऐसा लिखते हैं–" विश्वेश्वरादयो ज्ञेया " इत्यादि ।

*　　*　　*

मोरेना, ता० २४–७–२१

श्रीमान् माननीय शं० पं० रणदिवेजी योग्य सस्नेह जुहारु । आपका पत्र मिला । साथमें उत्तरके लिये लिफाफा भेजा सो भी मिला । यहां पर हस्तलिखित आदिपुराण नहीं है, छपा हुवा है । उसमें हमने आपने जिस श्लोकके पाठके विषयमें पूछा उसको देखा । उसमें पाठ " विश्वेश्वरादयो ज्ञेयाः " ऐसा ही है । परन्तु व्याकरणके अनुसार यह पाठ अशुद्ध मालूम होता है । अत एव पाठ " विश्वेश्वर्यादयो ज्ञेयाः " ऐसा होना चाहिये । अन्यथा देवताः इस स्त्रीलिंग शब्दके साथ उसकी योजना नहीं हो सकती ।

जैन सिद्धांत विद्यालय　　　　विनीत—
मोरेना (ग्वालियर स्टेट)　　　　खूबचंद जैन.

*　　*　　*

मोरेना ता० २८—७—२१

श्रीयुत शं० पं० रणदिवे योग्य सस्नेह जुहारु ।

पत्र आपका पाया । लिफाफा भी मिला, इस स्टेटमें अंग्रेजी लिफाफा नहीं चलता । आदिपुराणकी लिखित पुस्तक हमारे यहां नहीं है । विश्वस्त रीतिसे मालूम किया है कि मुद्रिक पुस्तकमें " विश्वेश्वरादयो ज्ञेया " ऐसा पाठ है । देवता शब्दमें " तल् " प्रत्यय स्वार्थमें है । देव एव– देवता । विश्वेश्वर यह पुलिंग शब्द होने पर भी देवता इस स्त्रीलिंग शब्दके साथ भी समानाधिकरण बन सकता है परंतु " विश्वेश्वर " शब्द यदि जिनेन्द्र वाचक लिया जाय तो " आदि " शब्द खटकता है इसको आप विचार कर लेवें । शेष पुस्तक मिलने पर विचार करेंगे ।

भवदीय—माणिकचंद, जैनसिद्धांत विद्यालय
मोरेना (ग्वालियर स्टेट)

श्री ता० २७–७–२१

श्रीयुत मान्यवर महोदय सेठ हीराचंद नेमीचंदजी योग्य रघु-नाथदासकी धर्मस्नेह जयजिनेंद्र। एक प्रति आदिपुराणकी लिखित १०० वर्ष पहिलेकी संस्कृत व्याकरणपाठी पंडितजीकी लिखी हुई वीरपुरके भंडारमें है उसे हमने देखा उसमें " विश्वेश्वरादयो ज्ञेया " ऐसा पाठ है।

(नकल उपयोगी पत्र शासनदेव चर्चा।

श्रावण वदी ८ वीर संवत २४४७ जैनमित्र.)

श्रीमान् संपादक जैनमित्र, जुहारु। अपरं च जैनमित्र अंक २३, वर्ष २२ में " शासनदेवता चर्चा " लेख जो आपने लिखा है सो मैंने इस विषयमें ९ प्रश्न जैनसिद्धांतको भेजे हैं (जैनसिद्धांत–ज्येष्ठ मास वीर नि० २४४७ पृ० ३१) सो उसका उत्तर आने पर इस विषयमें विचार किया जायगा। " विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शांति हेतवे " इत्यादि जो श्लोक श्री आदिनाथ पुराणमें लिखा है उसका अर्थ पंडित दौलतरामजीने जो किया है सो ठीक है। मैंने उक्त श-ब्दार्थ प्रकरण समन्वित अर्थ सेठ हीराचंद नेमीचंदजीको भेज दिया है। श्रीयुत जिनदास शास्त्रीजी जो अर्थ करते हैं सो सर्वथा अयुक्त है।

जयदेव C/o रतनलाल सूरजमल, रांची।

❀ ❀ ❀

श्री० ब्र० शीतलप्रसादजी अपने आषाढ वदी ३ वीर सं० २४४७ के जैनमित्रमें लिखते हैं कि—" पं० जिनदासजीने आदि-पुराण श्लोक ४५–४८ पर्व ३९ में जो गणग्रहण क्रियाका वर्णन करते हुए—" विसृज्यार्चयतः शांता देवताः समयोचिताः " । इस पदका अर्थ यह किया है कि–क्रूर मिथ्या देवोंको विसर्जन करके शान्त सम्यग्दृष्टि देवोंको पूजे अर्थात् रुद्रादिको हटाकर पद्मावति क्षेत्र-पालादिको पूजे। यह अर्थ इसी पदका विद्वद्वर पं० दौलतरामजीने

आदिपुराण भाषामें नहीं किया है किंतु ऐसा किया है—" यह क्रिया जो रागी देवनिकूं अपने घरतें विदाकरि वीतराग देवको मधरावें।" तथा ३९ वें पर्वमें जो श्लोक नीचे प्रमाण देकर यह अर्थ किया है। विश्वेश्वर आदि कोई शासनदेव व विश्वेश्वरी आदि कोई देवी है सो समझमें नहीं आता—

विश्वेश्वरादयो (विश्वेश्वर्यादयो) ज्ञेया देवताः शांति हेतवे ॥
क्रूरास्तु देवता हेया यासांस्याद्वृत्तिरामिषैः।

आदिपुराण जो मराठीका छपा हैं उसमें "विश्वेश्वर्यादयः" ऐसा पाठ नहीं है।

इसका अर्थ ऐसा होता है कि—विश्वेश्वर जो अरहंत आदि भगवान् वे शांतिके लिये देवता हैं अथवा विश्वेश्वरी जो जिनवाणी वह शांतिके लिये देवी है और रुद्र महेश चण्डी आदि देव देवी क्रूर हैं जिनके विषयमें अन्ध लोगोंने मांस भोजीपनेका आरोप किया है।

विश्वेश्वर व विश्वेश्वरी ऐसा नाम किसी देव व देवीका प्रसिद्ध नहीं है। तथा जिनसेनाचार्यने जहां गर्भाधानादि क्रियाओंमें पूजन पाठका विधान लिखा है वहां कहीं भी गृहस्थको किसी क्रियामें किसी शासनदेवकी पूजा हो तो ऐसा नहीं लिखा किंतु आर्हतकी ही पूजाका विधान किया है। देखो महापुराण श्लोक—

तत्रार्चनविधौ चक्रत्रयं छत्रत्रयान्वितम्।
जिनार्चामभितः स्थाप्य समं पुण्याग्निभिस्त्रिभिः ॥

तब पूजा करते हुये तीन छत्र तीन अग्निसहित जिनेन्द्रकी पूजा करे।

गर्भाधान क्रियाके पीछे प्रीति नाम क्रियाको लिखते हुये भी जिनेन्द्रकी पूजाका ही विधान है।

तत्रापि पूर्ववन्मंत्रपूर्वा पूजा जिनेशिनाम्।
द्वारि तोरणविन्यासः पूर्णकुम्भौ च सम्मतौ ॥

यहां भी पहलेके समान मंत्रपूर्वक जिनेंद्रोंकी पूजा करे—अरहंत पूजाके साथ शासनदेवताकी पूजा करनी जब श्री जिनसेनाचार्यने गृहस्थके यहां घरमें होनेवाले संस्कारोंमें नहीं बतलाई। तब उनकी सम्मतिमें इनको पूजना चाहिये ऐसा नहीं था यही मानना पडेगा।

* * *

मैने ता० २–८–२१ को भी पं० न्यायाचार्य माणिकचंदजीके पास इस प्रकार पत्र भेजा था कि—" श्री० पं० न्यायाचार्य माणिकचंद्रजी मु० मोरेना जयजिनेंद्र ता० २८–७–२१ का आपका कृपा पत्र मिला। उसमें महापुराणजीका श्लोक २७, पर्व ३९ 'विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः" इस श्लोकके बारेमें आपने जो— 'विश्वेश्वर' और 'देवता' इन दोनोंका भिन्न लिंग होनेपर भी इनका समानाधिकरण हो-जाता है, ऐसे आपके कहनेसे एक शंका मिट गई इस वास्ते मैं आभारी हूं। + + + दूसरें आपने उस पत्रमें ऐसा भी कहा है कि—"परंतु विश्वेश्वर शब्द यदि जिनेन्द्र वाचक लिया जाय तो आदि शब्द खटकता है इसको आप विचार कर लेवें।"

इस 'आदि' शब्द विषयक मेरी राय ऐसी है कि– इस आदि शब्दसे सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु और भी जिनधर्म, जिनागम, जिनप्रतिमा, जिनालय ऐसे ये नवदेवता लिया तो चलसकेगा या नहीं ? कारण ये देवता माने गये हैं और ये ऊपरके श्लोकमें कहे अनुसार शांत हेतुवाले भी हैं इन देवताका उल्लेख पं० मेधावीकृत धर्मसंग्रह श्रावकाचारमें किया है वह इस प्रकार है–" यथार्हदादयः पंच ध्येया धर्मादयस्तथा ॥ चत्वारो देवताभ्यस्तु नवभ्यो मे नमः सदा ॥ १४५ ॥ चत्वारो देवता एते जिनधर्मो जिनागमः ॥ जिन-चैत्यं जिनावास आराध्या सर्वदोत्तमैः ॥१४६॥ (धर्मसंग्रह श्रावका-चार पृ० ३०७)

यह नव देवता हैं। आप इसपर विचार कर कृपा करके खु-

ठीस। करें। आदि शब्दसे ये लिये तो विघडेगा क्या ? पं० आशाधरने भी अपने अनगार धर्मामृत पृ० १६५ में–" आदि " शब्दका संस्कृत टीकामें अर्थ ऐसा दिया है– " अर्हदादयोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधवः। "

इस मेरे प्रश्नका उत्तर पं० न्यायाचार्य माणिकचंदजी अपने (श्रा० शु० ६ सं० ८५) पत्रमें इस मुजब लिखते हैं कि– " आदि शब्दसे नवदेवता लेना मुझे इष्ट है मैं भी नव देवताको बराबर मानता हूं।

* * *

श्रीयुत पं० गोधाजी इंदौरवाले श्रावण सुदी ८ वीर सं० २४४७ के जैनमित्रमें इस मुजब लिखते हैं कि–" प्रभाचंद्रजी आचार्यके ऐसे वाक्य कदापि नहीं होसकते। और महापुराणका आप उदाहरण देते हैं सो हमारे पास वह संस्कृत ग्रंथ इस समय नहीं है जिससे पूरा नहीं बता सकते किंतु उसका भी पंडितजीने उलटा ही अर्थ किया होगा जैसे विश्वेश्वरीका अर्थ जिनसेन स्वामीने जिनमातृका किया। और पंडितजी श्री न्ही आदि देवीको जिनमातृका लिखते हैं क्या यह विपरीत नहीं है?। वे श्री न्ही आदि पट् कुमारिका देवी है। वे जिनेंद्रकी सेविका हैं या माता हैं ? भला कभी सेविका माता होसकती है ?" इत्यादि।

* * *

कलकत्तेसे पं० महाशयजी जयदेवजी लिखते हैं कि– " श्रीयुत् मान्यवर महोदय भ्रातृवर शंकर पंढरीनाथजी रणदिवे मु० सोलापूर सादर जुहार। उभय लशम्। पत्र आपका आया समाचार ज्ञात हुवे। देवता शब्द अजहल्लिंग है इसलिये पुल्लिंगके साथ समानाधिकरणमें कोई दोष नहीं जैसे–" सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः " इहां लिंग संख्या उभय व्यतास है तथा–जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामो-

क्षास्तत्त्वम् । यहां भी उभय व्यतास है । वाच्यलिंगके समान वांचकके लिंगका नियम नहीं है 'वेदाः प्रमाणम्' ऐसा होता है। "देवता" शब्द प्रकरण संगत है जैसे- वैष्णव पद्मपुराणके ६६ वें भूमिखण्ड नाम अध्यायमें-" अर्हन्तो देवता यत्र निर्ग्रन्थो गुरुरुच्यते ॥ दया वै परमो धर्मस्तत्रमोक्षः प्रदृश्यते ॥ १ ॥" षडदर्शन समुच्चय—" दर्शनानि षडेवात्र मूलभेदव्यपेक्षया ॥ देवतातत्वभेदेन ज्ञातव्यानि मनीषिभिः ॥१॥ तत्र बौद्धमते तावत् देवता सुगतः किल ॥ सांख्या निरीश्वराः केचित् केचिदीश्वरदेवताः ॥ २ ॥ जिनेन्द्रो देवता तत्र रागद्वेषविवर्जितः ॥ देवताविषयोभेदो नास्ति नैय्यायिकैः समम् ॥ ३ ॥' इत्यादि.

श्री राजवार्तिकजीमें-अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिथ्यात्वहेतुकाप्रवृत्तिर्मिथ्यात्वक्रिया ।

विश्वेश्वर शब्दका अर्थ श्री अर्हन्तकरिके आदि शब्दसे-सिद्ध आचार्यादिकोंका ग्रहण है यह बिलकुल ठीक है। ++++ श्री आदिपुराणजी ही में—" मागधाद्याश्च देवताः" ऐसा आया है ।

विज्ञेषु किमाधिकम्

भवदीय-जयदेव.

* * *

पद्मावति परिषद्का मासिक मुखपत्र " पद्मावती पुरवाल" वर्ष ३, अंक ४, पृ० १०१ में संपादक महाशयजी और प्रकाशक महाशयजी अनुक्रम पं० न्यायतीर्थ गजाधरलालजी और पं० काव्यतीर्थ श्रीलालजीने भी " विश्वेश्वर्या०" ऐसा न लिखकर " विश्वेश्वराद्यो०" ऐसा ही लिखा है.

* * *

श्री० पं० बन्सीधरजी ज्येष्ठ मास वीर सं० २४४७ के अपने 'जैनसिद्धांत' पत्र ३६ में कहते हैं कि-" वहां विश्वेश्वरी कौन ?

उसका उत्तर देते हुए ' संमता जिनमातृकाः ' अर्थात् वे जिनमातृक भी कहाती हैं, और उनके नाम. श्री, ह्री, लक्ष्मी ये हैं ऐसा बताया है । "

लेकिन श्री० पं० लालारामजी अपने सार्थ महापुराणजीमें इस मुजब कहते हैं-

विश्वेश्वरी जगन्माता महादेवी महासती ।
पूज्या सुमंगला चेति धत्ते रूढिं जिनांबिका ॥
कुलाद्रि निलया देव्यः श्री ह्री धी धृति कीर्तयः ।
समंलक्ष्म्या षडेताश्च संमता जिनमातृकाः ॥

अर्थः—उस समय वह भगवानकी माता विश्वेश्वरी अर्थात् संसारकी स्वामिनी, जगत् माता, महादेवी, महासती, पूज्या और सुमंगला (उत्तम कल्याण करनेवाली) इत्यादि नामोंको धारण करती है ॥२२५॥ छह कुल पर्वतोंपर रहनेवाली श्री, ह्री बुद्धि, धृति कीर्ति और लक्ष्मी देवी ये छह देवियां जिनमातृका वा माताकी सेवा करनेवाली कहलाति हैं ॥२२५॥

❀ ❀ ❀

इन सतरह विद्वानोंमें पं० वंसीधरजी, पं० जिनदास और पं० खूपचंदजी इन तीनों विद्वानोंका मत महापुराणजी पर्व २९ श्लोक २७ में जो—विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शांति हेतवः । " ऐसा लिखा है सो व्याकरण दृष्टया अशुद्ध है ऐसा है । और इस पाठके जगह " विश्वेश्वर्यादयो " ऐसा ही पाठ होना चाहिये ऐसे बताते हैं ।

और अन्य चौदह विद्वान् " विश्वेश्वरादयो " यह ही पाठ बराबर कबूल करते हैं, शुद्ध मानते हैं, इतना ही नहीं लेकिन पं० न्यायाचार्य माणिकचंद्रजी मोरेना और पं० जयदेवजी कलकत्ता इन दोनों विद्वानोंने इस पत्र व्यवहारमें कई उदाहरणोंको देकर ऐसा ठहराया है कि इसमें व्याकरण दृष्टया कुछ भी दोष नहीं आता, उनका

समानाधिकरणं होता है। यह इस पत्रव्यवहारसे हमारे वाचक वर्गोके ध्यानमें जरूर आयगा ही.

अव पं० वनसीधरजी, पं० जिनदास, पं० खूपचंदजी इन पण्डितत्रयको हमारा यह कहना है कि आपने जो–" विश्वेश्वरादयो." यह पाठ अशुद्ध है ऐसा लिखा है सो महापुराणजीमें आपकू इतनी ही गलती नजर आगई, क्या और कई गलतियां नजर आगई हैं ? यदि होतो प्रसिद्ध करनेकी कृपा करें.

सोलापूर } आपका कृपाकांक्षी
ता. ३०।९।२१ } शंकर पंढरीनाथ रणदिवे.

नोटः—इस पत्रव्यवहारको अन्य प्राचीन विद्वानोंको जैसे पं. नानूलाल शास्त्री जैपुर, पंडित नरसिंहदासजी, पं० प्यारेलाल, श्रीलाल अलीगढ, पं० मेवारामजी खुरजा, पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर आदिको पढकर अपनी सम्मति प्रगट करनी चाहिये. जिससे पं० वन्शीधरजी मंत्री शास्त्रिय परिषद् व पं० जिनदासजीका जो लिखना है उसका समाधान हो. और उक्त पं० वन्शीधरजी आदि अपनी भूल स्वीकार करके सम्यक् मार्गका उपदेश व लेख करें जिससे साधारण पाठकोंको भ्रम न पैदा हो। संपादक।

बारिस्टरी पंडिताई।

[ले० पं० पन्नालालजी गोधा उदासीन]

जैसे वकील वारिस्टर साहबान अपनी विद्या और वचन कलाकी चतुराईसे सच्चे मुकद्दमेंको झूठा और झुठे मुकद्दमेंको सच्चा करा देते हैं। मुद्दई या मुद्दायला सच्चा भी हो तौ भी वकीलोंके सामने जवाब नहीं आनेपर हार जाता है और न्यायाधीशभी मुकद्दमाको अपने मनमें झुठा जानता संता सच्चे फरीकैनके तरफसे उत्तर ठीक बनने पर सच्चे फरीकैनको झुठा बनाकर फैसला दे देता है. इसी

तरह वर्तमान चारित्रहीन विद्याके प्रभावसे बाजे २ अच्छे २ पंडितोंकी विपरीत बुद्धि होगई है. वे सूत्रविरुद्ध बोलनेको सूत्र अनुकूल सिद्धकर अपनी मिथ्या पक्षोंको पुष्ट करते हैं। बडा ही खेद है ! और न्यायाधीशके समान बुद्धिवाले बहुतसे पंडितोंकी तर्कनाको सराहतसे होंगे कि अर्हतदेव, निर्ग्रंथगुरु, अहिंसाधर्म या इस धर्मके प्ररूपकशास्त्र इन तीनके सिवाय धर्म पद्धतिमें सर्वोच्चरूपसे अथवा इन्हीके समान रूपसे दुसरेको पूजने वंदने योग्य नहीं है. परन्तु पंडितजीके लेखोंका कोई उत्तर नहीं देते इससे शायद पंडितजीका कहना सत्य हो, इत्यादि कोई भ्रममें पड जाते हैं और कोई अर्धदग्ध पुरुष सच्चा ही मान लेते हैं। शासनदेवपुजाके नामसे अर्हतादिकोंके अतिरिक्त अन्य चार प्रकारके देवोंकी पुजनकी सिद्धि जैनसिद्धांत और कुछ २ जैन हितेच्छु पत्रोंमें हो रही है.उन लेखोंके जैनमित्रादि पत्रोंमें खंडित लेखभी निकल रहे हैं. परंतु लेखकगण अपनी वचनपक्ष पुष्ट करनेको अनेक वकीली कुयुक्तियां दे रहे हैं। मोक्षमार्ग प्रकाश ग्रंथमे पंडित टोडरमलजीने तत्व निर्णयके विचारमें कहा है कि, ज्यादा बुद्धि न हो तोभी देवगुरु धर्मके स्वरूपको निर्णयकर श्रद्धानकर ले. सो हम ज्यादा नहीं पढे तो भी अर्हतदेव निर्ग्रंथ गुरु और इन्हीका कहा हुवा दयामई (अहिंसात्मक) धर्मके औरोंको न तो देव न गुरू न धर्म हम मानते न पुजते वंदना करते सो शास्त्रोंमे कहा है।

रत्नकरंडजीमें सर्वज्ञ वीतराग (निर्दोष) आगमका स्वामी सो देव, अरु विषयोंकी आशा रहित आरम्भ परिग्रह रहित ज्ञान ध्यान तपमें लीन सोई तपस्वी (गुरू) और तत्वोपदेश रूप आप्तका कहा हुआ प्रत्यक्ष अनुमानादि दोषरहित आगम ऐसा आप्त आगम तपस्वीका श्रद्धान करना सो सम्यक्त है। तथा स्वामी कार्तिकेयअनुप्रेक्षामे कहा है। गाथा—णिज्जिय दोसं देवं जीवाण दयावरं धम्मं। वज्जियगंथं च गुरूं जोहु मण्णदि सो हु सद्दिट्ठि ॥ १ ॥ दोष सहियंपि देवो जीव हिंसाई संजुदं धम्मं, गंथासत्तं च गुरूं जो हु मण्णदि सोहु कुदिट्ठि

॥ २ ॥ तथा धर्म संग्रहे। आप्तान् परो न देवोस्ति धर्म्मं तद्भापितान्नहि। निर्ग्रंथात् गुरुरन्यो न सम्यक्तमिति रोचनम् ॥ १ ॥ कुतस्ते दोषवद्देवाः प्रत्यक्षादनुमानतः कंकणं दृश्यते पाणौ साध्यं स दर्पणेन किम् ॥ २ ॥ तथा प्रश्नोत्तर श्रावकाचारे, श्लोक-वीतरागो भवेद्देवो धर्मो हिंसा विवर्जितः। निर्ग्रंथश्च गुरुर्नान्यः एततसम्यक्त उच्यते ॥ १ ॥ अनन्य शरणो यस्तु सेवते तीर्थंकारकान्। कुदेवानपि संत्यज्य सस्यात्ताद्दगुविधो चिरात् ॥ ९ ॥ शस्त्र हस्ता महाक्रूरारुण्यक्ताशतखंडिता। चंडिका (देवी) पापकर्माढ्या कथं सेव्यावुधोत्तमैः ॥ ३ ॥ कुदेवादि समस्तां च त्यक्त्वा त्वं भज श्रीजिनान्। एक चित्तेव मो धीमान् स्वर्ग मुक्तिसुखाप्तये ॥४॥ भजते तीर्थनाथान् कुदेवान् सेवते पुनः। इतो भृष्ट ततो भृष्टः सस्या-ज्जंबूकवत्कुधी ॥ ५ ॥ यथा मोक्ष परं नास्मं न महद्गगनात्परं, तथा श्री जिनदेवेन समो देवो न विद्यते ॥ ६ ॥ तथा सार चौवीसीमें ॥ श्लोक॥ वीतरागान्नदेवोन्यु भुक्ति मुक्ति प्रदोंगनाम्। जिनेंद्र भाषितां नान्यत्सिद्धांतं सूनृतं कचित् ॥ १ ॥

इत्यादिक अनेक ग्रंथोंमें कहा है कि अर्हंत वीतरागके सिवाय सर्व देव दोष युक्त हैं। अर्हंतादि सिवाय अन्य देवादिकोंको पूजता है सो मिथ्यादृष्टी है. जब कि अर्हंत देव निग्रन्थगुरू दयामई धर्म, इनके सिवाय नहीं मानना ऐसा स्पष्ट कहा है। सभी ग्रंथोंमें भी अर्हंतादि सिवाय मानने पूजने वंदने आदिका निषेध है. फिर भी अपनी वकीली पेंचसे शास्त्रोंके अर्थको अनर्थ रूप पलटकर अन्यदेवोंको पूजना सिद्ध करते हैं इसमें उनको क्या फायदा है ? क्या इनके (क्षेत्रपालादिके) पूजे विना पंडितजी स्वर्ग मोक्षको न जायगे ? इन क्षेत्रपालादिकके विना केवल अर्हंतादिको पूजेंगे तो क्या पंडितजी नर्कादिकमें चले जायगें ? क्या यह भय है ?

पंडितजी साहव कई वातोंका मेरेसे जवाव मांगते हैं. परंतु ये तो क्या किंतु वडे २ पंडित भी शायद आपकी तर्कोंका उत्तर न कर

सके तो कोई आश्चर्य नहीं. सो उपरोक्त उदाहरण वकीली तर्कोंसे सिद्ध है, किन्तु उपरोक्त मूलबात हम कदापि नहीं भूलेंगे। जैसे एक तुच्छ बुद्धि वालक एक तुच्छबुद्धि पाठकके पास पढा है कि पांच और पांच दश होते हैं. फिर कोई एक हजार रुप्या रोजका वेतन पानेवाला वडा भारी प्रोफेसर आकर उसको समझावे कि पांच और पांच ९ होते हैं। इसके लिये अनेक युक्तियोंसे सिद्ध करे किंतु स्याना वालक तो कभी भी स्वीकार नहीं करेगा कि पांच और पांच नौ होते हैं, दश ही मानेगा, चाहे प्रोफेसरजीके सामने उसे जवाव कुछ भी न आवे किन्तु अपने श्रद्धानको कभी नहीं छोडेगा. तथा और भी जो स्याने मनुष्य होवेंगे वे कभी भी प्रोफेसरजीका कहा नहीं मानेंगे। वैसे ही अर्हत देव, निर्ग्रंथ गुरु, दयामई धर्मके अतिरिक्त धर्म पद्धतिमें और किसीको भी देवादिक मानेंगे नहीं। तथा और भी श्रद्धानी जीव कोई मानेंगे नहीं। आप चाहे जितनी युक्तियें लगाते रहें। कोई भोला जीव अथवा आप सरीखा होगा वो ही मानेगा. तथा आप यह भी मत समझिये कि आपकी तर्कोंका कोई उत्तर दे ही नहीं सकता है। नहीं २ पृथ्वी पर सेरको सवासेर मिल ही जाता है। पंडितजी एक तो क्रियाक्रयम चैत्यालयके अर्थमें वंदे भावनव्यंतरद्युतिवरा इसके अर्थ पर और आदिपुराणमें सुरेन्द्र मंत्रमें इन्द्राय स्वाहा इसके अर्थसे शासन देव पूजाको सिद्धकर वडे गर्वके साथ उछल रहे थे, परन्तु जैनमित्र अंक ८ पृष्ठ १११ में पंडित वनवारीलालजीने वडी युक्ति और व्याकरणादिसे क्रियाक्रयममें शासन देवपूजाको खंडित कर दिया है. और इस ही तरहसे पंडित वनारसीदासजी सहराणपुरवालोंका एक लेख इस लेखके साथ मैंने प्रगट कराया है। उसमें भी वडी युक्ति और व्याकरणादिसे क्रयाक्रयम और इन्द्राय स्वाहासे शासन देवपूजाको खंडित किया है। तथा स्वर्गीय पं० फत्तेलालजी जयपुर निवासीने विवाह पद्धतिमें सुरेन्द्र आदि मंत्रोंके क्या अर्थ किये हैं? सो देखिये—

ग्रामपतये स्वाहा। अर्थ-ग्रामपति नामक जिनेन्द्र जो है तिनके अर्थ अर्पण करता हूं। तथा-श्रावकाय स्वाहा। अर्थ-निजगुण प्रति श्रवै ऐसा शुद्धात्माके अर्थ अर्पण करता हूं। तथा, देव ब्राह्मणाय स्वाहा। अर्थ-देव ब्राह्मण नामक जिनेन्द्रके अर्थ अर्पण करता हूं। तथा। सुब्राह्मणाय स्वाहा। अर्थ-सुंदर ब्राह्मण स्वरूपके अर्थके ज्ञाताके अर्थ अर्पण करता हूं। तथा-सम्यग्दृष्टि निधिपति वैश्रवणाय स्वाहा। सम्यग्दृष्टि निधिपति वैश्रवण नामक जिनेन्द्र जो हैं ताके अर्थ अर्पण करता हूं तथा-सम्यग्दृष्टे भूपते नगरपते कालश्रवणाय स्वाहा। अर्थ-सम्यग्दृष्टि भूपति नगरपति कालश्रवण नामक जिनेन्द्र जो है ताके अर्थ णर्पण करता हूं। तथा, सौधर्माय स्वाहा। अर्थ-सुंदर धर्मको भाव स्वरूप जो है ताके अर्थ अर्पण करता हूं। तथा कल्पपतये स्वाहा। अर्थ-कल्पाधिपतये स्वाहा। कल्प जो ताको अधिपति भगवान् ताके अर्थ अर्पण करता हूं। तथा, अनुचराय स्वाहा। अर्थ-चर धातू गमन अर्थमें है अरु ज्ञान अर्थमें है। जे ज्ञान अर्थमें भी हैं ऐसा आगमका हुकम है, याते परंपराय है ज्ञान जाको ऐसा अनुचरके अर्थ अर्पण करता हूं। तथा, परंपरेन्द्राय स्वाहा। अर्थ-परंपरा इंद्रक्रिया युक्त ऐसे परंपरेन्द्र जो जिन तिनके अर्थ अर्पण करता हूं। तथा अहमिन्द्राय स्वाहा। मैं परमैश्वर्यरूप ज्ञानक्रियायुक्त हूं ऐसो जिन स्वरूपको है निश्चय जाके ऐसा अहमिन्द्रके अर्थ अर्पण करता हूं। तथा अनुपमेन्द्राय स्वाहा। अर्थ-अनुपम कहिये नहीं है उपमा संसारमें जिनको ऐसे इन्द्रके अर्थ अर्पण करता हूं। तथा नेमनाथाय स्वाहा। अर्थ धर्मरूपी नेमी (धुरा) ताका स्वामीको अर्पण करता हूं। तथा धर्मनेमिस्वाहा। अर्थ-धर्मरूप चक्रकी धुरा जो है ताके अर्थ अर्पण करता हूं। इत्यादिक आदि पुराणके अनुसार १११ एकसौ ग्यारह आहुती अनेक नामों करके भगवान अर्हंतसिद्धोंको ही दी हैं. और जितने इंद्र आदि नाम हैं सो गुणके द्वारा भगवानके ही नाम हैं। कोई स्वर्गा-

दिक देवोंको आहुती नहीं दी है क्योंकि ये सर्व पूजोंको नाम सिद्धार्चन है। और जिनप्रतिमाके सामने पूजनपूर्वक आहुती देना आदिपुराणमें लिखा है। वहां कोई शासनदेवकी पूजा करना नहीं वताई इस वास्ते अव तो समझो और अपना हठ छोडो। सम्यक मार्गमें आओ, मिथ्या मार्गको छोडो।

मुझे एक वातका और धोका आता है कि कहीं पंडितजी ओर ज्यादे नहीं हो जावें, नहीं तो भगवानके सहस्रनामोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि ऐसे नाम हैं जो अन्यमती अजैनी लोग अपने देवोंको मानते हैं. सो उन नामसे कहीं अन्य अजैनोंके देव ब्रह्मा विष्णु महादेवोंको पुजानेका उपदेश नहीं देने लग जावें! सो समाज पाठकोंको होश्यार हो जाना चाहिये। तथा पंडितजीने जैन सिद्धांत पत्र अंक १९ वी० सं० २४४७ पृष्ट ३ में "उ० पं० गोधाजीके प्रश्नपर विचार" नामके लेखमेंभी गृहस्थीकोभी गुरु मानना सिद्धकर दिया है. जो कि जैन धर्मके विलकूल विरुद्ध है। जैन धर्ममें तो निर्ग्रंथ हीको गुरु माना है, बाकी सव लोक व्यवहारमें जिस पदमें वडे होंवे उस सम्वंधमें वे गुरु, राजागुरु, स्वामीगुरु, ऐसे ही विवाहादि क्रिया करानेवालेकोभी गृहस्थाचार्य या गुरु कहो. किन्तु धर्म पद्धतिमें गृहस्थाचार्य कभी गुरु नहीं होसक्ते।

उपरोक्त ग्रंथोंके श्लोकोंसे सिद्ध है कि निर्ग्रंथके सिवाय और कोईको गुरु माने सो मिथ्यादृष्टि है। प्रश्न तो किया था ऐलक क्षुल्लकको साधू कैसे माना और निर्ग्रंथ साधुके समान नमस्कारादि किस ग्रंथके अनुसार किया जाना वताया सोभी पुरा उत्तर न देकर और २ अनर्थकी वातें कर दी। यों तो साधू धर्मात्माको भी कहते हैं। सामायिक वा प्रोपधोपवासके समय गृहस्थीको भी महाव्रती कहा है. किन्तु क्या दिगंवर मुनि छट्टे गुणस्थानीके वरावर भक्ति पूजा उन्होंकी की जा सक्ती है? जैसे गमन करनेवाले जो हों उनको गउ कहते हैं. किन्तु समभिरूढ नयसे गऊनाम एक पशु विशेपका ही है। सो गमन शब्दसे

गऊ मुनि राजा आदिको भी कहकर पशु गऊके समान वर्ताव ऐसे वडे पुरुषोंके साथ करोगे क्या? कदापि नहीं। तैसेही ग्रहस्थ उपवासादि करते, तपस्वी सामायिक प्रोपधोपवास करते, महाव्रती समान व्यवहार करते, साधू गृहस्थोंकी क्रिया करानेवालोंको ग्रहस्थाचार्य, विद्या आदि पढानेवालोंको गुरु, आदि संज्ञा होते संते भी निर्ग्रंथ गुरुके समान गुरु नहीं माने जाते। तैसे ही ऐलक क्षुल्लककोभी निर्ग्रंथके समान साधू मान उनके वरावर विनय नहीं होती। मैं यह नहीं कहता कि उन्होंकी विनय नहीं करी जाय। नहीं २ सम्पूर्ण ग्रहस्थ श्रावकोंसे उनका पद ऊंचा है सो सबोंसे ऊंचाही विनय किया जाना योग्य है. किन्तु वडे गुणस्थानधारी मुनिके समान करना मिथ्यामार्ग है. और विनय भी अपनी मनोक्ति अनुसारभी नहीं करना चाहिये और युक्ति नहीं भिडाना चाहिये। शास्त्रोंमें कहा है. उस तरह विनय करना चाहिये। देखो अष्ट पाहुड सुत्र पाहुड गाथा ११। १२ कि दिगम्बर मुनि वंदने योग्य हैं। अन्य लिंग जो वस्त्रधारी हैं और ज्ञान दर्शन सहित हैं वह इच्छाकार करने योग्य हैं। और लिंग तीन कहे हैं, मुनि आर्जिका और उत्कृष्ट श्रावक। सो वस्त्रधारी लिंग उत्कृष्ट श्रावक और आर्जिकाका है। सो इच्छाकार करना इन दो लिंगोंको बताया है। परंतु नहीं जाने पंडितजी अष्ट द्रव्यसे पूजन करना और साष्टांग नमस्कार करना किस ग्रंथके आधारसे वताते हैं? अपनी युक्ति भिडाना और जैन आर्ष ग्रंथोंकी धुकाई देना महा पाप है। जरा दुर्गतिके दुःखोंसे डरो। जैन धर्ममें अर्हंतादि देव गुरु धर्मके सिवाय धर्मपद्धतिमें देवगुरु अन्य किसीकी भी पूजा करे नहीं। यह प्रसिद्ध बालगोपाल ज्ञानी अज्ञानी सबही जानते हैं. फिर नहीं मालूम पंडितजीको क्या धुनि सवार हुई है, जो अर्हंतादिकके सिवाय चार प्रकारके देवोंको पूजे विना औरोंसे पुजाए विना उनका कल्याण ही नहीं होगा! ऐसी ही पक्षोंसे तो मिथ्यात्व धर्मकी प्रवृत्ति होती है।